आलोक–पुंज

LIGHT FOUNTAIN

का हिन्दी रूपान्तर

लेखक
श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

अनुवादक
श्री स्वामी अर्पणानन्द सरस्वती
(पूर्वाश्रम-नाम : प्रिंसिपल श्री चमन लाल शर्मा)

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रथम हिन्दी संस्करण : १९७७
द्वितीय हिन्दी संस्करण : १९९१
तृतीय हिन्दी संस्करण २००९
चतुर्थ हिन्दी संस्करण : २०१६
(५०० प्रतियाँ)

HC 2

PRICE: 105/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा
प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस,
पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२, जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस छोटी-सी पुस्तक में सामान्य जन के समक्ष स्वामी जी के अतीत तथा वर्तमान रोचक जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके व्यक्तित्व का एक निष्पक्ष अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उनके जीवन-विषयक इससे पूर्वतन प्रकाशित दो-तीन ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न, प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य उद्देश्य उनकी सामान्य गतिविधियों में अधःस्थ दर्शन तथा समाविष्ट व्यावहारिक शिक्षाओं को प्रकाश में लाना है। अतः यह पुस्तक उनकी जीवनचर्या का मात्र वर्णन न हो कर प्राक्तन पुस्तकों का विकसित तथा परिनिष्पन्न रूप है।

कुछ विश्लेषणात्मक भावधारा में लिखी जाने के कारण, इसमें अनेक उपयोगी तथा पथ-प्रदर्शक संकेत प्रस्तुत किये गये हैं जो निश्चय ही प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए अतीव व्यावहारिक मूल्य के होंगे। यही इस पुस्तक की विशिष्ट अर्हता है।

यह पुस्तक आदर्श मानव के अनेकविध प्रतिमान के रूप में स्वामी जी के अब तक अज्ञात कुछ सुन्दर विशिष्ट गुणों को प्रकाश में लाती है।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

दो शब्द

भगवत्कृपा की गति भले ही मन्द हो; किन्तु जब वह होती है तो उसकी झड़ी-सी लग जाती है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। सर्वोपरि बात तो यह है कि विधाता ने इस सर्वजनहिताय सत्कार्य के लिए मेरा चयन कर मुझे अतीव सौभाग्यशाली बनाया। मैं इसे अपना परम सद्भाग्य समझता हूँ कि मुझे युग-विभूति स्वामी शिवानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में लिखने का स्वर्ण-अवसर प्राप्त हुआ जो केवल भारतवर्ष के ही नहीं, अपितु निखिल विश्व के प्रकाश स्तम्भ हैं।

इस रचना को प्रस्तुत करने में मुझे अतीव आनन्द की अनुभूति हो रही है। पुस्तक का उद्देश्य प्रस्तावना से ही पूर्णतया सुस्पष्ट हो जाता है। यदि उल्लिखित उद्देश्य की किंचिन्मात्र भी पूर्ति हो सकी तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

- स्वामी चिदानन्द

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

(जीवन का एक रेखा-चित्र)

स्वामी चिदानन्द जी के पूर्वाश्रम का नाम श्रीधर राव था। उनके पिता का नाम श्रीनिवास राव और माता का नाम सरोजिनी था। उनका जन्म २४ सितम्बर, १९१६ को हुआ। वह अपने माता-पिता की पाँच सन्तानों में से द्वितीय सन्तान और उनके पुत्रों में ज्येष्ठ थे। श्रीनिवास राव समृद्ध जमींदार और दक्षिण भारत में कई ग्राम, विस्तृत भूखण्ड और राजसी भवन के स्वामी थे। सरोजिनी देवी एक आदर्श भारतीय माता थीं और अपने साध्वाचार के लिए प्रसिद्ध थीं।

आठ वर्ष की आयु में उनके जीवन पर एक अनन्तैया नामक व्यक्ति का प्रभाव पड़ा। श्री अनन्तैया इनके दादा के मित्र थे और रामायण तथा महाभारत महाकाव्य से इन्हें कथाएँ सुनाया करते थे। तपश्चर्या, ऋषि-जीवन-यापन और भगवद्-दर्शन इनके प्रिय आदर्श बने।

इनके फूफा श्रीकृष्ण राव ने इनके चतुर्दिक् व्याप्त भौतिकवादी जगत् के कुप्रभावों से इनकी रक्षा की और इनमें निवृत्ति-जीवन का बीज वपन किया। जैसा कि बाद की घटनाओं ने सिद्ध किया, यह उस बीज को सन्तत्व में विकसित होने तक बड़ी प्रसन्नता से धारण किये रहे।

प्रारम्भिक शिक्षा मैंगलोर में प्राप्त कर यह सन् १९३२ में मद्रास के मुत्थैया चेट्टी स्कूल में प्रविष्ट हुए जहाँ पर एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी के रूप में इन्होंने ख्याति प्राप्त की। इन्होंने अपने प्रफुल्ल व्यक्तित्व, अनुकरणीय व्यवहार तथा असाधारण गुणों से अपने सम्पर्क में आने वाले सभी अध्यापकों और विद्यार्थियों के हृदय में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया।

सन् १९३६ में लोयोला कालेज में प्रवेश किया, जिसमें बहुत ही मेधावी विद्यार्थी ही प्रवेश पाते हैं। सन् १९३८ में साहित्य-स्नातक (बी. ए.) की उपाधि प्राप्त की। इनका विद्यार्थी-जीवन अधिकांशतः ईसाई कालेज में व्यतीत हुआ, इसका भी अपना महत्त्व है। इनके हृदय में प्रभु ईसा, ईशदूतों तथा ईसाई सन्तों के भव्य आदर्श का हिन्दू-संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट एवं अभिजात तत्त्वों के साथ सुन्दर संश्लेषण हुआ है।

बाइबिल का स्वाध्याय इनके लिए केवल दैनिक कृत्य ही नहीं था, वह तो इनके लिए भागवत-जीवन था। वह इनके लिए उतना ही जीवन्त और सत्य था जितना कि वेद, उपनिषद् और गीता के शब्द । अपने स्वाभाविक विशाल दृष्टिकोण के कारण ये कृष्ण में ईसा के, कृष्ण के स्थान में ईसा के नहीं, दर्शन कर सके। यह ईसा मसीह के उतने ही भक्त थे जितने कि भगवान् विष्णु के थे।

राव परिवार उच्च कोटि की सदाचारिता के लिए प्रसिद्ध था और यह श्रीधर राव के जीवन में भी प्रतिष्ठित किया गया। उनके परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के कण-कण में दान और सेवा का गुण व्याप्त था। इन सद्गुणों ने श्रीधर राव में अपना साकार रूप ग्रहण किया। उन्होंने इन गुणों की अभिव्यक्ति के साधन ढूँढ़ निकाले। कोई भी व्यक्ति, जो उनसे सहायता की याचना करता था, खाली हाथ वापस नहीं जाता था। वह दरिद्रों को मुक्त हस्त से दान करते थे।

कुष्ठियों की सेवा ने उनके जीवनादर्श का रूप लिया। वह अपने घर के विस्तृत मैदान में उनके लिए झोपड़ियाँ बनवाते और उनकी इस तरह से देखभाल करते मानो वे साक्षात् देवता हों। कालान्तर में जब वह आश्रम में आ गये तो उनके प्रारम्भिक जीवन का यह गुण पूर्ण व निर्बाध रूप से अभिव्यक्त हुआ। 'सभी प्राणी एक हैं', इस परम ज्ञान पर आश्रित दिव्य प्रेम के विशाल साम्राज्य में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्ति भी कदाचित् ही प्रवेश करने का साहस करे। पास-पड़ोस से नाना प्रकार के उग्र व्याधियों से पीड़ित रोगी उनके पास आते और चिदानन्द जी के लिए वे रोगी नहीं थे, साक्षात् नारायण थे। वह मृदु प्रेम और करुणा से उनकी सेवा करते। उनके हाथों की गति ही उनका ऐसा चित्रांकन करती मानो वह साक्षात् भगवान् नारायण की पूजा कर रहे हों। कोई भी कार्य हो, कितनी ही तात्कालिक अविलम्ब्यता का कार्य हो, वह रुग्ण आश्रमवासी को सुख और सान्त्वना देने से कभी न रुकते ।

सेवा और विशेषकर रोगियों की सेवा से ऐसा पता चला कि उन्हें अपनी व्यक्तिगत पृथक् सत्ता का भान नहीं रहता। ऐसा लगता है कि मानो उनका शरीर एक ऐसे जीवात्मा से ढीला-ढाला चिपटा हुआ है जो कि पूर्ण रूप से उद्बुद्ध हो चुका है और यह अनुभव करता है कि वही सब शरीरों में निवास करता है।

और उनकी यह सेवा केवल मानव जाति तक ही सीमित नहीं थी। पशु और पक्षी भी, यदि मनुष्य से अधिक नहीं तो कम-से-कम मनुष्य के समान उनके ध्यान के अधिकारी थे। वह उनकी पीड़ा की भाषा समझते थे। एक बीमार कुत्ते की सेवा पर गुरुदेव ने उनकी बड़ी सराहना की थी। किसी व्यक्ति को अपनी उपस्थिति में किसी मूक प्राणी पर नृशंसता का व्यवहार करते देख कर वह अपने हाथ के इंगित से उसे उग्र शिक्षा देते।

कुष्ठियों के कल्याण-कार्य में गम्भीर और स्थिर रुचि रखने के कारण वह राजकीय अधिकारियों की प्रशंसा व विश्वास के पात्र बने और प्रदेश द्वारा संस्थापित कुष्ठी कल्याण समिति के लिए निर्वाचित किये गये। मुनि-की-रेती अधिसूचित क्षेत्र समिति के वह पहले तो उपाध्यक्ष और बाद में अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

यद्यपि श्रीधर सम्पन्न परिवार के थे, तथापि एकान्त और ध्यान में संलग्न रहने के लिए उन्होंने बचपन से ही सभी सांसारिक भोगों को तिलांजलि दे दी। जहाँ तक अध्ययन का सम्बन्ध है, कालेज की पुस्तकों की अपेक्षा आध्यात्मिक पुस्तकों में उनकी अधिक रुचि थी। लोयोला कालेज में रहते हुए भी वह पाठ्य-पुस्तकों की तुलना में आध्यात्मिक पुस्तकों को प्राथमिक स्थान देते थे। श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और गुरुदेव की पुस्तकों को अन्य सभी पुस्तकों से पूर्वता देते थे।

श्रीधर अपने ज्ञान में दूसरों को इतना सहभागी बनाते थे कि वह घर तथा पास-पड़ोस के लोगों के वस्तुतः गुरु बन गये। उनके साथ वह सच्चाई, प्रेम, शुचिता, सेवा और भगवद्-भक्ति की चर्चा किया करते थे। वह श्री राम का जप करने के लिए उन्हें उत्साहित किया करते थे। जब वह बीस वर्ष की वय के ही थे, तभी से उन्होंने नवयुवकों को रामतारक मन्त्र की दीक्षा देना आरम्भ कर दिया था। उनके अनुयायियों में एक श्री योगेश थे जो बालक गुरु श्रीधर द्वारा दिये गये तारक मन्त्र का जप १२ वर्ष तक निरन्तर करते रहे।

वह श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के परम प्रेमी थे। मद्रास के मठ में नियमित रूप से जाते और वहाँ पूजा में भाग लेते थे। स्वामी विवेकानन्द का संन्यास के लिए आह्वान उनके शुद्ध हृदय में गूँजता रहता था। महान्गर में पधारने वाले साधु-सन्तों के दर्शन के लिए वह सदा ही लालायित रहते थे।

सन् १९३६ में श्रीधर छुप कर घर से चले गये। उनके माता-पिता ने बड़ी खोज के बाद उन्हें तिरुपति के पवित्र पर्वतीय मन्दिर से कुछ मील दूर एक धर्मात्मा सन्त के निर्जन आश्रम में पाया। बहुत समझाने-बुझाने पर वे घर वापस गये। उनका यह अस्थायी वियोग परिवार, मित्र और सम्पत्ति के मोहमय संसार से अन्तिम विदाई लेने की तैयारी थी। जब वह घर पर थे, तब भी उनका हृदय अपने अन्तर्वर्ती ज्ञान-गंगा के सनातन प्रणव-नाद के साथ सस्वर हो कर स्पन्दित होता और आध्यात्मिक विचारों के निस्तब्ध वनों में रमण करता रहता था। तिरुपति से वापस आने पर उन्होंने सात वर्ष घर में व्यतीत किये। इन दिनों उनके जीवन पर एकान्तवास, सेवा, आध्यात्मिक

साहित्य के गहन अध्ययन, आत्म-संयम, इन्द्रिय-निग्रह, सरल और सात्त्विक जीवनचर्या और आहार, विलासिता का परिहार और तपोनिष्ठ जीवन के अभ्यास की गहरी छाप पड़ी और ये ही उनकी अन्तः आध्यात्मिक शक्ति के संवर्धन में सहायक हुए।

सन् १९४३ में उन्होंने अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय किया। ऋषिकेश के श्री स्वामी शिवानन्द जी से वे पहले से ही पत्र-व्यवहार कर रहे थे। अन्त में वह आश्रम में सम्मिलित होने के लिए स्वामी जी की अनुमति प्राप्त करने में सफल हुए।

आश्रम में पदार्पण करने के साथ ही उन्होंने स्वभावतः औषधालय का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। उनके हाथों में रोग के निवारण की अद्‌भुत शक्ति थी। यह ख्याति चारों ओर फैल गयी, जिससे शिवानन्द दातव्य औषधालय में रोगियों का जमघट लगने लग गया।

आश्रम आने के तत्काल बाद ही श्रीधर ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का पर्याप्त परिचय दिया। उन्होंने भाषण दिये, पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख तैयार किये और आश्रम में पधारने वाले जिज्ञासुओं को आध्यात्मिक उपदेश दिये। सन् १९४८ में जब 'योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' (अब योग-वेदान्त आरण्य अकादमी के नाम से प्रसिद्ध) की स्थापना हुई, तो गुरुदेव ने उन्हें इसका उप-कुलपति और राजयोग का प्राध्यापक नियुक्त कर यथोचित सम्मान दिया। प्रथम वर्ष में उन्होंने महर्षि पतंजलि के योग-सूत्रों की प्रांजल व्याख्या प्रस्तुत कर जिज्ञासुओं को योग-मार्ग की प्रेरणा दी।

आश्रम में अपने निवास-काल के प्रथम वर्ष में ही उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी की अमर जीवन-कथा पर 'Light Fountain' (लाइट् फाउन्टेन) नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ पर गुरुदेव ने एक बार अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था- "ऐसा समय आयेगा जब शिवानन्द इस जगत् से प्रयाण कर जायेगा, किन्तु 'लाइटू फाउन्टेन' सदा अमर रहेगी।"

कार्यबहुल एवं गम्भीर साधनामय जीवन होते हुए भी उन्होंने गुरुदेव के निर्देशन में सन् १९४८ में योग-म्यूज़ियम (योग-कौतुकालय) की स्थापना की जिसमें वेदान्त का सारा दर्शन तथा योग साधना की सभी प्रक्रियाएँ चित्रों द्वारा दर्शायी गयी हैं।

सन् १९४८ के अन्तिम दिनों में जब श्री निजबोध जी ने दिव्य जीवन संघ के महासचिव के पद से अवकाश ग्रहण किया, तो गुरुदेव ने श्रीधर को उनके स्थान पर मनोनीत किया। अब उनके कन्धों पर संघ की व्यवस्था का महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा। इस नियुक्ति के तत्काल बाद ही इन्होंने संस्था की सभी प्रवृत्तियों में उपस्थित रह कर, मन्त्रणा दे कर तथा बुद्धिमत्तापूर्वक उनका नेतृत्व वहन कर आध्यात्मिकता का पुट दिया। वह सभी को अपनी चेतना को दिव्य चेतना के समकक्ष लाने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे।

१० जुलाई १९४९ को गुरु-पूर्णिमा के दिन श्रीधर परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज से दीक्षा ले कर संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हुए। अब वह 'स्वामी चिदानन्द' के नाम से अभिहित हुए। चिदानन्द का अर्थ है-सर्वोपरि चेतना और ज्ञान में स्थित व्यक्ति।

भारत के विभिन्न भागों में दिव्य जीवन संघ की शाखाओं के कुशलतापूर्वक संयोजन का श्रेय उन्हें प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त सन् १९५० में गुरुदेव की नवयुग निर्माणकारी अखिल भारतीय यात्रा की सफलता में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। सब लोगों के सम्मिलित प्रयास से भारत

के बड़े-बड़े राजनैतिक तथा सामाजिक नेता गण, राजकीय उच्च पदाधिकारी तथा राज्यों के नरेशों में दिव्य जीवन के अभियान की ओर जाग्रति पैदा की।

गुरुदेव ने स्वामी चिदानन्द को अपने व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में नूतन जगत् में दिव्य जीवन के सन्देश का प्रचार करने के लिए भेजा। उन्होंने अमरीका का यह विस्तृत पर्यटन सन् १९५९ के नवम्बर माह में आरम्भ किया। अमरीकावासियों ने पाश्चात्य वैचारिक भूमि में पले हुए लोगों में भारतीय योग की व्याख्या प्रस्तुत करने में पूर्ण निष्णात भारत के एक योगी के रूप में उनका स्वागत किया। उन्होंने दक्षिणी अमरीका का भी पर्यटन किया और माण्टीवीडियो तथा ब्यूनिस आयर्स आदि नगरों में धर्म-प्रचार किया। अमरीका से उन्होंने यूरोप की क्षिप्र यात्रा की और १९६२ के मार्च माह में आश्रम वापस आ गये।

अप्रैल १९६२ में उन्होंने दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया। अपनी इस यात्रा में वह दक्षिण के मन्दिरों और तीर्थस्थानों के दर्शन करते तथा आत्मप्रेरक भाषण देते थे। गुरुदेव की महासमाधि से लगभग आठ-दश दिन पूर्व ही वह १९६३ की जुलाई के प्रारम्भ में ही दक्षिण की यात्रा से आश्रम में वापस आ गये। इसे वह एक अलौकिक घटना ही मानते हैं।

अगस्त सन् १९६३ में वह गुरुदेव के उत्तराधिकारी के रूप में दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष तथा योग-वेदान्त आरण्य अकादमी के कुलपति निर्वाचित हुए।

महान् गुरु के एक सुयोग्य उत्तराधिकारी होने के नाते उन्होंने इन कतिपय वर्षों में न केवल इस संस्था की सुदूर देशों तक फैली हुई शाखाओं के ढाँचे में ही, वरन् विश्व-भर के उन असंख्य साधकों के हृदयों में भी जो कि उनका परामर्श, उनकी सहायता तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहे हैं-त्याग, सेवा, प्रेम और आध्यात्मिकता का झण्डा ऊँचा बनाये रखने के लिए अथक श्रम किया है। एक उन्नत कोटि के संन्यासी का अनुकरणीय जीवन-यापन करने, आध्यात्मिकता का आकर्षण-केन्द्र होने तथा विश्व में दिव्य जीवन के भव्य आदर्शों को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए अपने बहुमुखी उग्र प्रयास के कारण वह सभी लोगों के प्रेम-पात्र बन गये।

पूर्ण अवधानपूर्वक सुरक्षित उनके व्यक्तित्व के स्वभावगत सौजन्य तथा स्वच्छन्द सेवाभावी प्रेमल स्वभाव ने लाखों व्यक्तियों के जीवन में अमित सान्त्वना प्रदान की है। देश के सुदूर और निकट के स्थानों की यात्रा के साथ-साथ स्वामी जी ने अभी हाल ही में मलेशिया तथा हाँगकाँग की यात्रा की और वहाँ पर सच्ची संस्कृति, आध्यात्मिकता तथा सभी कर्मों में अहंभावराहित्य की भावना को विकीर्ण एवं प्रसारित किया और इस भाँति अगणित व्यक्तियों के हृदयों में दिव्य जीवन-यापन की कला स्थापित की। उनके इन गुणों के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग उनके प्रति अमित कृतज्ञता का भाव द्योतन करते हैं।

संसार-भर में दिव्य जीवन के महान् आदर्शों के पुनरुज्जीवन के लिए अथक परिश्रम करते-करते २८ अगस्त २००८ को परम आराध्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हो गये।

प्रस्तावना

(१)

"महाजनो येन गतः स पन्थाः"

"महात्माओं का महान् जीवन,
करता है प्रेरित हमको ।
बनायें अपने जीवन को,
हम उन जैसा महान् ।।"

जीवन के दुर्गम पथ पर संघर्षरत परिश्रान्त पथिक के लिए ज्योतिर्मय महान् व्यक्तियों का जीवन एवं उनके कार्य अनवरत प्रेरणा एवं नवचेतना के स्थायी स्रोत हैं। सन्तों और ऋषियों की दैनन्दिन प्रवत्तियाँ एवं शिक्षाप्रद सम्भाषण भ्रमित पथिकों के लिए अतीव सहायक, पथ-प्रदर्शक एवं निर्देश-पुस्तक तुल्य हैं।

इहलौकिक अस्तित्व के अन्ध-सागर में जब जीवन की जीर्ण-शीर्ण नौका शक्तिशाली माया-द्वन्द्व तथा वासनाओं के प्रबल झंझावात के थपेड़ों से डाँवाडोल हो जाती है, तब संसार-सागर के तूफानों में भटके हुए एकाकी यात्री के लिए दिव्य महान् आत्माओं के देदीप्यमान जीवन-चरित्र प्रकाश स्तम्भ की जाज्वल्यमान किरणों के समान शक्ति व शान्ति प्रदान करते हैं।

ऐसे अनुकरणीय आदर्श सच्चरित्र भ्रान्त, परिश्रान्त मानवता के लिए अत्यन्त महत्त्व की वस्तु हैं।

ये अज्ञान और बुराई की शक्तियों के विरुद्ध महत्त्वपूर्ण अस्त्र हैं तथा पूर्णता के पथ पर प्रगतिशील पथिक को विचलित करने वाली अनेक दुःखदायी समस्याओं के समाधान हेतु सत्प्रयत्न में कल्पनातीत सहायता प्रदान करते हैं। उनके व्यावहारिक जीवन की प्रेरणादायी एवं जाग्रति लाने वाली

शक्ति-जो जिज्ञासु के सम्मुख प्रस्तुत है-मानव में सन्निहित उच्चता, श्रेष्ठता एवं दिव्यता को प्रस्फुटित करने और इनके आदर्श के अनुकरण के लिए प्रोत्साहित करने में है। इसी में उनकी महत्ता है।

प्रिय पाठको! इस पुस्तक में इस महान् चरित्र के वर्णन करने का उद्देश्य भी यही है। आप इससे अपनी उत्सुकता और पात्रता के परिमाणानुसार ही प्रेरणा, मार्ग-दर्शन और शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या प्रकाश और मार्गदर्शन के लिए इतनी तीव्र माँग वास्तव में है भी? पाठको! केवल अपने नेत्र खोलिए और मानवता की दशा चारों और देखिए। इसी में प्रश्न का उत्तर सन्निहित है। मानवता सुख की खोज में तड़प तो रही है; परन्तु उसे इन्द्रियगोचर नश्वर पदार्थों में ढूँढ़ रही है।

मानव सच्चे सुख का न तो स्वरूप ही जानता है, न ही उसे ज्ञान है कि उस शाश्वत सुख की निश्चित रूप से कहाँ और कैसे प्राप्ति हो सकती है? यह सब भाग-दौड़ अन्धकार में टक्कर मारने के तुल्य है। इस खोज ने आधुनिक युग के मानसिक क्षितिज को परस्पर विरोधी सैकड़ों सिद्धान्तों, सम्प्रदायों, दर्शनों और मतों से भ्रमित कर दिया है।

प्रत्येक सम्प्रदाय उद्‌घोषित करता है कि उसका मत ही सच्चा है और भ्रमित पथिक को अन्य मतों से बचे रहने के लिए सावधान करता है। तभी तो सर्वत्र मार्ग-दर्शन, निर्देशन और प्रकाश के लिए पुकार हो रही है। प्रत्येक की जिह्वा पर एक ही प्रश्न है कि सच्चे आनन्द का मार्ग कौन-सा है और इसकी खोज किस दिशा में की जाय? ऐसे गम्भीर अवसर पर पुरातन ऋषि व्यास-रचित एकादश तत्त्व में दी हुई शिक्षा का स्मरण होता है, जो इस प्रकार है :

"श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोऽपि भिन्नाः
तथा मुनीनां मतयोऽपि भिन्नाः ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।''

अर्थात् श्रुतियाँ परस्पर विरोधी हैं और स्मृतियों में भी एक मत नहीं है। इसी प्रकार पुरातन ऋषियों के मतों में भी विभिन्नता है। प्रतीत यह होता है कि धर्म का तत्त्व कन्दराओं में लुप्त हो गया है। जिस मार्ग पर चल कर महात्माओं ने अपना अपना जीवन व्यतीत किया, अब वही एकमात्र अनुकरणीय मार्ग है।

भ्रमित मानवता के लिए यही एक निश्चित अभिमत है। उल्लेखनीय बात यह है कि महापुरुष, चाहे वे किसी भी युग, देश तथा जाति से सम्बन्धित रहे हों, उनकीजीवनियों को प्राणमय बनाने वाले हृदय और मस्तिष्क सम्बन्धी मौलिक गुण या ऊँची भावनाएँ उनमें सर्वत्र समान हैं।

प्रिय पाठक! अब मैं आपको एक ऐसे आदर्श जीवन का परिचय देने जा रहा हूँ जो व्यतीत हुआ है और हो रहा है। किसी विशेष वातावरण में इस जीवन में क्या प्रतिक्रियाएँ हुईं तथा कौन-सी उच्च भावनाओं से प्रेरित हो कर ऐसे कार्य किये जो बाह्यतः अभद्र तथा रुक्ष प्रतीत होते

थे; किन्तु उनके पीछे कितनी सद्भावनाएँ छिपी थीं; इन सबको लेखक ने जिस रूप में देखा, उनका कुछ अंश लेखबद्ध किया जा रहा है।

वे अंश उत्साहमय, उच्च तथा पूर्ण जीवन के पक्षों को अभिव्यंजित करते हैं। उनके जीवन का आनन्द दूसरों को, यहाँ तक कि संसार-भर को दिन-रात निरन्तर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक रूप में अपना जीवन तथा समय प्रदान करने में पूर्णतया आधारित है। इस तैलधारावत् आत्म-त्याग की भावना से सन्तुष्ट न हो कर स्वामी जी का जीवन सदैव नित्य नयी विधियों को अपनाने में रत है जिससे वे संसार-भर के क्षुद्र प्राणी तक पहुँच कर उसका कष्ट मिटा सकें। इस प्रेमिल और निष्काम सेवा में ही अपने को मिटा देने वाले स्वामी जी के हर्षोल्लास व अखण्ड आनन्द का रहस्य छिपा है। आनन्दपूर्ण त्याग ही जीवन है, प्रमाद या आराम नहीं।

इस असावधानी-युक्त जीवन की अमितव्ययिता के साथ-साथ आध्यात्मिक जाग्रति की एक अगाध और मूक अन्तर्धारा प्रवाहित है, जो सार्वभौमिक शक्ति एवं प्रेम का भास निरन्तर दिलाये रखती है तथा यह जानती है कि यह शक्ति एवं प्रेम की धारा ही उनके क्रिया-कलापों में बह रही है। उनका जीवन शिशुवत् विनम्रता से परिपूर्ण है जिसे साधारण दर्शक समझने में असमर्थ है। अद्वितीय सरलता, पूर्ण निष्कपटता, पूर्ण निस्स्वार्थता और अनासक्ति- ये सब अन्तर्चेतना से प्रस्फुटित हुए हैं।

स्वामी जी के विषय में पूर्ण ज्ञान से रहित दीन लेखक-रूपी प्रिज्म (संक्षेत्र जिससे सूर्य की सप्तरंगी किरणें वक्रित हो प्रतिबिम्बित होती हैं) द्वारा उनके जीवन्त प्रकाशमय जीवन की कुछेक किरणें प्रतिबिम्बित करने का एक विनम्र प्रयास किया है। सम्भव है इनसे किसी का पथ प्रकाशमय हो जाये, उसका हृदय ज्योतित हो जाये जिससे कि उच्चतर जीवन-पथ पर वह सशक्त हो कर अग्रसर हो सके। प्रत्येक व्यक्ति के अज्ञानान्धकार के विनाश एवं संशय-निवारणार्थ ये अतीव सक्रिय सहायक होंगी।

सौभाग्य से जिस महान् व्यक्तित्व का मुझे सान्निध्य प्राप्त हुआ है, वह एक विकसित पुष्प है जिसके अंकुरण और विकास को जानने के लिए हमें उनके प्रारम्भिक जीवन को देखना होगा, जो उन्होंने मलेशिया के चिकित्सालय में एक परिश्रमी चिकित्सक के रूप में व्यतीत किया। वह दशक इनके मूक विकास का काल था जो इन्होंने यत्नपूर्वक मानवता के संकट-निवारण में लगाया।

यौवन के स्वर्णिम काल में जब हममें से अधिकांश व्यक्ति अपना समय जीवन के सुखोपभोग प्राप्त करने में लगा देते हैं, इन्होंने उस समय की बहुत अधिक एवं ज्वलित शक्ति का प्रयोग प्रसन्नतापूर्वक एवं मुक्त हृदय से अपने आस-पास की जनता के कल्याणार्थ किया।

अपने प्रारम्भिक जीवन के क्रिया-कलापों का वर्णन करने को वे सदैव नकारते रहे। अब भी मूक रूप से प्रतिदिन की गयी मानवता की सेवा एवं प्रेम का वे बखान नहीं करना चाहते। सुअवसर पा कर, कौशल से प्रेरणा दे कर हम उनके मौन के स्व-बन्धन को हटाने में तथा यदा-कदा उनके जीवन के विषय में कुछ जानने में सफल हुए। अन्ततः उनके स्वभाव के मर्म-स्थलों को स्पर्श करने से बहुत-सी बातें इस प्रकार प्रकाश में लायी जा सकीं।

आध्यात्मिक पथ के जिज्ञासु होने के नाते बहुत बार हमें अनेक कष्टदायक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्वामी जी को अनेक जिज्ञासुओं के अनेक पत्र आते रहते थे, जिनमें वे अपनी कठिनाइयों के निवारणार्थ एवं मार्गदर्शनार्थ प्रार्थना करते थे। इससे प्रोत्साहित हो कर हम इनसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते थे कि वे हमें बतायें कि इन्होंने प्रारम्भिक काल में ऐसी कठिनाइयों का समाधान कैसे किया, इनकी सफलता का रहस्य क्या रहा, इनकी प्रस्फुटित शक्ति और आनन्द का स्रोत क्या रहा और अब उनके जीवन के प्रत्येक क्षण एवं हर एक कार्य के प्राणमय होने का रहस्य क्या है ?

हमने इस बात पर बल दिया कि इन सब प्रेरणादायक उदाहरणों से हमारे साथ- साथ समग्र संसार लाभान्वित होगा और जिन सिद्धान्तों से वे प्रेरित हुए तथा जिन शिक्षाओं का उन्होंने अनुसरण किया, उनसे तथा उनके चरित्र के आदर्श द्वारा हमें मार्ग-दर्शन एवं पर्याप्त सहायता मिलेगी। हमने उन्हें बताया कि उनके व्यक्तिगत संकोच से हम उनके सिद्धान्तों की व्यावहारिक उपयोगिता से वंचित रह कर हानि में रहेंगे। हमने आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि सबकी भलाई के लिए उनको बताना ही होगा। इस प्रकार हम उनके जीवन के कार्य-कलापों पर पड़े आवरण को हटाने में सफल हुए।

ऋषिकेश, हिमालय के पुण्यशील मनीषी एवं सन्त श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज आधुनिक आध्यात्मिक जगत् में सर्वत्र विख्यात हैं। बीसवीं सदी के पिछले पचास वर्षों में वे अपने समय के उन जगद्‌गुरुओं में से एक हैं जिन्होंने संसार के अनेक देशों के लाखों लोगों के हृदयों में आध्यात्मिक जाग्रति उत्पन्न की। विश्व-भर के असंख्य जिज्ञासु इनके आभारी हैं। उनके लिए वे एक कृपालु शिक्षक, महान् सद्‌गुरु और अनुपम व करुणामय सन्त हैं।

उन्होंने आध्यात्मिक प्रकाश प्रकाशित कर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को शान्ति तथा आनन्द प्रदान किया। इनका चित्ताकर्षण एवं देदीप्यमान व्यक्तित्व भद्रता, निस्स्वार्थता और सार्वभौमिक प्रेम से दीप्त है जिसके कारण ऋषिकेश के सन्निकट पावनी गंगा-तट पर अवस्थित सुन्दर आध्यात्मिक कुटीर पर आधुनिक संसार को दशों दिशाओं से उत्कट जिज्ञासु और भक्त वैसे ही आकृष्ट हुए हैं, जैसे पूर्ण विकसित कमल-पुष्प पर मधुमक्खियाँ आकर्षित होती हैं।

इनका सम्पूर्ण जीवन पूर्णतया निरन्तर आध्यात्मिकता के क्षेत्र में समर्पित हुआ जिसने इन्हें जिज्ञासु साधक तथा स्त्री-पुरुष, युवक, वृद्ध, विद्यार्थी, शिक्षक, व्यवसायी, राजनीतिज्ञ जैसे सभी प्रकार के व्यक्तियों को शिक्षण-प्रशिक्षण देने, प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन देने, प्रेरित करने, शान्ति प्रदान करने, रूपान्तरण लाने तथा सहायता करने में अहर्निश व्यस्त रखा। स्वामी शिवानन्द जी इस अथक अनवरत आध्यात्मिक कार्य में व्यस्त रह कर १४ जुलाई, १९६३ को अपना पार्थिव शरीर त्याग कर ब्रह्मलीन हुए।

आधुनिक भारत का पावन सन्त जगत् को प्रकाशित करने वाला प्राची दिशा का प्रकाश था। उनके देश ने मुनियों, पुण्यात्माओं, सन्तों और ऋषियों की इस भूमि में जन्म लेने वाले उच्च कोटि के आध्यात्मिक मार्ग-प्रदर्शकों में से उन्हें एक महान् सन्त माना। उन्होंने अपनी आजीवन की सेवाओं से वैदिक धर्म को पुनर्जीवित किया। योग-वेदान्त की अध्यात्म-विद्या का प्रभावशाली प्रचार किया जो वर्तमान शती में अद्वितीय तथा विशिष्ट मानी गयी।

इनका नाम असंख्य घरों में विख्यात है, जो आध्यात्मिक जगत् में आदर्श चरित्र और निष्काम सेवा का द्योतक बन गया है। स्वामी शिवानन्द जी ने मानवता की निष्काम सेवा, भगवान् की पूजा व आराधना, दिव्य ज्ञान की प्राप्ति व ध्यान के अभ्यास तथा आत्म-साक्षात्कार द्वारा मुक्ति का उपदेश दिया।

इन्होंने सत्य, अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के आचरण पर बल दिया। सत्यता, शुद्धता, प्रेम, सेवा, भक्ति, ध्यान तथा ईश्वरानुभूतिमय जीवन को स्वामी जी ने 'दिव्य जीवन' की संज्ञा दी है। १९३६ में संस्थापित अपनी 'दिव्य जीवन संघ' संस्था द्वारा इन्होंने दिव्य सन्देशों का प्रचार किया। वे दिव्य जीवन के धर्मदूत के रूप में अभिनन्दित हुए।

इस लघु पुस्तक 'आलोक-पुंज' (LIGHT FOUNTAIN) में यह प्रयास किया गया है कि महान् आध्यात्मिक देदीप्यमान व्यक्ति के दैनिक जीवन पर सूक्ष्म दृष्टि डाली जाये तथा इनके उस प्रारम्भिक जीवन का चित्रण किया जाये, जब इन्होंने सुदूर मलेशिया में एक चिकित्सक के रूप में मानवता की सेवा, उपचार और सुख देने का अथक परिश्रम किया।

इस पुस्तक में हम विनय भाव से उस पुण्यशील व्यक्तित्व के रहस्यों का अध्ययन करेंगे जिनके द्वारा दिव्य जीवन-यापन कर इन्होंने आत्मोन्नति, आन्तरिक उद्घाटन तथा आध्यात्मिक परिपूर्णता प्राप्त की। यह पुस्तक दिव्य पूर्णता-प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने तथा आदर्श जीवन-यापन करने के अभिलाषी हम सभी के लिए प्रकाश-स्रोत है।

इस पुस्तक की रचना १९४३-१९४४ में हुई थी, जब परम पूज्य स्वामी जी मानवता की आध्यात्मिक सेवा के प्रेरक तथा शक्तिमय संचालन के भव्य रूप में सशरीर विराजमान थे, इसी कारण पुस्तक में वर्तमान काल की क्रियाओं का प्रयोग है।

सादर, सभक्ति, श्रद्धा-सहित मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने वाले समस्त साधकों, जिज्ञासुओं पर गुरुदेव की कृपा बनी रहे ! समस्त जिज्ञासु उच्चतम आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करें! परम श्रेयस् तथा दिव्यानन्द की अनुभूति करें!

ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय !

-स्वामी चिदानन्द

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

जीवन-प्रभात

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

वर्षों पूर्व मलाया में, चिकित्सा-कार्य में रत, युवा डाक्टर कुप्पूस्वामी ने अपने इसी क्षेत्र में परिपूर्णता प्राप्त की। इन्होंने अपने-आपको मिटा दिया। वे अपनी शक्ति, अपनी प्रतिभा और अपने

शरीर को भी अपना नहीं समझते थे। वे उन सब प्राणियों के थे, जिनको उनकी आवश्यकता थी तथा जो दुःखी थे। वे अपनी किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करते थे।

एक बार की घटना है कि एक परिहा (अस्पृश्य) दीन स्त्री प्रसवावस्था में थी। उसका अपना कहने को कोई नहीं था और न ही कोई सहायक था। सुविख्यात परिवार का यह युवा ब्राह्मण चिकित्सक-हृदय की समस्त करुणा व सहानुभूति लिये तुरन्त ही उसके पास पहुँचा और व्यग्र हो ऐसी परिचर्या की, मानो वह उसकी अपनी बहन हो । उन्होंने यथासम्भव सभी सुविधाएँ प्रदान कीं व आवश्यकतानुसार रात्रि-भर जागरण किया, उस स्त्री के क्षुद्र घर के बाहर धरती पर लेटे-लेटे रात्रि व्यतीत की। जब कार्य पूर्ण हो चुका, तभी वह घर लौटे और अपनी ओर उनका ध्यान गया।

सबको मित्रवत् समझने, दर्द को दूर करने, दुःख को मिटाने, आराम तथा सान्त्वना देने की यह उत्कट पिपासा ही उनके जीवन की प्राणदायिनी शक्ति थी। सच्ची निष्कामता और सहानुभूति की अगाधता ही आपके व्यक्तित्व के प्रमुख लक्षण थे। यह वही दुर्लभ सद्गुण है, जो सुख का केन्द्रीय रहस्य है, जिससे आपका जीवन परिपूरित है। सहानुभूति तथा प्रेम से अभिभूत हो कर ही व्यक्ति 'स्व' (अहं) का विस्मरण करता है।

जो पाठक मद्रास के सन्त-तुल्य डाक्टर रंगाचार्य के जीवन से परिचित हैं, उन्हें स्मरण होगा कि किस प्रकार सहानुभूति तथा प्रेम की भावना ही उनके सफल जीवन का प्रमुख स्वर थी। विश्वविख्यात स्तर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक से भी अधिक वह करुणामय रूप में सहस्रों कृतज्ञ हृदयों में प्रतिष्ठित थे। वह सबकी सप्रेम सेवा के लिए, चाहे वह कितना ही क्षुद्र अथवा दीन-हीन क्यों न था, सदैव तत्पर थे। उदाहरण है कि उन्होंने सब कार्यों का विस्मरण कर (तिलांजलि दे) अपनी कार एक किनारे लगा कर, उससे उतर कर, प्रसव-व्यथा से पीड़ित स्त्री के निकट जा कर, उसकी परिचर्या की जो निराश्रित तथा नीच जाति की थी। बहुधा अपने परिचर्या-गृह में कुछ दिन रोगियों का उपचार करने पर वह थोड़ा भी चिकित्सा-शुल्क, जो वे संकोचवश देते थे, स्वीकार नहीं करते थे। उसके स्थान पर वे उन्हें उससे द्विगुणित राशि आहारादि के लिए भेंट-स्वरूप में स्वीकार करने के लिए विवश करते थे और उनके सभी आग्रहों को नकार कर उन्हें विदा करते थे।

इसी प्रकार स्वामी जी जब मलाया में थे, तो निर्धन रोगियों को अपने निवास-स्थान पर रखते थे और तब तक उनकी सेवा-सुश्रूषा करते, जब तक वे स्वस्थ न हो जाते। निजी राशि में से कुछ उपहार दे कर उन्हें विदा करते। बिना किसी घृणा के अस्पृश्य रोगियों को वे प्रेमिल सहारा देते थे। यदि वे शय्या से उठने में असमर्थ होते, तो सहर्ष वे स्वयं उनके बिस्तर झाड़ कर स्वच्छ कर देते।

बात ध्यानाकृष्ट करने की जो है, वह यह है कि यद्यपि वे ममता से परिपूर्ण तथा सुकोमल चित्त के थे तथापि इन स्त्रियोचित लक्षणों ने उन्हें दुर्बल, कायर और दुर्बल संकल्प वाला नहीं बनाया। इसके विपरीत स्त्रियोचित सहानुभूति, ध्यान रखने तथा आराम व सुख देने की कामना आदि समस्त गुणों में वे फ्लोरेंस नाइटिंगेल-तुल्य भावपूर्ण तथा प्रेरणाप्रद थे। इनका प्रत्येक कार्य साहस और उद्देश्यपूर्ण था। इनका जीवन वीरतापूर्ण, सक्रिय व साहसी रहा।

वे सभी सामाजिक समारोहों के, जिन्हें वे सोल्लास एवं सक्रिय क्रियाओं द्वारा प्राणवान् करते थे, प्राण थे। अस्पताल में यदि कोई आपत्ति आ जाती, कर्मचारियों में किसी प्रकार की असन्तुष्टि व्याप्त हो जाती, हड़ताल की धमकी का अवसर आता, तो यही युवा डाक्टर था जो घटना स्थल पर पहुँच कर तुरन्त सब-कुछ व्यवस्थित कर देता। नगर-भर से अपरिचित किसी व्यक्ति का सम्पर्क यदि युवा डाक्टर से हो जाता, तो तत्क्षण ही उसकी सब समस्याओं का समाधान हो जाता। जो भी वह चाहता, उसके कहने के पूर्व ही, उत्सुक आतिथेय द्वारा उसकी व्यवस्था उसकी प्रस्थान-वेला तक, जब तक कि डाक्टर स्वयं ही उसे विदा न देता, कर दी जाती।

उन्हें खेलों में विशेष रुचि थी। वे महत्त्वपूर्ण खेल प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होते थे। मलय टाइम्स पत्रिका में वे अपने लेख भेजते थे। चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षाप्रद लघु पुस्तकों के वे रचयिता थे। एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रिका का वे सम्पादन भी करते रहे।

यदि आज का युवा-वर्ग सेवा की ऐसी उत्कट भावना से प्रेरित हो उठे, तो उसके जीवन से शोक का मूलतः नाश हो जायेगा। संसार स्वर्गमय हो जायेगा। धरती आनन्दपूरित हो कर धन्य हो उठेगी।

कुछ वर्षोपरान्त, जब स्वामी जी फ़ैशनेबल डाक्टर नहीं रहे थे, प्रत्युत ऋषिकेश में एकान्तवास कर, घोर तपश्चर्या एवं साधना में लीन थे, उनमें पूर्व-काल की करुणा एवं सेवा की वही प्रबल भावना भड़क उठी थी। परम तत्त्व की खोज के लिए सांसारिक प्रलोभनों से विमुख होने से अभिप्राय यह नहीं था कि श्रेष्ठ भावनाएँ, जो उनका सहज स्वभाव था, दब जायें एवं सद्भावनाओं को नष्ट कर दें। वे सद्भावनाएँ दिव्य निष्कामता एवं व्यापक चेतना के संस्पर्श से और भी अधिक परिशुद्ध एवं उद्दीप्त हो उठीं।

यहाँ हम एक घटना का वर्णन करते हैं जो स्वामी जी के अद्भुत व्यक्तित्व के आश्चर्यजनक पक्षों को प्रकट करती है। संन्यास में दीक्षित होने के उपरान्त बदरीनाथ के यात्रियों को औषधि दे कर सहायता करना स्वामी जी के जीवन का क्रम बन गया। बदरीनाथ की यात्रा का मार्ग आपत्तियों से परिपूर्ण, दुर्गम एवं बीहड़ था। जो भी यात्री आपके सम्पर्क में आते, आप उन्हें सात-आठ दवाइयों का एक पैकेट बना कर वितरित कर देते।

एक बार की बात है कि एक दिन सन्ध्या-समय एक बदरी-यात्री आपसे मिलने आया। थोड़ी बातचीत के अनन्तर जब वह यात्री चलने लगा तो स्वामी जी ने उसे दवाइयों का पैकेट दिया तथा सेवन विधि समझायी। यात्री अगली चट्टी लक्ष्मणझूला की ओर चला गया। कोई और होता तो वह इतने ही सत्कार्य से सन्तुष्ट हो कर आनन्द की नींद सो जाता; पर स्वामी जी ऐसे नहीं थे। यात्री के जाने के पश्चात् स्वामी जी को स्मरण आया कि उसे कुछ विशेष दवा दी जाती तो वह अधिक लाभकारी सिद्ध होती। स्वामी जी का मन रह-रह कर विचार करता रहा कि यथाशक्ति जितनी सेवा कर सकता था, उतनी नहीं की।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही वह यात्री को दवा देने के लिए दुर्गम पथ पर दौड़ पड़े। जब वह अगली चट्टी (पड़ाव) पर पहुँचे, तो पाया कि उनसे भी जल्दी उठने वाला यात्री अपनी यात्रा पर अग्रसर को चुका था। स्वामी जी हताश नहीं हुए। तुरन्त ही गरुड़चट्टी पहुँचने के लिए चढ़ाई चढ़ने लगे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि वह और आगे बढ़ चुका है। आप हतोत्साहित

नहीं हुए। फूलचट्टी पहुँचे। वहाँ भी उसे न देख कर आप आगे बढ़े। पाँच मील के बाद स्वामी जी ने उसे पा लिया और वहाँ उन्होंने उसे हितकारी बहुमूल्य दवाई दे दी। तब तक नौ बज चुके थे। स्वामी जी को शीघ्र कुटिया पर पहुँचना था ताकि अन्नक्षेत्र से अपनी भिक्षा यथासमय प्राप्त कर सकें।

हम यहाँ क्षणिक विराम लें और विचार करें कि यह घटना क्या अभिव्यक्त करती है? हम देखते हैं कि यह सेवा इतने मूक तथा प्रदर्शन-रहित ढंग से की गयी जिसका दोनों सम्बन्धित व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी और को पता तक न चला और यह सब-कुछ उस अपरिचित व्यक्ति के लिए हुआ जिसे पहले तो कभी देखा ही न था और सम्भवतः बाद में भी न देखा होगा। वे नाम मात्र की सेवा से सन्तुष्ट नहीं होते थे। जब तक वे शक्त्यनुसार अधिकतम सेवा न कर लेते, तब तक उनको चैन नहीं आता था। परोपकार की उत्कट आकांक्षा उनमें संस्थित थी। हस्तगत कार्य को बुद्धिमत्तापूर्वक सम्पन्न करते थे। उनमें सेवा की ऐसी विशुद्ध भावना थी कि आध्यात्मिक दिनचर्या तथा व्यक्तिगत सुख-आराम के समस्त विचार काफूर हो जाते थे।

स्वसुख की भावना पर, जो एक निष्काम सेवक के लिए घोर अवरोधक होती है, विजय प्राप्त कर छह मील की दौड़ लगाना उनकी निष्कपटता और सहृदयता का परिचय देते हुए आश्चर्यचकित कर देती है। साधारणतया यदि कोई अन्य व्यक्ति होता और थोड़ी दूर जाने पर यात्री को न पकड़ पाता, तो वह कर्तव्यपरायणता की इतिश्री मान लेता। यह समूची घटना यह अभिव्यंजित करती है कि उनका व्यक्तित्व किस धातु का बना था।

एक अन्य समय की बात है कि एक वृद्धा ने उतावली में स्वर्गाश्रम से सात मील दूर नीलकण्ठ महादेव मन्दिर की दुर्गम चढ़ाई चढ़ने की ठान ली। वह थकावट से चूर हो गयी थी। जब वह लौटी, तो उसके दोनों पैरों पर सूजन थी। स्वामी जी ने निस्संकोच उसकी चिकित्सा की। वे उसके पैरों की मालिश तब तक करते रहे, जब तक उसे पूर्ण आराम नहीं मिला।

कई अवसरों पर वे साधना एवं तपश्चर्या को छोड़ रोगी की परिचर्या तब तक करते रहते थे, जब तक रोगी पुनः स्वास्थ्य लाभ न कर लेता। ऋषिकेश में एक कनिष्ट संन्यासी स्वामी आत्मानन्द जी जब गम्भीर रूप से बीमार हो गये, तो आप तुरन्त स्वर्गाश्रम से ऋषिकेश आ गये और तीन सप्ताह तक वहाँ रह कर तब तक परिचर्या करते रहे, जब तक उनकी स्थिति खतरे से बाहर नहीं हो गयी।

उस कृतज्ञ संन्यासी ने पिछले दिनों यह लिखा- "जिन्हें गुरुदेव कहने का मैं सौभाग्य मानता हूँ, वे स्वयं मेरी परिचर्यार्थ मेरी अति-रुग्णावस्था में ऋषिकेश में निकट की धर्मशाला में लगभग बीस दिन रुके। उस रोग में जिसमें मेरे प्राण संकट में थे, मुझे जीवन-दान दिया। एक यूरोपियन साधु मेहरबाबा का शिष्य स्वामी जी को बताया करता था कि जब कभी मेहरबाबा उसकी रोगशय्या के पास पहुँचते, उसे तत्क्षण ही स्वास्थ्य-लाभ की लहरियों का भास होता, शीघ्र ही वह आरोग्य का स्पन्दन अनुभव करता तथा स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करता। वास्तव में सहज और अहैतुकी प्रेम यदि एक सौभाग्यशाली अधिकारी से उद्भूत हो, तो सकारात्मक शक्ति का अनुभव कराता है। यही प्रेम था जिसके कारण लोग भगवान् बुद्ध और हजरत ईसा की ओर आकृष्ट होते थे। आजकल सन्तमूर्ति, देश-प्रेमी महात्मा गान्धी जी की ओर भी उसी आदर-भाव से जनता खिंची जा रही है।

आधुनिक बालचर को प्रेरित किया जाता है कि वह प्रतिदिन कम-से-कम एक सत्कार्य अवश्य करें; किन्तु स्वामी जी प्रत्येक व्यक्ति से, जो उनसे भेंट करने आता है, आग्रहपूर्वक कहते हैं कि वह प्रातः से सायंकाल तक दिन-भर परोपकार ही करता रहे। प्रत्येक स्थान, प्रत्येक परिस्थिति और जागृति काल में सर्वदा 'सेवा' ही उसका उद्देश्य होना चाहिए।

भला करने और उपयोगी बनने का मनोभाव श्री स्वामी जी के निश्चयात्मक चरित्र को दर्शाता है। "सदैव सेवा के सुअवसर को ढूँढ़ने में प्रयत्नशील रहो। सेवा के सुअवसर को कदापि हाथ से न जाने दो। सदा इस ताक में रहो कि सदुपयोगी होने के प्रस्तुत सुअवसर को पकड़ सको। पैनी दृष्टि से देखो कि तुम आस-पास वालों के लिए किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकते हो।" उत्सुक कार्यकर्ताओं को इस प्रकार की शिक्षा देना उनको रुचिकर था।

वे इससे भी एक पग आगे बढ़े कि तुम्हें सेवा का अवसर स्वयं ढूँढ़ लेना चाहिए। अवसर की प्रतीक्षा चुपचाप बैठ कर नहीं करो। स्वभाव, बुद्धि एवं नैसर्गिक प्रतिभा के अनुसार जो पथ विशेषतया तुम्हें अनुकूल पड़ता हो, उसमें अपने-आपको उपयोगी एवं सहयोगी बनाने के साधनों का सृजन करो।

किसी को भी अपनी ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि व्यक्ति सुन्दर-सुडौल शरीर और शक्ति-युक्त प्रवृत्ति का है, तो उसे चाहिए कि वह आसन और व्यायाम सीखे तथा युवा-वर्ग और विद्यार्थियों में शारीरिक शिक्षा का प्रचार करे। उसे समाज की सक्रिय तथा उत्कट सेवा में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। चिकित्सक को निर्धन रोगियों का निःशुल्क उपचार करना चाहिए। उसे मृदुता तथा सहृदयता से रोगी की परिचर्या करनी चाहिए। रोगियों के साथ व्यवहार में वह पूर्णतया ईमानदार रहे।

एक विधिवेत्ता को झूठे मुकदमों का पक्ष लेने से इनकार कर देना चाहिए और असत्य के निकट जाने से इनकार करना चाहिए। वकील होने के नाते सच्चे न्याय के प्रति यही महान् सेवा होगी। शिक्षा क्षेत्र में अध्यापक या आचार्य को चाहिए कि उसके संरक्षण में जो विद्यार्थी हैं, उनको आदर्श-युक्त बनाने में मन-प्राण से जुट जाये। व्यापारी लेन-देन (व्यापार) में अपनी ईमानदारी से समाज की सेवा कर सकता है। निम्न श्रेणी के कर्मचारी को चाहिए कि अपने दैनिक कर्तव्यों को ईमानदारी से निभाये। अतः व्यक्ति अपने-अपने विशिष्ट क्षेत्र में सेवा और उपकार के आदर्श को सम्मुख रखे।

ब्राउनिंग (Browning) के सदृश स्वामी जी का दृढ़ विश्वास है कि भगवान् की दृष्टि में सब प्रकार की सेवाओं की महत्ता समान है। सेवा का कोई भी कार्य, चाहे तुच्छ (क्षुद्र) ही क्यों न हो, उसकी उपेक्षा न करे। यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि हम क्या करते हैं, बल्कि यह कि किस भावना से करते हैं, उसका महत्त्व है। प्रत्येक कार्य को एक सुन्दर पुष्प की भाँति मानवता में अभिव्यक्त विराट्-स्वरूप भगवान् के चरणों में सादर समर्पित करो। और मैंने देखा है कि सेवा द्वारा आराधना, अर्चना करना स्वामी जी के लिए एक काव्योक्ति ही नहीं बल्कि यथार्थ सत्य है।

चिरकाल से ऋषिकेश एवं उसके सीमान्त क्षेत्र में वास करने वाले साधुओं के सम्पर्क में आने पर बातचीत द्वारा स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में स्वर्गाश्रम के दिनों की कुछ झलकियाँ मुझे मिल जातीं। इस भाँति मैं जो कुछ जान पाता, उनमें स्वामी जी की सेवा के ढंग के विषय में

जो महत्त्वपूर्ण बात मुझे नजर आयी, उसको हमें हृदयंगम करके अनुकरण करना चाहिए। वह गुण है आडम्बरहीनता एवं निस्स्वार्थता का। वे बताते थे कि किस प्रकार स्वामी जी उस अवसर का लाभ उठाते। जब वे (साधु) स्नान या शौचादि से निवृत्त होने के लिए जाते, तो स्वामी जी उनकी कुटिया को झाड़-बुहार कर स्वच्छ करते, बर्तन साफ करते तथा गंगा जी से ताजा जल ला कर रखते और चुपचाप चले जाते। यदि कोई महात्मा अस्वस्थ होता, तो स्वामी जी क्षेत्र में जा कर स्वयं उसकी भिक्षा लाते और थोड़ा अतिरिक्त दूध ला कर उसकी कुटिया में रख आते।

यह मूक और विनीत सेवा आदर और श्रद्धा की भावना से प्रेरित बड़ों के प्रति छोटों द्वारा की गयी सेवा नहीं थी। स्मरणीय है कि उस समय स्वामी जी की अवस्था चालीस के लगभग थी। इस समय तो मनुष्य में आत्म-सम्मान एवं अहं की भावना जाग्रत हो जाती है। यह तभी सम्भव हो पाया जब कि स्वामी जी ने जीवन पर्यन्त शिशुवत् सहज सरलता को बनाये रखा।

जब रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी स्वामी तन्मयानन्द जी महाराज भयंकर चेचक रोग से पीड़ित हुए, तो स्वामी जी ने दो-तीन सप्ताह तक निरन्तर उनके निकट रह कर उनकी सेवा-सुश्रुषा, पथ्य, स्वच्छता और स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का पूर्णरूपेण ध्यान रखा। नदी से जल का बर्तन भर कर लाते।

वर्षों पश्चात् संन्यासी तन्मयानन्द जी से, जो अब वृद्ध और अशक्त हो गये हैं, आकस्मिक भेंट हुई। उन्होंने बड़े भावपूर्ण ढंग से उक्त घटना का वर्णन किया और कहा- "उन्होंने मुझे अवश्यम्भावी मृत्यु के ग्रास से बचाया। जैसे उन्होंने मेरी चिकित्सा-परिचर्या की, ऐसी किसी से भी सम्भव न थी। यदि आपसे उनकी भेंट हो, तो मेरा सन्देश ले लो।" मैंने एक कागज पर स्वामी जी के लिए उनका अनौपचारिकतापूर्ण सन्देश लिखा जिसमें कृतज्ञतापूर्ण पुराने मित्रों के विगत जीवन की यादें भरी थीं।

निष्काम सेवा की सच्चाई की पहचान उसके उत्साह की तीव्रता की पूर्णता में है। उसके कार्यों में कोई मानसिक गोपनीयता नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार का लेशमात्र स्वार्थ भी न हो, अन्यथा भावुक हृदय इसे तुरन्त ही भाँप लेंगे। फिर वे अर्पित की हुई सेवा को स्वीकार करने में हिचकिचायेंगे।

उस समय (लगभग १९२६ में) एक युवा संन्यासी स्वर्गाश्रम में घोर तपस्या कर रहा था। वह दक्षिण प्रदेश के सम्भ्रान्त परिवार का युवक था। उसका वैराग्य पूर्ण था। आत्म-परित्याग घोर स्तर का था तथा उसने अपने को इसी रूप में स्थिर कर लिया था। वह अत्यधिक भावुक एवं कोमल प्रकृति का था। वह किसी से किसी भी प्रकार की भेंट स्वीकार नहीं करता था। किसी वस्तु को उधार पर भी न लेता था। स्वामी जी द्वारा दी गयी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को भी लेने से उसने दृढ़ता से इनकार किया और किसी भी प्रकार की छोटी-मोटी सेवा के लिए उसने स्वीकृति नहीं दी, किन्तु धीरे-धीरे परम निःस्वार्थता तथा सेवा की सच्ची भावना के कारण स्वामी जी ने उसे जीत लिया। अब स्वामी जी जो-कुछ लाते, उसे वह स्वीकार कर लेता। इस प्रगाढ़ अहैतुकी प्रेम ने भास्करानन्द (युवा संन्यासी का नाम) की कठोरता को, जिसके लिए वे उस क्षेत्र में विख्यात हो चुके थे, कोमलता में परिणत कर दिया।

कई बार तो परिस्थिति बिलकुल भिन्न हो जाती थी। चिकित्सा-योग्यता (ज्ञान) और प्रेमिल स्वभाव को जान कर लोग असमय में भी सहायता एवं उपचार के लिए उनकी कुटिया को घेरे रहते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी वे इस क्षेत्र से दूर गंगा के किनारे की चट्टानों के मध्य छिप जाने को बाध्य हो जाते और कभी दूर जंगल के भीतर ध्वंसित कुटीर में छिप जाते। इस प्रकार वे ध्यान के लिए एक या दो घण्टे निकाल ही लेते थे।

किसी पीड़ित की आवश्यक पुकार के समय आप सब कार्य छोड़ (चाहे आधी रात ही क्यों न हो) उसको पीड़ा-मुक्त करने के लिए दौड़ पड़ते थे। एक बार एक मजेदार घटना घटित हुई जिसने उनके धैर्य को भी चुनौती दे दी। एक हठी साधु अर्धरात्रि के समय चारों तरफ लगी बाड़ को लाँघ कर कुटिया के द्वार को लगातार खटखटाने लगा। उसकी आँख में बालू का कण पड़ गया था, वह उसको निकलवाने के लिए आया था। इस परीक्षा की घड़ी में भी उन्होंने समत्व को बनाये रखा। उसका पूर्ण सजगता से उपचार कर सन्तुष्ट करके ही उसे लौटाया।

बिच्छू-दंश के लिए तो अप्रत्याशित समय पर भी उपचार करना पड़ता था; क्योंकि यह जीव बहुत बड़ी संख्या में आज तक भी उस क्षेत्र में पाया जाता है। इन क्रोधोत्तेजक क्षणों में भी उन्होंने कभी किसी से रुक्ष व्यवहार नहीं किया। निष्काम सेवक की यही सच्ची भावना होती है। सदा प्रसन्न-चित्त रहना और सच्चा उत्साह बनाये रखना, खिन्नता को कोसों दूर रखना- यह एक ऐसा आदर्श है जिसे व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में, विद्यार्थी हो अथवा बालचर, समाज-सेवक हो अथवा स्वयं- सेवक-सबको सम्मुख रखना चाहिए।

एक या दो बार ये रोचक विचार उनके मुखारविन्द से निःसृत हुए- "कभी-कभी न चाहने पर भी सेवा करनी चाहिए। कभी-कभी असहाय व्यक्ति अपेक्षा होने पर भी अज्ञानवश सेवा ही नहीं लेना चाहते। ऐसे अवसरों पर उनके हिचकिचाने पर भी अपेक्षित सेवा करो।" उन्होंने हँसी-हँसी में ऐसे विरोधात्मक सेवा के दो अवसरों को बताया, जब उन्होंने आगे बढ़ कर सेवा करने के इस ढंग का प्रयोग किया था।

एक बार स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज को चिकित्सा के लिए जबरदस्ती लखनऊ ले जाया गया। वह मरहमपट्टी-कक्ष तक जाने तथा लौट कर आने में असमर्थ थे; किन्तु स्वामी जी महाराज के कन्धों पर बैठ कर नहीं जाना चाहते थे। पर स्वामी जी उनके विरोध करने पर भी प्रतिदिन उन्हें अपने कन्धे पर बैठा कर ले जाते थे।

दूसरी घटना है-सिंघाई की साध्वी एवं भक्ता रानी आदरणीया महिला के प्रतिवाद करने पर भी उन्होंने उस ओर ध्यान न दिया और उन्हें नाव से उठा कर स्टीमर पर पहुँचा दिया। उनकी मण्डली गंगा-सागर की यात्रा पर जा रही थी। पानी उथला था और नाव तरंगों में डोल उठी थी। भयातुर वृद्ध महिला, जिसकी अवस्था सत्तर वर्ष की थी, स्त्रियोचित विचारों से आतंकित होने के कारण स्वामी जी की सहायता लेने की अनिच्छुक थी। किन्तु स्वामी जी ने व्यर्थ तर्क में समय नहीं गँवाया। क्षण-भर में ही स्वामी जी ने उस विरोध करती हुई महिला को आदरपूर्वक उठाया और सुरक्षित ढंग से स्टीमर में बैठा दिया। स्वामी जी के इस कौशलपूर्ण कृत्य पर अपनी ही पुत्रियों के हँसने पर वह क्रुद्ध हो गयी। उन्होंने साथ में यह भी जोड़ा- "लेकिन सदैव शिष्टता, भद्रता और कोमलता का व्यवहार करो। दूसरों की भावनाओं को महत्ता दो। सेवा के नाम पर कभी भी रुक्ष मत बनो।"

द्वितीय अध्याय

प्रार्थना के धर्मदूत

हममें से वे लोग जो ऐसी स्थिति में हैं कि न तो वे सेवा के क्षेत्र में हैं और न जिनको निष्काम सेवा का सुअवसर ही मिलता है, उनके सामने स्वामी जी के जीवन का यह (प्रार्थना) एक ऐसा अल्प-परिचित पक्ष है जो प्रेरणा और महान्ता की सम्पदा से परिपूर्ण है। परहित हेतु गुप्त रूप से सतत प्रार्थना करना उनका अभ्यास है। जो लोग ठोस सेवा करने में अशक्त हैं, उन्हें सदैव, सर्वत्र, सभी अवसरों पर सबके हित के लिए प्रार्थना करनी ही चाहिए। सभी प्राणियों के हित एवं कल्याण के लिए प्रामाणिकता से प्रार्थना आरम्भ कर देनी चाहिए। जिनको सहायता की आवश्यकता है, उन सबको हम अपनी निष्काम प्रेम की भावनाओं से रहस्यमय ढंग से सेवा कर सकते हैं। अपने- आपमें यह एक उत्कृष्ट सेवा है।

सेवा प्रेम का अभिव्यक्त स्वरूप है। व्यक्ति में विकसित यह असीम प्रेम विश्व- हित की दृढ़ सकारात्मक चाह से द्विगुणित होने पर प्रभावी एवं उच्च कोटि की सेवा का रूप धारण कर लेता है। स्वास्थ्य एवं सहयोग का हमारा ऐसा स्पन्दन ही सूक्ष्म तथापि अधिक सशक्त रूप से सामान्य हित-साधन करेगा।

स्वामी जी अब भी इसको अभ्यास में प्रतिदिन लाते हैं। मैंने देखा है कि वे निरपवाद रूप से सबके लिए प्रार्थना करते हैं। यदि वे किसी रुग्ण व्यक्ति को देखते हैं, तो तत्क्षण उसकी स्वस्थता के लिए प्रार्थना करते हैं। किसी की मृत्यु के शोक-समाचार को सुनते ही दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए वे तुरन्त प्रार्थना करेंगे। युद्ध की समाप्ति के लिए तथा बंगाल की क्षुधा-पीड़ित जनता की राहत के लिए वे नित्य नियमित रूप से प्रार्थना करते हैं। लँगड़ाते कुत्ते को देख कर प्रार्थना उनके हृदय से प्रस्फुटित हो उठती है। उनकी उपस्थिति में किसी के पाँव से यदि चींटी कुचल जाती है, तो तत्काल ही उनका हृदय मूक भाव से प्रार्थना करने लग जाता है।

किसी से अन्य व्यक्ति की अस्वस्थता का समाचार जानने पर स्वामी जी उस अपरिचित व्यक्ति के आरोग्य एवं स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करने लग जाते हैं। जब कभी उनके अपने दो शिष्य परस्पर असहमत होने पर क्रोधावेश में कुछ अपशब्द कह बैठते, तो स्वामी जी बिना किसी को बताये उस दिन निराहार रह कर दोषी व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने लग जाते। प्रार्थना करने का सतत अभ्यास उनके जीवन का इतना आधार बन गया है कि वह स्वामी जी के अस्तित्व से अभिन्न हो गया है।

उनके इस गुण के बारे में कुछ इतनी अद्‌भुत एवं सारभूत ईसाइयत है कि सामान्य गैर ईसाई उन्हें समझने में असमर्थ रहता है। इस स्वभाव की प्रशंसा करने में किसी को कठिनाई भी हो सकती है; क्योंकि यह पौर्वात्य से सुसंगत नहीं लगती। दूसरी और निष्ठावान् ईसाई अपनी दृढ़ आस्था के साथ इससे पूर्ण सहानुभूति अनुभव कर सकता है।

स्वामी जी प्रार्थना में निष्कपटता और प्रामाणिकता के प्रति प्रबल आस्थावान् हैं। एक बार एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था- "हाँ, प्रार्थना में अमित प्रभाव है। निष्कपटता से की गयी प्रार्थना सब-कुछ करने में समर्थ है। यह तुरन्त सुनी जाती है तथा तत्काल फलवती होती है। अपने नित्य-प्रति के संघर्षयुक्त जीवन में प्रार्थना करें तथा अपने लिए महान् प्रभाव की अनुभूति कीजिए। प्रार्थना जिस ढंग से करना चाहें, करें। शिशुवत् सरल बनिए। निष्कपट बनिए। तभी आप सब-कुछ प्राप्त करेंगे।"

उन्होंने अपने इसी जीवन में इसको प्रमाणित कर दिखाया है। मुझे इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है। स्वामी जी के पास देश भर से आने वाले असंख्य पत्रों को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला हुआ था। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारत के कोने-कोने से लोग उनसे पत्र-व्यवहार करते हैं। मैंने पाया कि स्वामी जी के पास प्रतिदिन आने वाले असंख्य पत्रों में किसी व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने का निवेदन होता था। कभी किसी की रोग-मुक्ति के लिए, कभी नव-विवाहित दम्पति की सुख-समृद्धि के लिए अथवा नवजात शिशु की मंगल-कामना के लिए निवेदन होता था। कोई पेचीदे कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु प्रार्थना के लिए अनुनय करता है। स्वामी जी द्वारा की गयी प्रार्थनाओं के रहस्यात्मक प्रभाव के प्रति कृतज्ञतापूर्ण प्रमाण-पत्र अनिच्छित होने पर भी आते रहते हैं।

इसे आप आत्म-विश्वास का फल कहिए या मनोचिकित्सा सम्बन्धी नियम या कुछ भी कहिए, ठोस वास्तविकता तो यही है कि यह एक यथार्थ है। हाल ही में लगातार तीन दिन आवश्यक तीन तार आये। उन तीनों में मालाबार के फैरोकी (Feroke) निवासी गोपाल एम. नामक दीर्घकालीन रोगी की ओर से प्रार्थना के लिए विनय की गयी थी। ऐसी असंख्य घटनाएँ हैं जिनको देख कर संशय करने का साहस ही नहीं होता कि स्वामी जी का प्रार्थना-विषयक दृढ़ अभिमत उनके निजी अनुभवों और प्रयोगों पर आधारित है।

आज के जाग्रत युग में एक बौद्धिक एवं तार्किक व्यक्ति नियमित प्रार्थना करने के विलक्षण काल-व्यतिक्रम पर हँसे बिना नहीं रह सकेगा। यह उचित होगा कि व्यक्ति अपने-आपसे पूछे कि प्रार्थना के कट्टर व आस्थावान् समर्थक गान्धी जी को नवयुग का महान् विचारक कैसे माना जाता है? यदि प्रार्थना प्राचीन परिपाटी मात्र ही होती, तो गान्धी जी की विवेचनात्मक बुद्धि, जिसकी श्रेष्ठता प्रश्नातीत है, इसको निःसंकोच ठुकरा देती। जो प्रार्थना को तुच्छ एवं असंगत समझते हैं, उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया कि प्रार्थना क्या है और कैसे क्रियाशील होती है?

परजनों के लिए प्रार्थना एक प्रकार से भलाई चाहने का उत्कट भाव है। सबकी भलाई के लिए निरन्तर चिन्तन करने का यह निःस्वार्थ भाव प्रार्थनापूर्ण हृदय में विशुद्ध प्रेम की धारा प्रवाहित करता है। विशुद्ध अहैतुकी प्रेम वस्तुतः स्वयं में ईश्वर है। प्रेम दिव्यता का सार तत्त्व है। अतः आकाश-मण्डल में जिसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड का अस्तित्व है, प्रार्थना दिव्यता की धारा प्रवाहित करती है और जहाँ इसकी आवश्यकता पड़ती है, यह (तरंग) लहरी अपनी अनुग्रह-शक्ति से वहाँ

पहुँच कर क्रियाशील होती है। विश्व के एक कोने के एक अँधेरे कक्ष की मेज पर बैठा हुआ व्यक्ति जब बटन दबा कर तत्काल अपना सन्देश सहस्रों मील दूर भेजने में समर्थ होता है, तब प्रार्थना के विधायक प्रभाव को सरलता से समझा जा सकता है। मानव में अन्तर्निहित मानसिक एवं अति-मानसिक शक्तियों को मानव-क्रियाओं के निर्धारण में सशक्त कारक के रूप में तेजी के साथ मान्य किया जा रहा है।

स्वामी जी इस दृढ़ विश्वास से इतने आपूरित हैं कि कोई भी पर्यवेक्षक जो निरीक्षण में विशेष उत्सुक है, जान जायेगा कि उन्होंने प्रत्येक सम्भव कार्य और अवसर (प्रसंग) को प्रार्थना के कार्य से संयुक्त किया हुआ है। मैंने देखा है कि जो कुछ उनके अपने द्वारा या उनके मार्ग-दर्शन से अन्यों द्वारा सम्पन्न होता है, उन सबका शुभारम्भ व उपसंहार प्रार्थना द्वारा ही होता है। यदि किसी कमरे का निर्माण हो रहा होता है, तो सभी कर्मचारी नन्हें दीप के चारों ओर एकत्र हो कर पहले भगवद्-कीर्तन तथा प्रार्थना करते हैं और तब कार्य प्रारम्भ करते हैं। यदि किसी द्वारा प्रेषित संगमरमर की प्रतिमा पहुँचती है, तो तुरन्त ही प्रार्थना की जाती है।

साधुओं को दिये गये भोज के अवसर पर प्रार्थना भी उस समारोह का अभिन्न कार्यक्रम होता है। पैकेट और पत्रिकाओं को डाक में भेजने के लिए बाँधते और लपेटते समय स्वामी जी कर्मचारियों को बताते हैं कि हाथों से कार्य करते हुए भगवद्-गुणगान करो। व्यर्थ की बातचीत मत करो। आश्रम में पर्वत पर स्थित भजन-कक्ष में वे तथा उनके थोड़े से कार्यकर्ता एकत्रित हो कर सम्मिलित स्वर व लय में ईश्वर का नाम गाते हैं। पुनः सान्ध्य वेला में गम्भीर मौन में विश्व शान्ति के लिए विश्व-प्रार्थना की जाती है।

तृतीय अध्याय

अस्तित्व और कर्म

स्वामी जी की बाह्य प्रवृत्तियों को देख कर नव-दर्शनार्थी उनके प्रार्थनामय जीवन का अनुमान नहीं लगा सकता, अपितु उसके ऊपर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो काल्पनिक जगत् में विचरण नहीं करता, तो वह स्वामी जी हैं। मैंने इनसे अधिक व्यस्त और सक्रिय जीवन कोई और देखा ही नहीं। जिस तपस्वी ने पाँच वर्ष तक अपनी कुटिया में ही एकान्तवास किया और २५ वर्ष तक उस स्थान को नहीं त्यागा, उसकी गत्यात्मकता पर सहज ही विश्वास नहीं हो पाता। जब उनसे मेरा सम्पर्क नया था और उनकी आश्चर्यजनक क्रियाशीलता के साथ मैं अभ्यस्त नहीं हो पाया था, तो मैं इनकी व्यस्तता को देख कर चकित व असहाय रह जाता था। छह मास पूर्व जब कि इनका सत्तावनवाँ जन्म-दिवस मनाया गया, तब से आज तक यह भास नहीं हो पाता कि वह षोडशवर्षीय (युवक) नहीं हैं।

पाठक यह विश्वास रखें कि मैं लेशमात्र भी भावुक नहीं हूँ, पर जो यथार्थता मेरे सामने है, उसे स्वीकार करने को बाध्य हो जाता हूँ। यौवनमय उत्साह से परिपूर्ण हाव-भाव उनकी अवस्था

को नकारता है। प्रायः देखा गया है कि अनायास कोई विचार अथवा कोई नयी योजना उनको जैसे ही सूझी, तो तत्क्षण ही आभा-युक्त मुखाकृति से बाल-सुलभ उल्लास प्रस्फुटित हो उठता है, उनके अन्तर्मन की प्रफुल्लता नेत्रों में चमक उठती है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि उनकी कल्पनाशीलता में उद्‌भूत विचारों को क्रियान्वित करने में वे कितने संलग्न हो जाते हैं। वे किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते। उनमें अनिश्चितता नहीं है। झिझक तो नाम मात्र को नहीं है। वे कर्म-सम्पादन में जितने प्रवीण हैं, उतने ही प्रार्थनामय जीवन में निष्कपट, प्रगाढ़ एवं परम पावन हैं।

कल-कल ध्वनि-युक्त प्रवाहित गरिमामयी मौन गंगा के तट पर स्थित शान्त कुटीर से आप प्रातः १० बजे बाहर पधारते हैं। निज कक्ष से बाहर निकलते ही वे भिन्न व्यक्ति बन जाते हैं। वे जीवन-विद्‌युत् तरंगों से परिपूर्ण हो उठते हैं। ईंटों से निर्मित द्वार से संस्था के प्रांगण में उनके तीव्र गति से पहुँचते ही छोटे-से शिष्य-समुदाय में सक्रियता प्रकट होने लगती है। उनकी उपस्थिति में किसी का भी क्रियाहीन रहना असम्भव हो जाता है।

कतिपय प्रमादी साधकों के साथ उनका व्यवहार रोचक था। ऐसे ही एक साधक का स्वभाव दम्भपूर्ण एवं प्रमादी था। अपने इस स्वभाव को वह आन्तरिक आध्यात्मिक शान्ति के रूप में अभिहित करता था। पर्वत पर स्थित सामूहिक पूजा-गृह के बाहर चौड़े बरामदे में स्वामी जी कुछ आगन्तुकों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। ढीली-ढाली मस्त चाल से चलते उक्त साधक पर तत्काल स्वामी जी की दृष्टि पड़ी। उन्होंने कहा- "युवक! इधर आओ। आपके साथ क्या समस्या है? क्या भूखे रहते हो? क्या रसोईघर में भोज्य पदार्थ कुछ भी नहीं है या तुम्हारे पास भोजन करने के लिए समय नहीं है? तुम्हारे बाल अभी सफेद नहीं हुए; किन्तु अर्ध भूखे व्यक्ति की-सी चाल क्यों है? तुम्हारी शक्ति और यौवन कहाँ चला गया है? तुम दौड़ कर फुर्ती से क्यों नहीं चलते? मैं तुम्हें दौड़ते हुए देखना चाहता हूँ। आओ, उपासना-गृह का एक चक्कर लगाओ।"

उस नव-युवक का संकोच देख कर एकाएक मेरी ओर मुड़ कर स्वामी जी ने मुझे गम्भीर वाणी में कहा- "इस युवक को मैं सैनिक-शिविर में भेजना चाहता हूँ। सैनिक-प्रशिक्षण द्वारा मदहोश साधुओं में भी शक्ति का संचार हो सकता है। मेरा विचार है कि व्यक्ति जन्मता ही आलसी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इनके लिए वैराग्यमय जीवन शारीरिक शिथिलता और निष्क्रियता का पर्याय है। भगवान् जाने ऐसे विचार इनको कहाँ से प्राप्त होते हैं? मेडिकल कालेज के युवा छात्रों से तथा नगर-निवासियों के व्यस्त जीवन से तुम्हें कुछ सीखना चाहिए। एक युवा चिकित्सक कितना स्फूर्तिवान्, योग्य और उत्साह से परिपूर्ण होता है। अस्पताल के दैनिक जीवन में वह कितनी फुर्ती से एक प्रखण्ड से दूसरे प्रखण्ड में, एक वार्ड से दूसरे वार्ड में, बरामदों तथा सीढ़ियों से जाता है। हम उसको अपना आदर्श क्यों नहीं मानते? इसके विपरीत एक संन्यासी को तो गतिशील कार्यकर्ता होना चाहिए; क्योंकि वह (लौकिक) जीवन की विविध सन्तापपूर्ण चिन्ताओं से मुक्त होता है। कल से ही स्फूर्तिवान् बन जाओ। मैं तुम्हें इस रूप में देखने के बजाय दौड़ता हुआ देखूँ। मैं तुम्हें तत्काल सर्वत्र उपस्थित देखूँ। साधुता शिथिलता का पर्याय नहीं है। यदि ऐसा होता तो कुर्सी, मेज, स्तम्भ, भित्ति भी इस श्रेणी में आ जाते। प्रिय युवक! अपने में स्फूर्ति लाओ और निष्णात कार्यकर्ता में परिणत हो जाओ।"

संशय-युक्त युवक के मुख से हड़बड़ी व उद्विग्नतापूर्वक ये शब्द निकले- "श्रीमान्! मैं ऐसा ही बनूँगा।" ये शब्द कहता हुआ वह वहाँ से शीघ्रता से चला गया। दूसरे ही क्षण स्वामी जी ने

अभ्यागतों को सरल चित्त से सम्बोधित करते हुए कहा- "आपका इस सम्बन्ध में क्या विचार है? क्या मैंने उचित नहीं कहा? अथवा क्या यह उबा देने वाला उपदेश मात्र था? क्या आपका यह विचार नहीं है कि प्रत्येक युवा को सक्रिय और स्फूर्तिवान् होना चाहिए?"

विश्वास कीजिए कि दूसरे ही दिन से न केवल वह साधक बल्कि ऐसे ही एक-दो और ढीले-ढाले साधक चुस्ती एवं शक्तिमय स्फूर्ति से कार्य करते देखे गये।

इस सन्दर्भ में एक विलक्षण प्रमेय के वर्णन किये बिना नहीं रह सकता जिसने विशिष्ट रूप से मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। स्वामी जी जब किसी व्यक्ति को कर्म का मार्ग-दर्शन करते हैं, तो वह न चाहते हुए भी देर-सवेर उसका अनुसरण करने ही लग जाता है। वह चाहे कितना ही प्रमादी क्यों न हो, चाहे उसको निर्देशों का विस्मरण ही हो जाये अथवा भले ही उस समय उनके मार्ग-दर्शन को वह इतनी महत्ता न दे या व्यस्तता के कारण उस पर ध्यान देने में असमर्थ रहे; किन्तु अन्ततः वह स्वामी जी की शिक्षाओं का अनुपालन करने लग ही जाता है। इसके पीछे का रहस्य क्या है?

पाठक निस्सन्देह रूप से जानते हैं कि ऐसे सहस्रों क्क्रुद्ध पितृ गण, निराश माताएँ, असहाय शिक्षक वर्ग, आचार्य गण, भयकारी अधिकारी गण तथा कटु शिकायतें करने वाले नेता गण हैं जो सदा आदेशों का अनुपालन करवाने में जनता को आकृष्ट करने में असफल रहे हैं। वे नहीं जान पाते कि किस प्रकार जनता का ध्यान अपने आदर्शों की ओर आकर्षित किया जाये? किन्तु ऐसे कार्यकर्ताओं से, जिनका लौकिक जीवन से परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है और जिनका उद्देश्य सब बन्धनों से विमुक्त होना है, एक ऐसा विलक्षण व्यक्ति है जो संक्षिप्त उपदेश व परामर्श देता है; परन्तु अनुपालन की विधियों व पद्धतियों की चिन्ता नहीं करता। फिर भी थोड़े ही समयोपरान्त बड़े उपयुक्त प्रयास से तदनुसार आचरण होता देखते हैं। इसका रहस्य कहाँ है? इसकी व्यावहारिक उपयोगिता से हम क्या ग्रहण कर सकते हैं?

मैं इस परिणाम पर पहुँचने में बाध्य हो जाता हूँ कि व्यक्ति की कथनी और करनी के अन्तर में यह गूढ़ रहस्य छिपा है। लोग केवल किसी व्यक्ति के शब्द सुन कर ही कार्य के लिए प्रेरित नहीं होते; परन्तु जिसका आचरण कथनानुसार है, उसका अनजाने ही अनुसरण करने लग जाते हैं। वाणी के अनुसार आचरण करने वाले व्यक्ति के सामने अत्यधिक अड़ियल तथा अहंकारी व्यक्ति भी नतमस्तक हो जायेगा। उदाहरण-रूप में स्वयं को आदर्श-रूप में प्रस्तुत करना ही उसके अनुसार करवाने की पद्धति है। जो केवल उपदेश मात्र करते हैं और वे जो स्वभावानुसार सतत निस्स्वार्थ रूप से सब प्राणियों की समदृष्टि से सेवा करते हैं-दोनों में महान् अन्तराल है। इस दिशा में परामर्श और अनुपालन करने की गम्भीर समस्या की समीक्षा करने से निस्सन्देह सन्तप्त अभिभावक, उपदेशक, शिक्षक और नेता गणों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी।

आधुनिक युग के चमत्कारी पुरुष गान्धी जी के जीवन के राजनैतिक एवं सामाजिक नैतिकता की उपलब्धियों की पृष्ठभूमि में यही नियम क्रियाशील है। लाखों के हृदयों में उनके नाम का प्रभाव है और उन्हें एक शक्ति के रूप में जाना गया है। यह उल्लेखनीय उपलब्धि आस्थाओं के प्रति जीवन की समरसता एवं परम निष्कपटता के कारण ही उन्हें हो पायी है। क्षुद्र कार्य को भी पूजा का रूप देना उनके जीवन का प्रभावकारी अंग है।

कहा जाता है कि जब उनके सुपुत्र देवदास गान्धी का विवाह सुविख्यात श्री राजगोपालाचार्य की सुपुत्री से हुआ, तो विवाह-संस्कार के तुरन्त बाद टोकरी और झाड़ू ले कर उस क्षेत्र के कुछ स्थानों की सफाई के लिए कहा। वर के पिता की विवाह- संस्कार के उपलक्ष्य में नव-दम्पति को यही शुभ भेंट थी। सेवाग्राम के महान् सन्त स्वयं उन आदर्शों की जीवन्त मूर्ति हैं जिनका प्रचार वे स्वयं भी करते हैं।

ठीक यही विशेषता आनन्द-कुटीर के गतिशील सन्त की विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों में प्रकट होती है। मुझे यह प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि स्वामी जी के लिए नैतिक तथा आध्यात्मिक सत्य केवल धर्म-ग्रन्थों की शोभा बढ़ाने वाले वाक्य मात्र नहीं हैं, अपितु अपने जीवन की कथनी और करनी में साम्य प्रमाणित करने के तथ्य होते हैं। व्यक्ति को उन उपदेशों और शिक्षाओं का जिन्हें वह सुनाना और अनुसरण कराना चाहता है, मूर्तिमान् अभिव्यक्ति बनना चाहिए। तभी जगत् उसका उसी प्रकार अनुसरण करेगा जैसा कि दिवस रात्रि का करता है। नहीं तो कथावाचक ब्राह्मण की तरह आज्ञा-पालन करवाने की आशा रखना व्यर्थ होगा।

ऐसा कहा जाता है कि कर्नाटक के एक व्यावसायिक कथावाचक ब्राह्मण को एक समय दैनिक श्रोताओं में से एक प्रशंसक ने एक सब्जी की टोकरी भेंट की। उपहार में दी गयी शाक-सब्जियों के अतिरिक्त उसमें कुछ एक ताजा रस-भरे बैंगन भी थे। पण्डित ने घर पहुँच कर अपनी फूहड़ पत्नी को टोकरी देते हुए कहा कि इनसे स्वादिष्ट कढ़ी तैयार करो। बात यह थी कि उससे एक दिन पूर्व पण्डित जी ने कथा में कई वस्तुओं का गुण-कथन करते हुए बैंगनों को प्रतिदिन के आहार में त्याज्य बतलाया था, क्योंकि वह मानव में तामसिकता को उद्दीप्त करते हैं। उनकी पत्नी ने, जो उस व्याख्यान में उपस्थित थी, यह सब सुना था उसने साहस के साथ पण्डित जी को शास्त्रोक्त उक्ति का स्मरण दिलाया। तत्क्षण वह क्रुद्ध हो गया और चिल्लाया-"ओ नारी! क्या तुम मुझे धर्म का पाठ पढ़ाना चाहती हो? सुनो! ग्रन्थों में वर्णित बैंगनों का प्रयोग वर्जित कहा गया है, टोकरी वाले बैंगनों का नहीं। शीघ्रता से टोकरी वाले बैंगनों को पकाओ!"

श्री रामकृष्ण परमहंस भी अपनी चर्चा में इस प्रकार के लोगों के विषय में अनोखे ढंग से बताया करते थे कि केवल शास्त्रीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं । त्याग और विवेक से सम्पन्न विद्वान् के सम्मुख होने में मैं भी निरुत्साहित हो जाता हूँ। किन्तु यदि कोई शास्त्रीय पण्डित मात्र है, तो मेरी दृष्टि में वह कुत्ते और बकरी से बढ़ कर नहीं है।

स्वामी जी पूर्ण योग्यता के साथ अपने लेखों में वर्णित विचारों और वचनों को निरन्तर तथा यथाशक्ति अपने कार्यों में चरितार्थ करते हैं। यही कारण है कि उनके वचनों का उल्लंघन अन्य व्यक्तियों के लिए असम्भव-सा हो जाता है। स्वामी जी से प्राप्त होने वाला व्यक्तिगत परामर्श जीवन्त, अधिकारपूर्ण किन्तु मूक होता है। उनमें पास्ट्यूअर संस्थान या 'मे ऐण्ड बेकर्स' द्वारा प्रदत्त सूत्र के समान अप्रतिरोधी सान्त्वना एक विश्वसनीयता होती है।

चतुर्थ अध्याय

तीव्र कर्मठता का रहस्य

स्वामी जी जब हर एक से सक्रिय सेवा और परोपकारिता का आग्रह करते हैं, तो वे स्वयं भी ठीक इसी तथ्य को चरितार्थ कर रहे होते हैं। उनके जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। वे शिथिलता का नाम ही नहीं जानते, जैसे कि नेपोलियन 'असम्भव' शब्द का अर्थ ही नहीं जानता था। कई बार वे यह कहते थे- "एक दिन के लिए चौबीस घण्टे अपर्याप्त हैं। प्रत्येक क्षण अमूल्य है। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। शरीर तथा मन की व्यस्तता आधि-व्याधियों की संजीवनी बूटी है। अनियमित जीवन और आलस्य ही प्रत्येक बुराई की जड़ है।" इसलिए स्वामी जी बेंजामिन फ्रेंकलिन और सैमुयल स्माइल्स आदि के समान एक निश्चित दिनचर्यानुसार प्रत्येक निश्चित कार्य को निश्चित समय पर ही करते हैं। भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यस्त संसार के लोगों को वे इसी का अभ्यास करने की संस्तुति करते हैं।

निश्चित दिनचर्या का यह सिद्धान्त जहाँ एक ओर अधिकतम व सतत क्रियाशीलता का अवसर देता है और स्थिरता लाता है, वहीं दूसरी ओर निरुद्देश्यता तथा विकर्षण से बचाता है। यद्यपि स्वामी जी स्वभाव से ही परम्परा और औपचारिकता के विरुद्ध हैं, तथापि उनमें दुर्बलता अथवा अनिश्चितता लेशमात्र भी नहीं है। निरन्तर स्फूर्तिदायक प्रवृत्ति को वे स्थिरता और निर्द्वन्द्व शान्ति से सँजोये रखते हैं। वे प्रसन्नतापूर्ण रूप में गैर परम्परा वाले हैं, तथापि सहज व गरिमामय हैं। यह तभी सम्भव हो पाया है, जब कि उनके समय और कार्यों में कहीं शिथिलता नहीं है। ए

वही पुरुष असफल होता है जिसके जीवन में अनिश्चितता होती है। उनके व्यवहार में जो शान्ति व प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है, वह उनके पूर्व-नियोजित निश्चित और पूर्णरूपेण व्यवस्थित दिनचर्या का ही परिणाम है। ऐसी व्यवस्थित दिनचर्या समस्त प्रमाद व उत्तेजना को प्रभावकारी ढंग से दूर रखती है तथा जीवन को शान्ति और गरिमा प्रदान करती है, जिसकी प्राप्ति कार्यक्रम व सिद्धान्त से शून्य अनियमित व अराजक जीवन में स्वप्नवत् है।

निस्सन्देह समय अल्प है और इसमें एक व्यस्त नागरिक समयाभाव के कारण पारमार्थिक कार्यों को नहीं कर पाता। यदि वह अपने कार्य-व्यवहार को सुव्यवस्थित ढंग से करे, तो उसे शीघ्र पता चल जायेगा कि अधिकांश समय व्यर्थ में अनजाने में गँवा दिया गया। समय के सदुपयोग में ही जीवन की सफलता सन्निहित है। समय का सदुपयोग वस्तुतः महत्त्व का है और इस विश्व में स्वदुःख निवारणार्थ तथा परहितार्थ जितने भी प्रयत्न किये जायें, उतने ही थोड़े हैं। नित्य जो समय आप शिक्षा, नौकरी अथवा व्यापार आदि कार्यों के लिए आने-जाने के समय रेल, ट्राम और बस में खिड़की से झाँकने अथवा ऊँघने में व्यतीत करते आये हैं, वही समय अपने आत्म-परिष्कार एवं आत्म-विकास में लगा सकते हैं।

इसी प्रकार मध्यान्तर भोजन का समय व्यर्थ वार्तालाप में नहीं खोना चाहिए। इतना ही नहीं, ताँगा, बस आदि की प्रतीक्षा के समय भी मनुष्य सदैव अर्थहीन विचारों अथवा चिन्ताओं में पड़ जाता है। इस द्विमुखी बुराई को रोकना चाहिए और असफलता, दुर्बलता, दुःख और व्यसन के युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए सेवा द्वारा समय का सदुपयोग करना चाहिए। इस फुटकर समय का, जो कि अनजाने ही व्यर्थ चला जाता है, सावधानी से नियमन करके सदुपयोग करना होगा।

जैसे सम्पूर्ण संघर्ष में सेना को भरती करके उनके आक्रमण-रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह किया जाता है और रगड़ कर चमकाया जाता है, इसी प्रकार सफलता के इच्छुक मनुष्य को अपने साधनों का संचय करके जीवन के प्रत्येक क्षण का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। प्रत्येक दिवस अनमोल सीपी के समान है जो जीवन-सरिता की काल-धारा में प्रवाहित होता है। परिश्रमी व्यक्ति, जिसको समय के मूल्य का ज्ञान है और इसका पूरी तरह सावधानी से उपयोग करता है, शीघ्रतापूर्वक सीप के जल-प्रवाह में बह जाने से पहले ही उसे खोल कर अनमोल मोती की प्राप्ति कर उसका पूर्णरूपेण समुचित प्रयोग करता है। इसके विपरीत समय को व्यर्थ खोने वाला व्यक्ति इस अनमोल मोती को सदा के लिए खो बैठता है।

प्रतिदिन और प्रतिवर्ष व्यर्थ खोये गये दिन लौह छल्लों के रूप में एक श्रृंखला बनाते हैं जो एक असावधान व्यक्ति के जीवन को बन्धन बना देती है; किन्तु इसके विपरीत एक परमार्थी का जीवन अनमोल मोतियों की माला के रूप में अपने जीवन- प्रदाता के चरणों में समर्पित हो जाता है।

जो व्यक्ति स्वामी जी के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हैं, उनमें से कुछेक ने उनके उदाहरण से प्रेरणा ले कर प्रतिक्षण के सदुपयोग के पथ को अपनाया है। इसमें संशय नहीं कि इससे उनके जीवन का हित हुआ है। इसका उल्लेखनीय उदाहरण दिल्ली के वकील श्री द्वारिकानाथ झिंगन हैं, जिन्होंने अपने उद्धार के लिए अपने जीवन के प्रत्येक क्षण के सदुपयोग का सफलतापूर्वक अभ्यास किया है। एक लोकप्रिय मानसशास्त्री डेल कार्नेगी भी इस अभ्यास के महत्त्व पर बल देते हैं।

सफलता के साधक को परिश्रमपूर्वक अभ्यास से अवश्यमेव चमत्कारिक लाभ होगा। मनुष्य समय की मितव्ययता का इतना ध्यान रखे कि उस सजग व्यक्ति की तरह वह यह कह सके कि हाय! मैंने साठ क्षण-रूपी हीरों से जड़ित एक स्वर्णिम घण्टा खो दिया है।

समय के लाभदायक सदुपयोग व संरक्षण पर इतना बल देने का विलक्षण फल 'आध्यात्मिक दैनन्दिनी' के रूप में सामने आया है। यह आलस्य, उद्देश्यहीनता तथा दीर्घसूत्रता जैसे चोरों को दूर रख कर समय पर प्रभावशाली अंकुश रखती है। स्वामी जी ने आध्यात्मिक दैनन्दिनी के असंख्य लाभों की चर्चा करते हुए कहा है- "दैनन्दिनी से बढ़ कर कोई सच्चा मित्र, विश्वसनीय शिक्षक या गुरु नहीं है। यह तुम्हें समय के मूल्य का ज्ञान कराती है। इसी से तुम्हें ज्ञान होगा कि तुम पारमार्थिक कार्यों में कितना समय लगा रहे हो। यदि आप अपनी दैनन्दिनी को भली प्रकार दोष रहित भरेंगे, तो आप एक क्षण को भी अनावश्यक कार्यों में नहीं गवायेंगे। तभी आप समय के महत्त्व को जान सकेंगे और इसे हाथ से निकलने नहीं देंगे।"

धनुष से छूटे हुए तीर और मुख से निकले हुए शब्द की तरह बीता हुआ समय वापस नहीं आ सकता। स्वामी जी के मस्तिष्क में यह बात सदा के लिए स्पष्ट रही, जैसा कि वे अपनी अमूल्य कृति 'जीवन में सफलता के रहस्य' (Sure Ways for Success in Life) में लिखते हैं- "वस्तुतः समय अनमोल वस्तु है। बीता समय हाथ नहीं आता। काल की गति बहुत तीव्र है। प्रत्येक घड़ी हम मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। सदैव स्मरण रहे कि जब घड़ियाल बजता है, तब जीवन-काल का एक घण्टा कम हो जाता है। पाश्चात्य जन ठीक ही सोचते हैं कि काल उस तीव्र गति से दौड़ते हुए बूढ़े मनुष्य के समान है जिसके सिर के अग्रभाग में बालों का एक ही गुच्छ बचा है।"

काल और ज्वारभाटा-ये दो ऐसी प्रबल शक्तियाँ हैं जिन्हें न तो रोका जा सकता है और न ही मनुष्य की सुविधानुसार वापस लाया जा सकता है। इसी कारण स्वामी जी ने 'तुरन्त (अभी) करो' ('D.I.N') का सिद्धान्त अपनाया है। जिस कार्य को अगले मास करना है, उसे आज ही कर लेना चाहिए। जिसे कल के लिए रखा है, उसे अभी कर लेना चाहिए। हाथ में लिये हुए हर कार्य को तुरन्त ही कर लेना चाहिए। मृत्यु अपने आगमन के समय आपको तैयार रहने का सन्देश नहीं देगी। जीवन क्षणिक है और समय प्रवहमान है। 'उठो, जागो और आत्म-साक्षात्कार करो।' स्वामी जी के ये संक्षिप्त आदर्श वाक्य हैं जिन्हें वे पथ-प्रदर्शन के लिए आये हुए जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत किये बिना नहीं रहते।

किसी एक अवसर पर जब किसी ने अपने जीवन का नव-निर्माण निकट भविष्य की किसी तिथि से आरम्भ करने के लिए कहा, तो स्वामी जी आवेश में कह उठे- "ऐसा मत कहिए। 'कल' की गणना मूर्ख लोग करते हैं। 'कल' कभी नहीं आता। दिवस, मास, वर्ष यों ही व्यतीत होते जायेंगे और स्वयं जीवन भी अज्ञानतावश व्यर्थ चला जायेगा। इसी क्षण से प्रयत्न करना आरम्भ कर दो।"

यह बड़े महत्त्व की बात है कि स्वामी जी संन्यासी तथा कई एक की दृष्टि में अद्वैत वेदान्त के साहसिक व्याख्याकार होते हुए भी दैनन्दिनी, दिनचर्या, स्व-निर्माण और जीवन की सफलता पर इतना बल देते हैं, जब कि मायावादी की दृष्टि में यह शरीर, यह लौकिक व्यवहार, यहाँ तक कि सारा विश्व ही मिथ्या है। इसके पीछे एक विशेष कारण है। वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन की

महिमामयी गरिमा, भव्य परमोच्चता तथा उच्चतम परिणति ही अन्तिम अद्वैत सिद्धि है। वेदान्तिक अनुभूति की यह अन्तिम सीमा है। अतः यह विषय साधारण मनुष्य की वाक्चातुरी तथा कल्पना मात्र नहीं है। अनुशासनबद्ध एवं नियमित जीवन द्वारा ही व्यक्ति की बुद्धि अगम्य सत्य को प्राप्त एवं आत्मसात् कर सकती है।

माया–जाल का विच्छेदन कोई बच्चों का खेल नहीं है। अहन्ता के संकीर्ण अस्तित्व–चक्र से मुक्त होने के लिए जीवन के प्रत्येक क्षण को, प्रत्येक चित्त–वृत्ति को, अपने व्यक्तित्व की प्रत्येक शक्ति को दृढ़तापूर्वक उस ओर उन्मुख करना होगा। एक उत्कट जिज्ञासु के लिए अनेकों कठिनाइयाँ और बाधाएँ मुँह बाये खड़ी होती हैं। अनुशासन का हर पहलू अत्यधिक व्यावहारिक होना चाहिए। सैद्धान्तिक ज्ञान प्रेरणा दे सकता है अथवा पथ–प्रदर्शन कर सकता है, पर नित्य का अभ्यास ही शनैः–शनैः सिद्धान्त को यथार्थ का रूप देता है। वे ऐसा कई बार कहते हैं कि योग की सीढ़ी को एक–एक करके चढ़ना होगा और इस साधना में सतत जागरूकता, शक्ति का संरक्षण तथा समय का सदुपयोग परम महत्त्व के हैं।

पंचम अध्याय

जीवनोपदेश

प्रस्तुत विषय अन्य विषयों की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन तथा व्यावहारिक आध्यात्मिक साधना से अधिक सम्बन्धित है, जिसका निष्पक्ष अध्ययन करने पर अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं–साधना–काल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में कठोर अनुशासन, तपश्चर्या, अन्तर्द्वन्द्व, निस्पृह अभीप्सा का अनवरत अथक प्रयत्न, दृढ़ संकल्प की प्रगतिशील विजय, निश्चित दिनचर्या एवं मायावी रूप मन पर उत्तरोत्तर विजय से उनका व्यक्तित्व पूर्णतः निखर उठा, जिसका उद्घाटन इस संन्यासी व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष हो रहा है।

वैराग्य और आध्यात्मिक उपलब्धियों से कई शिक्षाप्रद तथ्यों का प्रकटन होता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उस बुनियाद बनाने का काम कर रहे थे जिस पर परवर्ती प्रेरणादायी आध्यात्मिक जीवन का मकान निर्मित होना था।

अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से स्वामी जी स्वभावतः हर कार्य के लिए, जिसको वे हाथ में लेते थे, अपनी सारी (ईश्वर-प्रदत्त) शक्ति व समस्त ध्यान लगा दिया करते थे। उस विशेष कार्य से सम्बन्ध न रखने वाली हर बात को वे दूर रखते व उसकी उपेक्षा करते। उदाहरणार्थ-एक नवयुवक के रूप में, जब वे किशोर ही थे, शरीर को सुडौल बनाने की धुन उन्हें सवार हो गयी। तत्क्षण उनके मस्तिष्क ने सोत्साह इस विचार को पकड़ लिया और उसमें लीन हो गया। तत्काल उन्होंने व्यायाम का विशेष अभ्यास आरम्भ कर दिया। पुराणपन्थी माता-पिता इसके बहुत अनुकूल नहीं थे, तो भी वह किशोर प्रभात वेला में ही तीन अथवा साढ़े तीन बजे शय्या त्याग देता और परिवार के दूसरे सदस्यों के (निद्रा त्यागने) से पहले ही घर से चला जाता।

स्मृति आने पर चमक भरी आँखों से उन्होंने एक बार कहा- "मैं इस बात को अब भी स्वीकार करता हूँ कि कई बार मैं अपनी शय्या पर तकिये को इस तरह बिछा देता कि जैसे निर्दोष गहन निद्रा में मैं ही सो रहा हूँ।" ये सब उन्हें अपने निरीक्षक पिता को सन्तुष्ट करने के लिए करना पड़ता। उनको यह ज्ञात न हो पाता कि उनका बेटा व्यायामशाला में है और शरीर को हृष्ट-पुष्ट करने वाली क्रीड़ा में तल्लीन है।

वे अदम्य साहस से सम्पन्न थे। सम्मानित अतिथियों की अभ्यर्थना करने, स्वागत-भाषण देने या अभिनय के लिए वे अपने मित्र गणों तथा विशिष्ट जनों के आकर्षण का केन्द्र बने रहते। विनम्र होते हुए भी अवसर आने पर वे निर्भय हो विशिष्ट जनों के समक्ष आ जाते। उनकी यह निर्भयता अब भी उनमें प्रमुख है और स्वर्गाश्रम में साधना के दिनों में इससे उन्हें बहुत सहायता मिली है। यह विशेषता अब भी उनके स्वभाव में विद्यमान है। अंशतः उनके स्पष्टवादी व निर्भीक सुधारक होने का रहस्य भी इसी में है। जनता की आलोचना उन्हें कभी विचलित नहीं करती। लोक-कल्याण से सम्बन्धित किसी योजना के लिए कटिबद्ध हो जाने पर वे किसी की राय पर ध्यान नहीं देते।

पाठक गण को भी इसका अनुभव हुआ होगा कि कोई भी मनुष्य जो अटल सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करता है, उसे अपने साहस की परीक्षा देने के लिए कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। ऐसे अवसर आने पर स्वामी जी सदैव अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहते हैं। दायें हाथ से ऐनक ठीक करते हुए उठे हुए बायें हाथ की अनामिका उँगली से संकेत कर एक विशिष्ट विलक्षण मुद्रा में स्वामी जी ने एक बार कहा था-"नहीं-नहीं, मेरा यह रूप सदा नहीं रहता। मैं अत्यधिक आक्रामक भी हो जाता हूँ। यदि कोई ऐसा अवसर आता है, तो मैं पराजय स्वीकार नहीं करता। कभी- कभी तो मैं योद्धा के आवेश में आ कर उग्र रूप धारण कर लेता हूँ। इस दिशा में मैं गुरु गोविन्दसिंह सरीखा हूँ। समय आने पर सबको उत्साह दिखाना चाहिए।"

जो व्यक्ति उच्च आदर्शों व सिद्धान्तों का अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील है तथा जिसको इस साधना में पग-पग पर परीक्षा देनी पड़ती है, उसके लिए यह ठोस उदाहरण है। विशेषतया यदि आप विनम्र और शान्त प्रकति के हैं और विरोधी परिस्थितियों में भीरु समझे जाते हैं, तो उस समय आप स्वामी जी के उपर्युक्त दृष्टिकोण का सहारा ले सकते हैं।

जो तन्मयता और उत्साह आज स्वामी जी के स्वभाव में दृष्टिगोचर होता है, यह स्वभाव उनका चिकित्सक-विद्यार्थी-काल में भी था। उनकी उपस्थिति में जब यह विरल टिप्पणी सुनने में आयी, तो स्वामी जी ने एक बार कहा - ''मुझे यह नहीं मालूम कि काम को अधूरा कैसे छोड़ा

जाता है? मैं सदैव काम को पूर्ण व सम्यक् ढंग से किया करता था तथा पूरा करके ही छोड़ा करता था। आज के तरुण-वर्ग में निर्दिष्ट समय पर ही तैयारी करने का जो स्वभाव है, उससे मैं सदा अपरिचित रहा। बिना पूर्व-सूचना के किसी भी विषय की परीक्षा देने को मैं सदैव तैयार रहता। आज भी मैं अपने को परीक्षार्थी के रूप में तैयार रखता हूँ। सतत तत्पर रहने तथा सजग रहने का मेरा सहज गुण बन गया है।

"विश्राम का मेरी दृष्टि में कोई अस्तित्व नहीं। मैं सदैव सजग तथा व्यस्त रहता हूँ। आपको जीवन के प्रति शाश्वत शिष्य की तरह यही दृष्टिकोण रखना चाहिए और अपने को सदैव परीक्षार्थी समझना चाहिए। प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक समय, प्रत्येक दिन नये विषय को सीखने के लिए उत्सुक रहिए। मेरी तरह बौद्धिक सेवक बनिए। आप हर एक से कुछ-न-कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। एक जिज्ञासु के लिए सृष्टि के कण-कण से उपदेशामृत झरता है।

"किसी भी अनुभव की उपेक्षा मत करिए। संसार के हर महान् उदाहरण से कुछ प्रेरणा व शिक्षा ग्रहण करिए। इस प्रकार शायद किसी समय आपके प्रति की गयी अचेतन में सुप्त आलोचना आपके जीवन में उभर कर आपको आपत्ति से बचा ले और आपके जीवन की धारा को ही परिवर्तित कर दे। हर वस्तु से सार-संग्रह करके उसे अपने मस्तिष्क में सँजो के रखिए। छोटी-छोटी बातों के प्रति उदासीनता वैराग्य का लक्षण नहीं, बल्कि उपेक्षा की तामसिक प्रवृत्ति का लक्षण है।"

उपर्युक्त प्रकार की अपनी ग्राह्य शक्ति को स्वामी जी ने बड़ी सावधानी तथा विवेक से बनाये रखा है। अपनी उपस्थिति में प्रस्तुत हर नये सुझाव, नये विचार, नयी सूचना को तत्क्षण वे अपने पास रखी नोटबुक में लिख लेते हैं। नोट करने के लिए वे सदैव अपने पास दैनन्दिनी रखते हैं। लौकिक तथा आध्यात्मिक-दोनों दृष्टिकोणों से इस अभ्यास के व्यापक हित के प्रति वे आश्वस्त हैं।

तरुण डाक्टर के रूप में भी वे अपने अवकाश के क्षणों को व्यर्थ गँवाने की अपेक्षा अध्ययन, निरीक्षण में ही पूरी तरह व्यतीत करते। अपना सारा चिन्तन वे और विषयों से हटा कर इसी रोचक विषय पर केन्द्रित कर लेते। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि प्रथम वर्ष में ही वे चिकित्सा के पूरे पाठ्यक्रम से परिचित हो गये थे। उनकी अटूट एकाग्रता एवं सहजता का रहस्य उनके आज के दैनिक जीवन में भी देखा जा सकता है।

मैंने कई बार दिव्य जीवन संघ के कार्यालय में बिछी हुई पीठिका पर उनके विराजमान होते समय इसका निरीक्षण किया। उस समय कभी किसी उत्तेजित जिज्ञासु की पिपासा शान्त करने के लिए वे पत्रोत्तर लिखते, तो कभी शंका-समाधान अथवा प्रश्नोत्तरी करते। निकट से टाइपराइटर की टक टक आवाज और पास के कमरे से ठक-ठक की आवाज आ रही है जहाँ कोई सेवक नयी पुस्तकों पर कार्यालय की मुहर लगा रहा है। बाहर से हथौड़ी से पुस्तकों की पेटिका पर कील ठोकने का शोर आ रहा है। कक्ष से कुछ दूर सड़क पर चलने वाली मोटर गाड़ियों की कर्ण-कटु ध्वनि और गंगा की धारा में तैरती नाव में यात्रियों के पावन गान का उनकी भाव-मुद्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यही नहीं, स्वामी जी के पार्श्व में अभ्यागतों का समूह बैठा है। कोई हिन्दी पुस्तक के लिए याचना कर रहा है, तो कोई मेज पर फल-फूल भेंट कर रहा है। कोई शिशु चंचल व बातूनी है और कोई पहाड़ी रोग-ग्रस्त पुत्री के लिए औषधि की माँग कर रहा है। इन सबके मध्य पीठिका पर शान्त मुद्रा में विराजमान स्वामी जी आस-पास के इस वातावरण से अविचलित हैं और उनकी लेखनी अपनी सहज गति से चल रही है। वह अपने इस कार्य में इतने अधिक संलग्न हैं कि जब तक पत्र पूरा नहीं होता, वह अपने चश्मे को आँखों से हटा कर 'केस' में वापस नहीं रख देते और लेखनी को 'कैप' लगा कर मेज पर नहीं रख देते, तब तक वह आस-पास के वातावरण से अनभिज्ञ ही रहते हैं।

जब उनकी दृष्टि समक्ष बैठे अभ्यागतों पर पड़ती है और उनको शोरगुल का भास होता है, तब वे कह उठते हैं- "कृपया यह ठक-ठक बन्द करो और एस. को कहो कि वह पुस्तकों पर मुद्रा-अंकन कुछ समय उपरान्त करे।"

इस प्रकार का अभ्यास प्रत्येक जिज्ञासु व सामान्य जन के लिए अनिवार्य है। एकाग्रता का सम्बन्ध समय और स्थिति-विशेष में किये जाने वाले कर्मकाण्ड से न हो कर साधक की अभ्यस्त मानसिक स्थिति से है। स्वामी जी के अनुसार धारणा और ध्यान का अभ्यास कोई चमत्कारिक जादूगरी का विषय नहीं। यह तो छोटे-से-छोटे काम को रुचि व ध्यानपूर्वक करने वाले व्यक्ति को सहज ही प्राप्त हो जाता है।

छोटे-से-छोटे कार्य को व्यवस्थित ढंग से न करने वाले का मस्तिष्क कमजोर हो जाता है, जिस कारण वह ध्यान की क्षमता भी खो बैठता है। स्वामी जी कहते हैं- "चाहे आप पेन्सिल बनायें या टिकट चिपकायें, उसको भी उतनी ही तन्मयता व सावधानी से करिए जितनी तन्मयता से एक जौहरी राजसी अँगूठी में हीरा जड़ता है या एक नेत्र-चिकित्सक नेत्र की शल्य चिकित्सा का कार्य करता है। जो भी कार्य आप करें-चाहे भोजन करने का हो या दन्त-धावन का, पढ़ने का हो या लिखने का, चाहे जूते साफ करने का ही हो, उसे पूर्ण तन्मयता से ध्यानपूर्वक करें। इस अभ्यास से एकाग्रता प्रभावी ढंग से विकसित होगी।"

गाजीपुर के पवहारी बाबा भी अपने साधकों को यही शिक्षा देते कि छोटे- से-छोटे कार्य को भी इतनी सावधानी से करो कि समस्त जीवन उसी पर आधारित है। प्रस्तुत कार्य के अतिरिक्त और सब-कुछ भूल जाओ।

विद्यार्थी-काल के पश्चात् मलेशिया तथा सिंगापुर के राज संघ के चिकित्सक के रूप में स्वामी जी ने चिकित्सा तथा मानव-समाज-सेवा के कार्यों में वही तल्लीनता दिखायी। मलाया में व्यतीत किये दश वर्षों में वह निष्कलंक रहे।

निस्सन्देह आध्यात्मिक साधना में तत्पर एक साधक के लिए एकाग्रता तथा उसकी प्राप्ति की मनोवृत्ति अनिवार्यतया धार्मिक भावना से सम्बन्ध रखती है। उसको अपनी हर क्रिया आध्यात्मिक आदर्श से सम्बन्धित करनी होती है।

पाश्चात्य देशों में भी एकाग्रता की प्रतिभा विकसित होती दिखायी देती है; परन्तु वहाँ वह विशुद्ध रूप से भौतिकवादी मार्ग से है। पाश्चात्य सभ्यता के मानस- शास्त्री व्यक्तित्व-विकास व वृद्धि हेतु सभी शक्तियों के केन्द्रीयकरण के प्रति सदैव सचेत रहे हैं।

सांस्कृतिक उत्थान के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि व्यक्तिगत जीवन में ऐसा प्रशिक्षण शैशव-काल से आरम्भ कर देना चाहिए। बचपन में ही इस वृत्ति को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पश्चिमी देशों में सुपरिचित है। बच्चों को भवन-खण्डों, चित्रों, पहेलियों और बाद में प्रतिभाशाली व वैज्ञानिक विधि वाले 'मेकार्नो' की तरह के खेलों में व्यस्त रखा जाता है जो तन्मयता व तल्लीनता को प्रविष्ट कराने में सहायक होते हैं।

मैं यह देख कर आश्चर्यचकित रह गया कि यह तपस्वी भारतीय सभ्यता व संस्कृति के पुनरुत्थान जैसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋषिकेश जैसे एकान्त स्थल में बैठ कर दीर्घ काल से एकाग्रता, तन्मयता तथा तल्लीनता जैसे सिद्धान्तों का प्रयोग कर रहे हैं। अपने निकट के क्षेत्र में किये गये प्रयोग से उनको अभूतपूर्व सफलता मिली है। आश्रम द्वारा संचालित प्राथमिक पाठशाला इसी प्रयोग का एक उदाहरण है। नन्हे-मुन्ने जो अभी तुतलाते हैं, कीर्तन करने व राम-सीता ड्रिल व कीर्तन-प्रमाण में कुशल होते जा रहे हैं।

साधना-सप्ताह तथा अन्य ऐसे ही अनेक सुअवसरों पर आये अभ्यागत विस्मित रह जाते हैं, जब वे देखते हैं कि इतनी बड़ी सभा में एक छोटा-सा बालक, जिसको उठा कर मंच पर खड़ा किया जाता है, प्रणाम करता है, हिन्दी तथा अँगरेजी में संक्षिप्त भाषण देने के पश्चात् मधुर स्वर में 'राधाकृष्ण', 'गोपालकृष्ण' का कीर्तन आरम्भ कर देता है। दूसरा बच्चा आ कर 'उपनिषद्' व 'गीता' में से उद्धृत कुछ पंक्तियों को अपनी तोतली भाषा में अविराम गति से प्रस्तुत करके आपको स्तब्ध कर देता है।

बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वामी जी यद्यपि अपने विचारों व सिद्धान्तों में अद्यतन प्रतीत होते हैं, तथापि दैनिक व्यवहार में देश की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप बने रहने के प्रति पूर्णतया सजग रहते हैं। आज का युवा-वर्ग पूर्वी व पश्चिमी सभ्यता की मूल प्रवृत्तियों, विचारों तथा आदर्शों के दुःखदायी तालमेल में अपनी असावधानी के कारण ही असफल सिद्ध हुआ है।

जिस प्रकार एक कहावत है- "सुबह का भूला शाम को घर आ जाये, तो भूला नहीं कहलाता", स्वामी जी एक दूसरी ही कहावत लागू करने में विश्वास रखते हैं-"अच्छी शिक्षा जितनी शीघ्र प्रारम्भ की जाये उतना ही अच्छा है।'' इससे भी आगे बढ़ते हुए वे मानते हैं कि बच्चे की शिक्षा उसके जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए।

उनका कथन है- "गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क पर माँ की प्रत्येक क्रिया का गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि एक गर्भवती स्त्री कीर्तन, जप तथा धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में समय व्यतीत करती है और अपनी इस अवधि में जीवन को पूर्ण पवित्र बनाये रखती है, तो वह गर्भस्थ शिशु आध्यात्मिक संस्कारों से सुसम्पन्न होगा। उसकी चित्त-वृत्ति जन्म से ही आध्यात्मिक होगी।"

पुनः कहे गये स्वामी जी के शब्द हैं- "बच्चों का मस्तिष्क सुकोमल व लचीला होता है जिसे बिना अधिक परिश्रम के सुन्दरता से निर्मित किया जा सकता है। जो भी संस्कार बाल्यावस्था में डाले जाते हैं, उनका प्रभाव आजीवन रहता है। वे संस्कार अमिट होते हैं।"

जब कभी कोई गृहस्थी स्वामी जी के पास आता है, तो वे उससे यह अवश्य पूछते हैं कि वह अपनी सन्तान को बचपन से ही शिक्षा-दीक्षा उचित विधि अनुसार दे रहे हैं अथवा नहीं।

स्वामी जी की यह उत्कट अभिलाषा है कि एक ऐसी संस्था स्थापित की जाये (जिसमें माता-पिता स्वेच्छा से अपने बच्चों को भेजें) जहाँ निःस्वार्थ संन्यासियों के मार्ग-दर्शन में निष्काम सेवा एवं आध्यात्मिकता का प्रशिक्षण बच्चों को बाल्यावस्था से दिया जाये। माता-पिता का स्वेच्छा से सन्तान को वहाँ भेजने का सहयोग वांछनीय है। वहाँ पर वे ऐसे उच्च व आदर्श वातावरण में घिरे रहें कि सांसारिकता से पूर्णतया अछूते रहें। उनमें श्रेष्ठ व उच्च विचारों का संचार किया जाये।

कौन जानता है (क्या पता?) एक दिन ऐसी संस्था का निर्माण हो जाये जो सार्वभौमिक तथा विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले मानव-सेवियों को जन्म दे?

षष्ठ अध्याय

सच्चे त्याग की धधकती ज्वाला

स्वामी जी के त्याग, वैराग्य की कोई समता नहीं- हाँ, सेवा-भावना भी इतनी प्रबल है कि शेष सभी विशेषताएँ इस सच्चे त्याग के सामने फीकी (मन्द) पड़ जाती हैं। उनके त्याग का उदाहरण अद्वितीय है। उनका यह आदर्श साधक के लिए सदा-सर्वदा अमूल्य प्रेरणा का स्रोत है। जब उनके पूर्वाश्रम की पृष्ठभूमि को देखते हैं, तो उनके जीवन की असाधारण घटना यानी आध्यात्मिक रूपान्तरण एवं संन्यस्त-वृत्ति का आदर्श सजीव हो उठता है।

एक व्यस्त चिकित्सक एवं लोकप्रिय समाजसेवी के रूप में स्वामी जी ने ऐसे त्याग तथा आत्म-साक्षात्कार के विषय में सोचा तक न था। एक भ्रमणशील संन्यासी, जो-कुछ दिन (मलाया में) इनके पास ठहरा था, बीमार पड़ गया। स्वामी जी ने उसकी निरोगता के लिए इतने स्नेह से चिकित्सा की कि वह साधु इनके प्रेमिल व्यवहार पर मुग्ध हो गया। उसके पास वेदान्त की कुछ पुस्तकें थीं जिन्हें उसने बहुत सँभाल कर रखा हुआ था। वह सदैव उनको छिपा कर रखता था व किसी को देने के लिए सहज ही तैयार नहीं होता था। उसने उनमें से सर्वोत्तम पुस्तक छाँट कर स्वामी जी को दी। वह स्वामी सच्चिदानन्द रचित 'जीव-ब्रह्म ऐक्यम्' पुस्तक थी।

इस पुस्तक ने स्वामी जी की सुप्त आध्यात्मिकता को प्रज्वलित कर दिया और उनकी प्रवृत्ति ईश्वरोन्मुखी हो गयी। इसके पश्चात् उन्होंने अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया जिनमें स्वामी रामतीर्थ का साहित्य, स्वामी विवेकानन्द का साहित्य आदि प्रमुख था। आध्यात्मिक जीवन की सत्यता व

महत्ता का ज्ञान होने पर स्वामी जी इस दिशा की ओर गहराई व तीव्रता से खोज करने लगे। इस नये ढंग के जीवन में उतनी ही पूर्णता थी जितनी उनके चिकित्सक व लोकसेवी जीवन में थी।

तीव्र वैराग्य की ज्वाला उनके अन्दर ऐसी भड़की कि पूर्वाश्रम का जीवन उन्हें इतना बन्धन-स्वरूप प्रतीत होने लगा कि जिसकी तीव्रता से उन्होंने अपने समृद्ध, सुखमय, प्रभावशाली तथा लोकप्रिय चिकित्सक के जीवन को एकाएक त्याग दिया, जिस पर व्यक्ति आश्चर्यचकित हो उठते हैं। उनके मृदुल स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व तथा कर्मठ जीवन का वहाँ के लोगों पर इतना अधिक प्रभाव था कि वे उस क्षेत्र में शक्ति-स्वरूप बन गये। यदि उन्हें रेल से यात्रा करनी होती, तो रेलवे कर्मचारी अपने प्रिय चिकित्सक के लिए रेल को रोक लेते। जहाज से यात्रा करनी होती, तो थोड़ी देर से पहुँचने पर भी वहाँ जाने के लिए सिंगापुर की नाव इनको चढ़ाये बिना रवाना न होती। यहाँ तक कि बैंकों में रविवार की छुट्टी के दिन भी इनका नगदी का लेन-देन का काम अपवाद सुविधा के साथ हो जाता। ये सब सम्मान, प्रभाव, सम्पन्नता, लोकप्रियता आदि उनकी दृष्टि में इतने तुच्छ हुए कि उनको तृणवत् त्याग दिया।

उसी होनहार सर्व-सुख-सम्पन्न, समृद्ध चिकित्सक को एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में अपनी इस रहस्यमय धरती को एकाकी चक्करदार धूल-धूसरित सड़कों पर भ्रमण करते, अनन्त लोक का यात्री बनते देखा गया। जो पुरुष कुछ ही दिनों पहले एक वैभवशाली परिवार का था, जहाँ सदैव अतिथियों की चहल-पहल रहती थी, उसके पास अब केवल एक दण्ड, एक भिक्षापात्र तथा देह पर लपेटा सादा वस्त्र ही पूँजी थी।

स्वामी जी शुभ व सौन्दर्य के इतने प्रेमी थे कि भिन्न-भिन्न बहुमूल्य वस्त्रों- कमीज, पैंट, कोट आदि से युक्त सन्दूकों से कमरे तक भरे रहते थे। वही प्राणी अपने अन्दर धधकती तीव्र त्याग-वैराग्य की ज्वाला के कारण अब धन को छूता तक न था। हमें उनके जीवन से ज्ञात होता है कि तरह-तरह की वेशभूषा व आभूषण उन्हें इतने अधिक प्रिय थे कि भिन्न-भिन्न रत्नों से जड़ी अँगूठियाँ व भिन्न नमूने की घड़ी-चेन आदि का संग्रह करते ही रहते थे।

सभ्यता व संस्कृति से सम्बन्धित कोई भी सुन्दर वस्तु इस कलाकार को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी, जिसे वे बिना आवश्यक-अनावश्यक बात पर ध्यान दिये अपने पास रख लेते थे। ऐसी संचित की गयी चीजों में कई हारमोनियम, तीन सुन्दर ग्रामोफोन और बिलकुल नये टंकण यन्त्र भी थे। प्राचीन समय के गोपीचन्द व सिद्धार्थ के आदर्श की भाँति स्वामी जी ने इस समस्त वैभव को तिनके की भाँति त्याग दिया और तीव्र त्याग व वैराग्य की निधि से युक्त परमात्माश्रित भिक्षुक का जीवन ग्रहण किया।

वर्तमान समय के निवृत्ति-मार्ग को अंगीकार करने वाले नब्बे प्रतिशत साधकों की असफलता का एकमात्र कारण उनका अधूरा त्याग व संशय-युक्त वैराग्य है। साधक विगत प्रेम-सम्बन्धों, मधुर स्मृतियों एवं रुचियों को समूल नष्ट नहीं कर पाता। इसलिए कई वर्षों तक संन्यासी-जीवन व्यतीत करने पर भी सच्चे अर्थों में पूर्ण संन्यास व विरक्ति न होने के कारण निष्क्रियता व एकाकीपन ही हाथ आता है। अन्ततः मन व्यर्थ की तृष्णाओं और निराशाओं से युक्त हो जाता है। ऐसे साधकों को स्वामी जी के उत्कृष्ट वैराग्य के आदर्श से शिक्षा ले कर उसी के अनुरूप जीवन ढालने का प्रयास करना चाहिए।

अस्थिर एवं विचलित साधकों के लिए यह एक वस्तुगत शिक्षा है। अनिश्चित मन से जीवन में ऐसे महत्त्वपूर्ण पथ अपनाने से साधक को न तो आध्यात्मिक जीवन में और न भौतिक जीवन में सफलता प्राप्त होगी। दो नौकाओं में सवार हुए यात्री की भाँति वह निराशा के समुद्र में ही गोते लगायेगा। साधारण लौकिक व्यवहार में भी किसी दुर्व्यसन में जो आपको दास बना लेता है– छुटकारा पाने के लिए अथवा बुराइयों को समूल नष्ट करने के लिए निश्चयात्मक बुद्धि से निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।

स्वानुभव के आधार पर ही स्वामी जी साधकों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं-"दृढ़ निश्चय व दृढ़ संकल्प से काम लो। एक बार निवृत्ति-मार्ग को अपनाने पर पीछे संसार की ओर मुड़ कर कभी न देखो। साहस से काम लो, बुद्धि को स्थिर रखो, जीवन के निर्दिष्ट उद्देश्य को अपनाओ, विचलित न होओ। क्या आप शरीर एवं जीवन सहित सभी प्रकार के स्वत्वों को त्यागने के लिए तैयार हैं? तभी आप निवृत्ति-मार्ग और संन्यास में दीक्षित हो सकते हैं। धीरता, सहनशीलता व दृढ़ संकल्प-शक्ति वाला ही इस मार्ग पर चल सकता है। जैसा कि सभी सोचते हैं, यह फूलों की सेज नहीं, काँटों की बाड़ी है। यह मार्ग अनगिनत कठिनाइयों से भरपूर है। क्या आपने हर मूल्य पर संन्यास लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया है? क्या आप अपने सभी सम्बन्धियों (रिश्तेदारों) से नाता (सम्बन्ध) तोड़ सकते हैं? इस पर गहराई से विचारिए, सोचिए।"

पुनः स्वामी जी कहते हैं- "गहराई से कुछ समय विचार करने पर ही कोई निश्चय लीजिए, तभी आप अन्तिम निर्णय लेने योग्य बन सकते हैं। फिर तत्काल उस निर्णय को व्यवहार में लाइए। अविलम्ब ही उसे क्रियान्वित कीजिए। तभी सफलता आपके चरण चूमेगी। इस अनमोल विचार को कभी न भूलिए कि दृढ़ संकल्प से दुविधा की बेड़ियाँ कट जाती हैं।"

जिस निर्भयता से उन्होंने स्वयं इस ग्रन्थि का भेदन किया है, उसकी व्याख्या की अपेक्षा ही नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनका आध्यात्मिक परिवर्तन 'मर कर जीने' की कहावत
को चरितार्थ करता है।

सप्तम अध्याय

दुर्गम पथ

कष्टों को वहन किये बिना किसी भी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति सम्भव नहीं है। श्रम से बहने वाले स्वेद-कणों के बिना चिरस्थायी आदर्श की प्राप्ति नहीं हो सकती। बीज अपने अस्तित्व को

मिटा कर पौधे के रूप में प्रस्फुटित होता है। फूल मधुर फल की प्राप्ति के लिए जीवनोत्सर्ग करता है। आग की भट्ठी में तप कर ही धातु शुद्ध स्वर्ण बनती है। इसी प्रकार एक साधक को भी साधना-काल में पूर्ण एकान्त, विभिन्न कष्ट व संघर्षों की भट्टी में तप कर ही साधुता का मूल्य चुकाना पड़ता है।

स्वामी जी का प्रारम्भिक परिव्राजक जीवन इस कटु सत्य को प्रमाणित करता रहा है। महाराष्ट्र जैसे उष्ण प्रदेश में स्वामी जी तपते आकाश के नीचे नंगे सिर, नंगे पाँव, बदन पर एकाध वस्त्र पहने ही भटकते रहे। रात्रि पड़ने पर कभी-कभी तो वह सड़क के किनारे पेड़ के नीचे ही सो जाते। भोजन न मिलने पर बहुधा भूखे रहना पड़ता। बहुत भूख लगने पर जंगल के कन्दमूल, जंगली बेर जो पेड़ के नीचे बिखरे होते, उन्हीं को चुनते, साफ करते व उदर की क्षुधा को शान्त करते। देह पर धारण किये हुए वस्त्र के दो टुकड़े भी अब चीथड़े मात्र रह गये जिसकी उन्होंने तनिक भी परवाह नहीं की।

इस असह्य कठोर तपस्या ने उनके हृदय में प्रदीप्त तीव्र वैराग्य की ज्वाला में आहुति का कार्य किया। इस अनोखे तरुण तपस्वी साधक के तेजोमय मुखारविन्द ने सबको आकर्षित किया। किसी गाँव के उदार निवासियों ने उनके देदीप्यमान शरीर पर पड़े चीथड़े देख कर आपस में ही कुछ धन संग्रह करके एक जोड़ा नये वस्त्र उन्हें खरीद दिये। आश्रय-स्थल के अभाव में शीत ऋतु की कड़कड़ाती सर्दी को उन्होंने शान्तिपूर्वक सहन किया।

एक बार मूसलाधार वर्षा में भीगने से वे सर्दी से ठिठुरने लगे, फिर भी उनका चलना जारी रहा। परन्तु रात्रि के घने अन्धकार में मीलों यात्रा करने के बाद उनको किसी एक साधारण-सी बस्ती में इस यात्रा को विराम देना पड़ा। कहीं आश्रय न मिलने पर एक भूसे के ढेर पर ही भीगे कपड़ों में काँपते हुए उन्होंने रात्रि व्यतीत की।

प्रत्येक साधक को ऐसी यातना का आगे या पीछे सामना तो करना ही पड़ता है। परीक्षा की इन घड़ियों में साधक को स्वामी जी के समान ही अटूट धैर्य से मुकाबला करना चाहिए। आध्यात्मिक मार्ग में कठोर तपस्या व अदम्य साहस वांछनीय है। सभी सच्चे जिज्ञासुओं का भी- जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार हेतु अज्ञान व जगत् की निरर्थकता से मुख मोड़ लिया-यही अनुभव है। सत्य तो यही है कि परीक्षा और आपदा-रूपी भट्ठी में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्थापित होता है।

आध्यात्मिकता के सच्चे पथ के विषय में स्वामी जी को किसी प्रकार का भी भ्रम नहीं है। अपनी रचनाओं में वे स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं-"अध्यात्म का कोई राजपथ नहीं है।" वे कहते हैं- "विपत्ति एक प्रच्छन्न वरदान है। विपत्ति हमारी संकल्प-शक्ति तथा सहनशीलता को बढ़ाती है। हमारी सहिष्णुता और धीरता में वृद्धि करती है। पुरातन काल से ही योगियों, सन्तों, भक्तों, महात्माओं और पीर-फकीरों को विषम परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा। ईश्वर अपने भक्तों को घोर तपस्याओं और कठोर परीक्षाओं का सामना करवाता है।"

आपकी सच्चाई व सहनशीलता की परीक्षा भी भगवान् अवश्य लेंगे। साधकों को तो वे अनेक प्रकार के कष्टों में झोंकते हैं। वे आपको सर्वप्रथम अतिशय असहाय अवस्था में रखेंगे, तब परीक्षण करेंगे कि इस दयनीय अवस्था में भी आपके हृदय में उनके लिए भक्ति है या नहीं। इन

परीक्षाओं के स्वरूप के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता; किन्तु एक सच्चा भक्त इन विपदाओं में बिलकुल नहीं घबराता। किसी भी आदर्श की प्राप्ति के लिए परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर भी सहनशीलता, सहिष्णुता तथा संकल्प-शक्ति बनाये रखना अत्यावश्यक है।

वे लोग जो आक्षेप लगाते हैं कि अपने असंख्य लेखों द्वारा स्वामी जी सर्वस्व त्याग करके सबको संन्यास के लिए प्रेरित करते हैं, उनको उपर्युक्त अनुच्छेदों का अध्ययन करना चाहिए। इससे उन्हें सन्तोष हो जायेगा कि स्वामी जी ने संन्यास-जीवन का कोई सुखद या आकर्षक रूप बुद्धिहीन युवा-वर्ग के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया; कोई बात घुमा-फिरा कर नहीं कही। स्वामी जी के स्वयं के कठोर जीवन से उत्पन्न परिपक्व अनुभव पर आधारित ये तथ्य साधकों को सावधान करते हैं, ताकि वे पारमार्थिक जीवन के कटु सत्य से अवगत रहें तथा आवश्यकता होने पर स्थितियों से सामंजस्य स्थापित कर सकें। वस्तुतः यह पथ दुर्गम है। इस फिसलने वाले संकीर्ण मार्ग पर सन्तुलित हो कर चलो।

मैंने चुपचाप देखा कि आज साठ वर्ष की अवस्था में भी स्वामी जी अपनी वैयक्तिक वीतरागता के आदर्श को अज्ञात एवं विनीत भाव सहित सजीव बनाये हुए हैं। कभी-कभी तो उनका एकादशी व्रत उसी दिन तक सीमित न रह तीन दिनों तक चलता है। भूख-प्यास की पीड़ा को सहने, ठिठुरती सर्दी को सहने तथा पथरीले मार्ग पर नंगे पाँव चलने की तपस्या उनकी आज भी चलती है।

एक बार साधु-समूह को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा कि वे अपनी प्रसुप्त वृत्तियों से सचेत रहें। स्वामी जी ने कहा- "मनुष्य स्वभाव से ही विलासी है। आप प्रारम्भ में तो अवश्य ही वैराग्य तथा व्रत -पालन में उत्साही रह सकते हैं; परन्तु यदि आप स्वयं के प्रहरी न बने, तो वहीं आपकी साधना-शक्ति धीरे-धीरे शिथिल पड़ जायेगी। आप आरामपसन्द बनते जायेंगे और अन्ततः उस पाश में बँध कर असहाय बन जायेंगे। अपनी देह को आराम अथवा विलासिता में रहने की आपने जरा भी छूट दी, तो साधना द्वारा उसे पुनः अनुशासित करना असम्भव हो जायेगा।''

कोमल शय्या पर शयन करते हुए उनकी विरोध की भावना एकाएक जाग्रत हो जाती और वह अपनी कुटीर के नंगे, ठण्ढे व पथरीले फर्श पर लेटे हुए पाये जाते। कभी-कभी वस्त्र उतार कर वे नाली के पास गीले फर्श पर ही पालथी लगा कर बैठ जाते। आहार और वस्त्र की सादगी के आदर्श को बनाये रखने में वे सदैव प्रयत्नशील हैं। तपस्या के इन समस्त रूपों के प्रति साधक कभी असावधानी न बरते; क्योंकि जहाँ ये प्रगति में सहायक हैं, वहाँ इनके द्वारा पतन की भी आशंका है।

चेतावनी के तौर पर स्वामी जी दक्षिण के एक प्रसिद्ध संन्यासी के दयनीय पतन का उदाहरण दिया करते थे। उस संन्यासी ने तीव्र वैराग्य व तपस्या द्वारा अपने बड़े भाई को भी संन्यास के लिए प्रेरित और उत्तेजित किया। खेद की बात है कि वह स्वयं पथ-च्युत हो कर भोग-विलासी बन गया। विवाह करके पूर्ण सांसारिक व विषयी बन गया। यहाँ तक कि उसने अपनी वृद्धा धार्मिक माँ को भोजन आदि से सम्बन्धित संकल्पों को तोड़ने के लिए बाध्य कर दिया।

ऐसे कई दृष्टान्त हैं जिनमें एकान्त-सेवी संन्यासी वर्षों की तपस्या के बाद भी अपने प्रशंसक भक्तों के सम्पर्क में आ कर आरामप्रद जीवन के शिकार बन जाते हैं। प्रसिद्धि प्राप्त करते ही

उनके आस-पास स्वेच्छा से उनकी निजी सेवा के लिए तत्पर भक्तों की भीड़ लग जाती है। प्रारम्भ में तो संन्यासी उत्सुक शिष्यों को निराश न करने के कारण थोड़ी छूट दे देते हैं, किन्तु अन्त में वह हर प्रकार की विलासिता के दास बन जाते हैं।

स्वामी जी के ही समकालीन एक साधु जो हिमालय की गुफाओं में तपस्या करते थे, एक बार एक भक्त के आग्रह पर रसोइया रखने के लिए तैयार हो गये। उन्हें नित्य नियत समय पर भोजन करने का अभ्यास पड़ गया। वही तपस्वी साधु जो अन्नक्षेत्र से कभी-कभी मिलने वाली भिक्षा पर निर्भर थे, अब भोजन में थोड़ा-सा विलम्ब हो जाने पर आग-बबूला हो जाते हैं।

साधक के जीवन में जरा-सी भी दुर्बलता आने पर मन इस अवसर का लाभ उठा लेता है। मन शिकार को दबोचने के लिए अपने पंजे सदैव तैयार रखने वाले सिंह की तरह है। स्वामी जी के जीवन से यह चरितार्थ होता है कि सुप्त संस्कारों के आकस्मिक आक्रमण के प्रति सतत सजग रहना चाहिए। स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहने में तो वह उच्च कोटि के साधकों के लिए महान् आदर्श हैं। स्वामी जी भक्त गणों के द्वारा उन्हें साष्टांग प्रणाम के समय अपने चरण स्पर्श करने का समय कभी नहीं देते। उच्च कोटि की साधिका द्वारा वे चरण स्पर्श का निषेध करते हैं। शायद आपने भी सुना होगा कि स्वामी विवेकानन्द के सहपाठी, जिनका संन्यासी-जीवन त्याग व संकल्प से परिपूर्ण था, कई वर्षों के आत्म-संयम एवं निष्काम सेवा के बाद भी अन्ततः एक स्त्री के प्रलोभन में बुरी तरह फँस गये। स्वामी तुरीयानन्द ने अपने साधकों की एक अनौपचारिक वार्ता में यह उदाहरण दिया था।

यहाँ पवित्र और अपवित्र होने का प्रसंग नहीं है। चाहे व्यक्ति पवित्र वा शुद्ध- हृदयी ही क्यों न हो, तो भी स्त्री जाति का सम्पर्क मात्र ही उसे संसर्ग की ओर ले जाता है। स्त्रियों के मुक्त साहचर्य में मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियाँ उभरने लगती हैं और वह मनुष्य के नियन्त्रण में सुगमता से नहीं आ पार्टी। नारी निष्कलंका हो सकती है, पर ईश्वर की माया अनजाने में उसके माध्यम से सक्रिय होती है। मनुष्य की प्रसुप्त वासनाएँ स्त्री के संसर्ग व संगति का अवसर पाते ही अभिव्यक्त हो उठती हैं।

येरपेडु के पूज्य मलयाला स्वामी, जो स्वामी जी के समकालीन महान् सन्त हैं, अकारण ही स्त्रियों की संगति का निषेध नहीं करते। एक साधक ने अनजाने में अपनी रुग्णावस्था में सेवा-सुश्रूषा करने वाली सहृदया स्त्री को अपने पाँव की मालिश करने की अनुमति दी। उसे मलयाला स्वामी ने समझाते हुए बताया- "तुम्हारे ऐसे पाप का मुझसे कोई प्रायश्चित्त पूछा जाये, तो मैं यह कहूँगा कि स्त्री द्वारा स्पर्श किये गये पाँव के भाग पर जलते हुए अंगारे रख दिये जायें।"

भौतिकवादी, सौन्दर्य-प्रेमी, स्त्री-पुरुष के आध्यात्मिक सम्बन्ध की भावना रखने वाला, यौन-भावना को काव्य-कल्पना में चित्रित करने वाला आधुनिक मन घोर तपश्चर्या की इस पराकाष्ठा का प्रतिरोध कर उठेगा। वे सन्तों पर स्त्री-घृणा का आरोप लगा सकते हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ऐसी सावधानी आवश्यक है।

आज के लगभग सभी सन्त जन नारी की दिव्यता में विश्वास रखते हैं। वे नारी को महान् आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनका विचार है कि नारी भी देश के पुनरुत्थान में प्रमुख भूमिका का निर्वाह कर सकती है। वस्तुतः श्री मलयाला स्वामी स्वयं, आनन्द आश्रम के श्री स्वामी रामदास,

उपासनी महाराज के सहकारी शिष्य, स्वामी ओंकार जी, श्री वासवानी जी आदि सब अनेक व्यावहारिक रूपों में स्त्री-शिक्षा, स्त्री-जागरण तथा स्त्री-प्रशिक्षण के प्रति सक्रिय हैं। तथापि एक साधक के लिए स्त्री-संसर्ग पूर्णतया निषिद्ध है।

नारी को समुचित आदर अवश्य मिलना चाहिए, उसके उत्थान के लिए उचित प्रशिक्षण भी मिलना चाहिए; पर यह सब पृथक् संस्थाओं में होना चाहिए। उनके लिए ऐसे आश्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ ज्ञान-वृद्ध आत्माएँ समुचित सम्माननीय दूरी रखते हुए उनसे व्यवहार कर सकें। कहने की आवश्यकता नहीं कि नारी-वर्ग को भी पुरुष-वर्ग की संगति में इतना ही अनुशासन व संयम दिखाना होगा।

हमारे हिन्दू-शास्त्रों में स्पष्ट रूप से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब मानवोपरि श्रेणी के ब्रह्मा, नारद व विश्वामित्र आदि भी विपरीत लिंग के आकर्षण में फँस गये। चाहे कोई शास्त्रों को आधिकारिक माने या न माने; पर जो शिक्षाएँ उनमें वर्णित व प्रस्तुत की गयी हैं, उन पर हमें यथोचित विचार अवश्य करना चाहिए। आध्यात्मिक साधक के लिए वे विपरीत लिंग से दूर रहने का स्पष्टतया समर्थन करते हैं। इसका तात्पर्य स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों को नष्ट एवं उत्तेजित करना नहीं है, बल्कि इसका आशय यह है कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को आदर सहित उचित दृष्टिकोण से देखें और ईश्वर-प्रदत्त एक-दूसरे की अमित शक्ति के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें। इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि अधिकांश लोगों में काम-लिप्सा अधिक प्रबल है। अतः इस असामंजस्य को दूर करने की आवश्यकता है। पारस्परिक विरोधी दृष्टिकोण तथा तीक्ष्ण परामर्श के पीछे विवेक की आवश्यकता है।

स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट पथ को अपना कर ही प्रत्येक साधक व्यक्तिगत रूप से लाभान्वित हो सकता है। वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन और इसकी अनुभूति भी अनन्त ही है। यह कार्य किसी भी अवधि तक सीमित नहीं है कि उसको पूर्ण करने के पश्चात् अवकाश मनाया जाय। यदि जीवन में किसी उच्च आदर्श की प्राप्ति करनी है, तो परमोच्च शुद्धता और अनुशासन बनाये रखना होगा। इसमें शिथिलता और सावधानी की उपेक्षा असह्य है। शक्तिशाली सार्वभौमिक माया-जाल कोई साधारण खेल नहीं है। वर्षों से कष्टों को सहते हुए की हुई तपश्चर्या को नष्ट करने के लिए वासना-वेग का एक ही झोंका पर्याप्त है। तत्त्व-वेत्ताओं के कथनानुसार इसे सदैव याद रखिए कि साधक को प्रार्थना में सर्वदा सजग रहना होगा।

यह उचित होगा कि मदुरा के उस सन्त का उदाहरण सामने रखें जिसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि नगर में जब वह एक बार निरुद्देश्य घूम रहा था, तो एक अहंकारी तथा धृष्ट व्यापारी ने प्रश्न किया - "सन्त की दाढ़ी और गधे की पूँछ के बालों का गुच्छा, दोनों में से किसकी महानता अधिक है ।'' सन्त ने प्रश्नकर्ता की ओर मौन दृष्टिपात किया और चुपचाप आगे बढ़ गया।

वर्षों उपरान्त उस सन्त ने व्यापारी को तुरन्त पहुँचने को कहलाया। वह मसखरा व्यापारी, जो चिरकाल से की हुई अपमानसूचक ठिठोली को भूल चुका था, चकित रह गय। और सोचता गया कि क्या बात हो सकती है? वहाँ पहुँचने पर उसने वन्दनीय महात्मा को मृत्यु-शय्या पर पड़े पाया। मरणासन्न महात्मा उठे और धीरे से फुसफुसाते हुए व्यापारी से कहने लगे- "हे भद्र व्यक्ति!

वर्षों पूर्व आपने मुझसे एक प्रश्न किया था। ठीक है, मेरी दाढ़ी गधे की पूँछ के बालों से महान् है। अब आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। विलम्ब के लिए क्षमा करें।"

अवनमित व्यापारी ने यह उत्तर सुन कर सन्त से पूछा- "वर्षों के मौन के उपरान्त उसके धृष्टतापूर्वक किये गये प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षणों को ही क्यों चुना?"

सन्त ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया- 'यथार्थतः यह मेरे जीवन के अन्तिम क्षण हैं। निस्सन्देह मैं तब भी यह उत्तर दे सकता था जो मैं अब दे रहा हूँ, पर तब मैंने साहस न किया। प्रिय बन्धु! ईश्वर की माया इतनी रहस्यमयी व अगम्य है कि मैं जानता ही न था कि अगले क्षण मैं क्या कर बैठूँगा? माया के आकर्षण के समक्ष मानव की उपलब्धियाँ नगण्य हैं। दिव्य लीला के मंच पर उसी का शासन सर्वोपरि है। कोई भी व्यक्ति निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकता कि वह समस्त प्रलोभनों से परे है। भगवत्कृपा न उसको केवल पवित्र बनाती है, बल्कि अन्त तक उसकी पवित्रता का संरक्षण भी करती है। मनुष्य का धर्म यही है कि वह सतत सजग रह कर नम्रतापूर्वक व्यवहार करे।

"विगत वर्षों में मैं अपने-आपको निष्कलंक एवं पवित्र रखने के लिए उस प्रभु की करुणा और प्रेम पर निष्ठापूर्वक आश्रित रहा। अब मेरे जीवन के कुछ ही क्षण शेष है और विचलित होने की कोई सम्भावना नहीं है। अतः अन्तिम श्वास के समय मैंने ऐस उत्तर दिया है।" यह कह कर महात्मा पीछे को लुढ़क गये और उनकी इहलीला समा हो गयी।

अतः असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने, पर विचलित करने वाले पथ पर निरन्तर प्रगति की ओर बढ़ने के लिए मानव को सच्ची विनम्रता और सतत सावधानी जैसी महान् शिक्षाओं को दृढ़तापूर्वक धारण करने के लिए सदैव जागरूक रहना होगा।

अष्टम अध्याय

समाज में रहने वाले साधकों की समस्या

आध्यात्मिक पथ के साधकों तथा ऐसे साधकों को जो साथ-साथ लौकिक धर्म सम्पन्न करते हुए नैतिकता के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, जटिल समस्या का सामना करना पड़ता है। पूर्णतया निवृत्ति-मार्ग को अपनाने वाले साधकों के लिए यह निर्देश पूर्णरूपेण व्यावहारिक है।

परन्तु सहशिक्षा-संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों, चिकित्सकों-जिनके रोगी पुरुष ही नहीं महिलाएँ भी होती हैं और वकील-जिनके वादी दोनों वर्गों के होते हैं तथा ऐसे व्यवसायी जो मुख्य रूप से नारी-जगत् के काम आने वाली सामग्री का ही व्यापार करते हैं-इन

सबको नारी-सम्पर्क में हर समय रहना ही पड़ता है। इन सबको किस ढंग से इस समस्या का सामना करना चाहिए ? समाज-सेवी और निष्काम कर्मयोगियों के सामने भी इस समस्या की चुनौती प्रस्तुत होती है।

इस समस्या का स्वामी जी को पूर्ण ज्ञान है। इसका पहला कारण है कि वह स्वयं अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही निष्काम कर्मयोगी थे। चिकित्सक के रूप में, तत्पश्चात् संन्यासी के रूप में बदरीनारायण मार्ग पर स्थिति 'सत्य सेवा आश्रम' के धर्मार्थ औषधालय में सेवा की अवधि में उन्हें हर वर्ग के यात्री एवं रोगी का उपचार करना होता था। दूसरा कारण यह था कि नाम-संकीर्तन-प्रचार में वह महिलाओं व बच्चों-सभी को कीर्तन का अभ्यास कराया करते थे। उनको पूर्ण विश्वास था कि नारी ही देश की आध्यात्मिक सम्पदा को अक्षुण्ण रख सकती है।

जहाँ-कहीं भी वे जाते, उपचार का कार्य किये बिना न रहते। सेवा का यह रूप उन्हें बहुत प्रिय था। औषधियों और प्राथमिक चिकित्सा के काम आने वाली अन्य आवश्यक वस्तुओं से उनका रहस्यमय थैला प्रवास में सदा उनके साथ रहता था। यहाँ तक कि संकीर्तन-मण्डप में भी थैला उनके पास रहता और कार्यक्रम के अन्त में वे घोषणा करते कि जिसे भी उपचार व औषधियों की आवश्यकता हो, वह उनकी सेवा का लाभ उठा सकता है। इस प्रकार उनके लिए जनता से निकट सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे अवसरों पर वह अपनी समस्या को कैसे सुलझाते हैं तथा आपके व मेरे सम्मुख इसका समाधान कैसे रखते हैं?

समस्या-समाधान के रूप में वे पाँच-छह महत्त्वपूर्ण बातें अपनाने के लिए कहते हैं। इस जटिल समस्या के समाधान का सर्वोपरि रूप सात्त्विक भाव को जाग्रत करना है। मानव अपने हृदय के विचारों का ही प्रतिबिम्ब बाह्य जगत् में देखता है। इसीलिए स्वामी जी 'दृष्टिकोण-परिवर्तन' का ही समर्थन करते हैं। जिन साधकों को अपने जीवन में नारी-सम्पर्क में विवशतया रहना ही पड़ता है, वे सब उन्हें जगज्जननी के दिव्य स्वरूप में देखा करें। नारी के प्रति हृदय में 'देवी' भाव की जागृति एक महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली ढंग है जो व्यक्ति के लिए सचमुच ही ढाल व कवच का कार्य करता है।

गत अक्तूबर मास के प्रारम्भिक दिनों का एक दृश्य मेरे समक्ष सजीव हो उठता है। नवरात्रि के दिनों में आश्रम में रात्रि के समय देवी-पूजा बड़े भक्ति-भाव व निष्ठापूर्वक सुन्दर ढंग से की जाती है। विजयादशमी के पावन पर्व पर स्वामी जी को एकाएक जगज्जननी के साक्षात् स्वरूप की पूजा का विचार आया। 'माँ' की आरती करने के लिए रेशमी वस्त्र, फल-फूल तथा पूजा की अन्य सामग्री लाने के लिए तत्क्षण ही एक ब्रह्मचारी को उन्होंने बाजार भेजा।

देवी के साक्षात् स्वरूप में उन्होंने प्राथमिक विद्यालय की तीन वर्ष से दश वर्ष तक की कुमारी कन्याओं को बुला कर लम्बी चटाई के ऊपर उन्हें एक पंक्ति में आसीन करवाया। यह एक अद्‌भुत अविस्मरणीय दृश्य था। सुडौल व हृष्ट-पुष्ट देह वाले स्वामी जी ने प्रत्येक कुमारी कन्या को नतमस्तक हो कर प्रणाम किया। उनके भाल पर कुमकुम लगाया तथा पुष्पांजलि अर्पित की। कर्पूर से उनकी आरती उतारी तथा कार्यक्रम के अन्त में स्वयं अपने कर कमलों से उस मिष्टान्न को परोसा, जिसे देवी के भोग हेतु नैवेद्य के रूप में विशेष रूप से तैयार करवाया था। यह सब देख कर मैंने मन-ही-मन सोचा- "अब मैं स्वामी जी के सात्त्विक भाव (नारी के प्रति) के आशय को

समझ गया। जीवन की परीक्षा की घड़ियों में निष्कलंक उतरने के लिए मुझ जैसे साधकों के लिए यही दृष्टिकोण अपेक्षित है।"

परन्तु संसार में ऐसे लोग भी हैं जिनकी मनोवृत्ति धार्मिक नहीं है, न ही वे भक्ति-भावना में विश्वास रखते हैं। वे हर विषय को वैज्ञानिक ढंग एवं समालोचना के रूप में लेना चाहते हैं। इस वर्ग के लोगों को नारी की शरीर रचना व उसके अवयवों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण सामने रखना चाहिए। उन्हें मानव शरीर का विश्लेषण करना चाहिए। विवेक और विचार से देखने वाली आँखों के समक्ष नारी-शरीर का आकर्षण समाप्त हो जायेगा।

स्वामी जी द्वारा लिखे 'ब्रह्मचर्य' (विषय) पर दो अनुच्छेदों को शब्दशः यहाँ उद्धृत करने की प्रेरणा को मैं नहीं रोक सकता। उन्हें बारम्बार पढ़ा जाना चाहिए। 'दृष्टिकोण बदलो' शीर्षक में वे लिखते हैं- "वैज्ञानिक की दृष्टि में नारी विद्युत्कणों का पुंज मात्र है। ऋषि कणाद के विचारों में नारी अणु-परमाणु, द्वयअणु, त्रयअणु का पिण्ड मात्र है। शेर के लिए नारी शिकार मात्र है। विषयी पति के लिए वह केवल भोग-विलास की वस्तु है। एक बिलखते बच्चे के लिए वह स्नेहदात्री है जिससे बच्चे को दूध, मिठाइयाँ व अन्य सुख प्राप्त होते हैं। ईर्ष्यालु ननद व सास की दृष्टि में वह शत्रुवत् है। विवेकी और वैरागी के दृष्टिकोण में नारी हाड़-मांस, मल-मूत्र तथा खून-पसीने आदि का मिश्रण मात्र है। एक तत्त्ववेत्ता ज्ञानी के लिए वह सच्चिदानन्द आत्मा है।

"नारी का सौन्दर्य किसमें निहित है? विचारिए और विश्लेषण कीजिए। क्या एक विवेकी इस दैहिक माया जाल का ध्यान करेगा ? एक सप्ताह की रुग्णावस्था के पश्चात् किसी नारी के अंगों को, नेत्रों को व चेहरे को देखें। वह सौन्दर्य कहाँ चला जाता है? वृद्धा नारी के झुर्रियों भरे चेहरे पर दृष्टिपात तो करिए। नारी की शरीर रचना के उस मायावी रूप का विश्लेषण करेंगे, तो वह स्वतः सदा-सर्वदा के लिए त्याज्य हो जायेगा।"

तीसरा ढंग है-प्रतिपक्ष भावना का। यदि किसी समय नारी-ग्राहक या अभ्यागता को देख कर आपके अन्दर काम-लिप्सा जाग उठे, तो उसी समय क्षण- भंगुर विषय-सुख की भयावहता का चिन्तन करिए। विलास की पीड़ाओं, सतीत्व तथा पवित्र जीवन के सौन्दर्य को न भूलिए। मानसिक नमस्कार से भी दुर्भावनाओं पर अंकुश लगाने में सहायता मिलेगी।

नारी की आँखों की ओर देखने व मुस्कराने का प्रयत्न ही न करिए। नारी की आकृति में नेत्र सबसे अधिक लुभाने वाले वशीकरण अंग हैं। तरुणी के नेत्र शक्तिशाली होते हैं जो सन्देश-माध्यम का काम करते हैं। उसके चंचल कटाक्ष असावधान मनुष्य को अपने माया-जाल में फँसाने के लिए पुष्प-बाणों का काम करते हैं।

स्वामी जी ने लिखा है कि नारी को सामने देख कर पहले तो आपमें उससे बात करने की इच्छा होगी और फिर स्पर्श की। धीरे-धीरे निकट सम्पर्क के द्वारा आपका अपवित्र मन आपको पतन के गर्त में धकेल देगा। अतः समाज में प्रचलित हाथ मिलाने की प्रथा को त्याग देना चाहिए। नारी से सम्पर्क स्थापित करने के लिए इस क्रिया को बार-बार और बहुत देर तक किया जाता है। विदेश से आया हुआ यह फैशन हिन्दू-समाज के लिए अभिशाप है।

अन्तिम, परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार तो यह है कि नारी को स्वयं भी उसके उच्च आदर्श के प्रति प्रशिक्षण देना होगा जिसके अनुसार उसका परम कर्तव्य बच्चे में उसके शैशव-काल से ही 'मानवता' जैसी भावना के बीज बोना है। आवश्यकता इस बात की भी है कि नारी को उसके शुद्ध सतीत्व के उच्च आदर्शों से अवगत कराया जाय। उसे अपने सच्चे सतीत्व (नारीत्व) तथा मातृत्व की गरिमा का ज्ञान कराया जाय। इसके साथ-साथ वह वैवाहिक बन्धन की पवित्रता (शुद्धता) का पूर्ण ध्यान रखती हुई मनुष्य को प्रलोभन में न फँसा कर उसके उत्थान का साधन बने ।

नारी-जगत् में जाग्रति लाने एवं चारित्रिक उत्थान के लिए समस्त माता-पिता, अभिभावक, पति, गुरु जन, शिक्षक एवं शिक्षाशास्त्रियों का उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य है।

अतः उन सब साधकों को, जो लौकिक व्यवहार के साथ-साथ साधना में पूर्णता अथवा सफलता चाहते हैं, समस्या समाधान के रूप में स्वामी जी द्वारा दिये गये विवेक-युक्त, न्यायोचित, व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुसार लागू होने वाले इन सुझावों को मान्यता देनी होगी।

नवम अध्याय

सतत सजग सावधानी और विचारशीलता

यह बड़ा रोचक विषय है कि स्वामी जी छोटी-छोटी बातों में भी किस प्रकार तीक्ष्ण व जाग्रत बुद्धि से कार्य करते हुए सजग तथा सचेत रहते हैं। ऐसे कुछ दृष्टशन जिन्होंने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, नीचे दिये जाते हैं।

एक बार एक प्रसिद्ध कवि, जिसका स्वामी जी से परिचय (सन् १९५०) भारत- यात्रा के दिनों में हुआ था, संयोगवश आनन्द-कुटीर के पास आ कर ठहरा। उस समय स्वामी जी दो-तीन पुस्तकों के एक-साथ प्रकाशन हेतु घण्टों तक विषय-सामग्री लिखवाने में सदैव की भाँति अत्यधिक व्यस्त थे।

जब उन्हें पड़ोस में ठहरे कवि के आगमन का पता चला, तो उसके कुटीर में प्रवेश करने से पूर्व ही स्वामी जी ने निजी कक्ष में जाने की शीघ्रता दिखायी। इसका कारण उस कवि की अत्यधिक वाचालता थी; क्योंकि जैसे ही वह स्वामी जी को एक बार देख लेता, तो घण्टों तक अविराम बातें करने में उनका समय व्यर्थ में ही नष्ट कर देता था।

जिस कार्य को स्वामी जी उस समय कर रहे थे, वह इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसे टाला नहीं जा सकता था। स्वामी जी के पास उसकी विविधतापूर्ण बातचीत के लिए तनिक भी समय नहीं था, इसलिए शीघ्र ही अपने दो शिष्यों को उस कवि महोदय (जो वस्तुतः आश्रम का अतिथि नहीं था) की सुख-सुविधा का ध्यान रखने का आदेश दे कर तुरन्त निजी कक्ष में चले गये। मैं मूक भाव से यह सब-कुछ देख रहा था। कहीं समय व्यर्थ न चला जाये, इस बात की चिन्ता उनके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी।

पाँच मिनट बीते। और लो! तीव्रता से स्वामी जी अपने कक्ष से हमारी ओर आते दिखायी दिये। अब उनके चेहरे पर निर्णय का भाव था, कोई चिन्ता या व्यग्रता नहीं थी। उन्होंने कहा- "अब आपको उसकी देखरेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह कार्य मैं स्वयं करूँगा। दूध से भरा एक पात्र (जग), थोड़े बादाम, मिश्री तथा मेरे थैले से निकाल कर फल भी मुझे दे दीजिए।" सब चीजें लायी जाने पर वे स्वयं ही उन्हें उठा कर उस अभ्यागत (जिससे वे कुछ क्षण पूर्व मिलने के अनिच्छुक थे) के पास ले कर गये, उसका अभिवादन दिया, भोजन की सामग्री भेंट की तथा थोड़ी देर उससे बातचीत की, तब कमरे में वापस लौटे।

मैंने शान्तिपूर्वक यह सब देखा कि किस प्रकार उनके मन के दो पहलू तीव्रता से एक के पश्चात् एक परिवर्तित हुए। सात्त्विक भाव ने राजसी भाव के क्षणिक अस्तित्व का वहीं शीघ्रतापूर्वक उन्मूलन कर दिया। अपने महत्त्वपूर्ण कार्य की प्राथमिकता के कारण ही स्वामी जी ने इस अभ्यागत से बातचीत में समय व्यर्थ करने से बचना चाहा था; किन्तु अगले ही क्षण इसमें उन्हें 'निज-सुख' की गन्ध आयी।

सावधानी के अंकुश ने उन्हें वहीं एकदम सचेत कर दिया। जब उन्होंने सेवा-परायणता की भावना में थोड़ी-सी भी शिथिलता आती देखी, तो प्रतिक्रिया- स्वरूप तुरन्त स्वयं जा कर उसकी सेवा से इस भावना का सुधार किया। उनकी आत्म-सुधार की प्रबल प्रवृत्ति तीक्ष्ण तलवार के सदृश विरोधी वृत्तियों के प्रवेश से पूर्व ही उन्हें समूल विनष्ट कर डालती है।

समदृष्टि एवं समत्व के आदर्श को बनाये रखने के लिए स्वामी जी ने सच्चे संन्यासी की भाँति स्वयं को कई कठिन परीक्षाओं में डाला है। प्रत्येक अनुभव में समत्व-बुद्धि कायम रखने तथा सैकड़ों लोगों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करते समय वे अपने को स्थिर रखते हैं। एक बार मान- अभिमान के नशे से बचने के लिए झाडू व जूतों से स्वयं अपने शरीर को पीटते हुए शिरोभाग को भी नहीं छोड़ा। मानापमान की प्रतिक्रिया से मन को बड़ी सावधानी से बचा कर वे एक सच्चे संन्यासी का आदर्श सामने रखते हैं।

जाति-अभिमान की जन्मजात प्रवृत्ति इतनी सूक्ष्म और प्रबल होती है कि कोई भी मानव निरन्तर अथक प्रयत्न करने पर भी उसे सहज ही नहीं मिटा सकता। स्वामी जी ने एक प्रख्यात, धर्म-परायण तथा उच्च कुल के ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था। एक संन्यासी और वेदान्ती के लिए अहं की आशातीत चंचलता को बढ़ावा देना एक त्रुटि माना जाता है; इसीलिए स्वामी जी ने मेहतरों को सदा साष्टांग प्रणाम करने तथा उनके साथ वार्तालाप और व्यवहार में अपने समान सम्मान देने की प्रवृत्ति द्वारा इस सूक्ष्म भावना का नाश किया।

एक बार एक ईसाई धर्मावलम्बी आनन्द-कुटीर में कुछ दिनों के लिए ठहरा। आश्रमवासी उसका भोजन कमरे में ही दे आते थे। स्वामी जी की पैनी दृष्टि से यह छिप न सका। अगले ही दिन स्वामी जी ने उसके भोजन के लिए अपने ही कुटीर में प्रबन्ध किया। क्रिश्चियन भक्त और स्वामी जी एक-साथ खाने बैठे। यह कहना अनावश्यक है कि किश्चियन भक्त सहभोज में भी सम्मिलित होने लगा।

एक अन्य अवसर पर शिव-मन्दिर के निर्माण कार्य के निरीक्षक का भोजन भी निरीक्षण-स्थल पर भेजा जाता था। वह जाति से मुसलमान था। मुसलिम लोगों के गो-बध तथा गो-मांस खाने की प्रवृत्ति के कारण हिन्दू लोग दुर्भाग्यवश एक मुसलमान से इतना दूर भागते थे, जितना कि अछूत से नहीं भागते। इस प्रतिक्रिया का कारण ब्राह्मणों का गाय को देवता के रूप में पूजना है। इसी कारण मुसलमान का भोजन पत्तल में तथा सब्जी मिट्टी के कुल्हड़ में भेजी जाती थी। स्वामी जी ने यह देख लिया। अगले ही दिन भोजन के समय स्वामी जी भोजनालय के दरवाजे पर उपस्थित थे और खाने के लिए पत्तल तथा कुल्हड़ के स्थान पर स्वच्छ थाली, दो प्याले और एक गिलास भेजे गये।

स्वामी जी कई वर्षों तक ऐसे ब्राह्मणेतर सेवकों द्वारा परोसा गया भोजन स्वेच्छा से करते रहे, ताकि इस गहरी सूक्ष्म भावना का अंश मात्र भी शेष न रहे।

स्वामी जी यदा-कदा अपनी इस जाति-अभिमान की सूक्ष्म भावना की परीक्षा लेते। एक बार जब वे सीतापुर में थे, उनकी दृष्टि एक धोबी पर पड़ी, जो नदी किनारे कपड़े धोने में व्यस्त था। स्वामी जी ब्राह्मणत्व-भाव को मिटाने के इस सुअवसर को भला हाथ से कैसे जाने देते! वे तत्काल नदी के पानी में उतर गये और धोबी को सब कपड़ों को धोने में सहायता दी।

तत्त्वतः संन्यासी स्वामी जी ने एक बार अनुभव किया कि उनका आश्रम-जीवन शायद उन्हें मूल वैराग्य से दूर कर रहा है। परिणाम स्वरूप एक सुहावनी प्रातः वेला में वे अपने कुटीर से अदृश्य हो गये। युवा शिष्य-वर्ग तो व्यथित हो उठा। तरुण शिष्य व्याकुल हो उठे। चिन्तित हो कर

वे सब उन्हें ढूँढ़ने लगे; परन्तु स्वामी जी का पता तक न चला। एक पक्ष बीतने के बाद शिष्यों के सामने थके-माँदे, धूल-धूसरित, दुर्बल तथा अस्वस्थ रूप में आ उपस्थित हुए।

एक बार फिर स्वामी जी ने परिव्राजक रूप अपना कर उत्तर भारत में आश्रयहीन रह कर, गरमी के दिनों में नंगे पाँव धूल-भरे रास्तों पर चल कर, यदा-कदा मिलने वाली भिक्षा पर ही निर्भर रह कर तथा रात्रि में खुले आकाश के नीचे सो कर कठोर तपश्चर्या की। पचास वर्ष से भी ऊपर की आयु में इस परिव्राजक-जीवन को उन्होंने स्वेच्छा से अपनाया।

धातु को यदि तपन से लाल अंगारा बनाये रखना चाहते हैं, तो आग को निरन्तर प्रज्वलित रखना होगा। धीमी आँच से धातु-पदार्थ ठण्ढा व काला पड़ जाता है। निरन्तर रगड़ने अथवा चमकाने से वस्तु में चमक बनी रहती है। तोतापुरी महाराज ने भी श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रश्नोत्तर के रूप में इसी सत्य को पुष्ट किया है।

दक्षिणेश्वर के सन्त श्री रामकृष्ण परमहंस ने तोतापुरी महाराज से प्रश्न किया था कि इतना उच्च ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी वे नित्य के ध्यान के विषय में इतने सजग क्यों थे? तोतापुरी महाराज ने शान्तिपूर्वक पीतल से बने पानी के बर्तन की ओर इंगित करते हुए कहा था-"पता है, यह वर्तन इतना कैसे चमकता है? यदि में नित्यप्रति इसकी रगड़ाई न करूँ तो क्या यह अपनी कान्ति न खो देगा।" मानव के विषय में भी यही सत्य लागू होता है।

दशम अध्याय

उपदेश तथा व्यावहारिक जीवन

स्वामी जी के सान्निध्य में रहने व भ्रमण करने से यह ज्ञान हो जाता है कि मन, वचन और कर्म में एकरूपता कैसे आ सकती है? जहाँ तक मैंने अवलोकन किया है, वास्तविकता यह है कि वे जो प्रचार करते हैं, तदनुसार आचरण करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। साधक को जिन साधनामार्गीय सावधानियों और मर्यादाओं का निर्देश देते हैं, उन सबका वे अपने दिनानुदिन जीवन में दृढ़ता से पालन करते हैं।

उनके लिए यह अनिवार्यता कहाँ है? जहाँ तक मेरी बुद्धि एवं पर्यवेक्षण आँक पाया है और जो घटनात्मक साक्ष्य प्रमाणित करते हैं, वह यह है कि स्वामी जी को अब अनुशासनबद्ध रहने की आवश्यकता नहीं है। आध्यात्मिक पथ के परमोच्च महान् पुरुष, संन्यासी, वैरागी- जो कि महात्माओं के रूप में सम्माननीय एवं समादृत हैं-वे सभी स्वामी जी को अत्यधिक आदर से सम्मानित करते हैं। बहुत से उन्हें आध्यात्मिक ज्येष्ठ बन्धु के रूप में मानते हैं तथा प्रायः वे स्वामी जी के दर्शनार्थ और प्रणाम निवेदन करने हेतु आते रहते हैं।

उदाहरणतः जब 'दिव्य जीवन संघ' के कार्यकर्ताओं ने संस्थापक श्री स्वामी जी का जन्म-महोत्सव मनाने का आयोजन किया, तो निमन्त्रण देने के लिए मुझे स्वर्गाश्रम भेजा गया। अन्य महात्माओं के साथ ही मुझे वृन्दावन के एक विख्यात सन्त को भी निमन्त्रित करना था जो उस समय स्वर्गाश्रम में विराज रहे थे। प्रणामोपरान्त मैंने निमन्त्रण-पत्र अर्पित किया तथा व्यक्तिगत रूप से सविनय प्रार्थना की कि वे आ कर अपनी उपस्थिति से हमें अनुगृहीत करें। किन्तु गंगा पार करने की असमर्थता के कारण उन्होंने खेद प्रकट किया और तब भाव-संकेत से (वे सन्त मौन-व्रत में निष्ठ थे) स्वामी जी की उच्च स्थिति को बताया। उन्होंने अपने फैले हुए हाथ भक्तिपूर्वक प्रणाम हेतु जोड़े और स्वामी जी के प्रति दीर्घ श्वासोच्छ्वास द्वारा अगाध आदर निवेदन करने के लिए कहा।

उस महान् पुरुष द्वारा, जो सन्त-रूप में स्तुत्य तथा विश्रुत था, स्वामी जी की आध्यात्मिक उपलब्धियों एवं महत्ता का यह मूक किन्तु अभिव्यक्तिसूचक प्रमाण-पत्र मिला। उनकी अन्त स्थिति की उच्चता के प्रति मुझे अपनी अनभिज्ञता का भास हुआ। इसने मेरी आँखें खोल दीं तथा मेरा ध्यान आकर्षित किया कि फिर क्यों स्वामी जी उन बन्धनों से बँधे हैं जो एक नव-साधक के लिए ही आवश्यक होते हैं।

कुछ दिनोपरान्त इस (मूक) प्रश्न का उत्तर मुझे मिला। एक विदेशी दन्त- चिकित्सक से विचार-विमर्श हो रहा था। विषय था- 'आध्यात्मिक संस्थाओं के सदस्यों को कैसे जीवन-यापन करना चाहिए?' स्वामी जी ने बताया कि आध्यात्मिक संस्थाएँ जन-हृदयों पर व्यापक प्रभाव उत्पन्न करने में क्यों असफल रहती हैं? इसका कारण यह है कि जिन आदर्शों से संस्थापक मूलतः प्रेरित होते हैं, उन्हीं आदर्शों से संस्था के कार्यकर्ता विमुख हो जाते हैं।

संस्था के कार्यों की बहुलता के कारण व्यक्तिगत तपस्या अनजाने ही शिथिल पड़ जाती है। केवल किसी-न-किसी प्रकार की तपस्या ही आध्यात्मिक ज्वाला द्वारा मानव-हृदयों व मस्तिष्कों को उत्तेजित करती है, जिसके अभाव में कोई भी कार्य समाज पर स्थायी प्रभाव अंकित नहीं कर सकता। तपस्या-रूपी बल ही कार्यों को शक्ति प्रदान करता है और वचनों को प्रभावशाली बनाता है। तपस्या ही व्यक्तियों को किसी भी एक धारा में श्रवण एवं मनन करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह वस्तुओं के रूपों में परिवर्तन ला देती है तथा घटना-क्रम को प्रभावित करती है। इस तपस्या- शक्ति के अभाव में संस्थाएँ आध्यात्मिक रूप से अशक्त हो जाती हैं; क्योंकि संस्थाएँ अपनी इकाइयों का संयुक्त रूप होती हैं।

श्रृंखला की शक्ति उसकी कमजोर कड़ी में ही सन्निहित है। यह बात तब स्पष्ट हो जाती है जब व्यक्ति इतिहास का सिंहावलोकन करता है। वह देख पाता है कि सहस्रों नेताओं और सुधारकों में केवल कुछ ही ऐसे होते हैं जो संसार को प्रेरित करते हैं और समाज में मूल परिवर्तन ला पाते

हैं। सेवाग्राम के लघु समाज की मूक शक्ति का रहस्य वृद्ध व्यक्ति की तपश्चर्या में निहित है जिसे वह आत्म-बल से व्यवहृत करता है। गान्धी जी तपोनिष्ठ थे, यद्यपि संन्यासी नहीं थे और कोमलहृदयी होते हुए भी वह कठोर अनुशासक थे।

जन-समुदाय में पुनः आध्यात्मिक जाग्रति लाने में कटिबद्ध स्वामी जी जिज्ञासुओं के लिए स्वयं एक ज्वलन्त आदर्श हैं। उनके स्वभाव की प्रामाणिकता उनके वचन और कर्म में एकरूपता लाती है। उनका निष्कपट स्वभाव किसी भी प्रकार के छल-कपट को किसी भी दशा में सहन नहीं कर पाता।

द्वितीय, स्वामी जी की प्रकृति में दृढ़ता (कठोरता) है। किसी पर अत्याचार देख कर उनकी यह कठोरता प्रकट हो जाती है। अति-सुकोमल हृदय परिस्थित्यनुसार योद्धा-रूप में परिवर्तित हो जाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि बाहर से वह इस (आक्रमणकारी) प्रकृति का जरा भी आभास नहीं होने देते, किन्तु स्वयं के लिए इसका उपयोग करते हैं। आन्तरिक संघर्ष में विजय के लिए कठोरता को खुली छूट दे देते हैं।

विश्वामित्र जैसी यह प्रवृत्ति उनमें अहं के लिए भय का कार्य करती है। अहंकार ने ज्यों-ही सिर उठाया कि उस पर कठोरता का दण्ड पड़ जाता है। उनमें संस्थित वैराग्य, हठ, तितिक्षा, तपश्चर्या आदि उनके मुक्त सहज बाह्य व्यक्तित्व से आच्छादित हैं। इस प्रकार वे ऐसे ज्वालामुखी हैं जिसने अपना काम थोड़ी देर के लिए रोक रखा है। प्रकृति अपना रूप दिखाती है और स्वर्गाश्रम में की गयी साधना की ज्वाला अब भी भड़क उठती है।

तृतीय, अखण्ड साधना-काल ने उनके भीतर मानसिक प्रहरी व संरक्षक को जन्म दिया है जो अन्तर्तम में निरन्तर आक्रामक है। तीक्ष्ण निरोध के संस्कार शिथिलता का मूलोच्छेदन कर देते हैं जो किसी भी समय आ कर घेर सकती है।

अन्ततः स्वामी जी का दर्शन यह अपेक्षा रखता है कि साधक की साधना या शिष्य-मनोवृत्ति अन्त तक बनी रहनी चाहिए। मायावाद की जादू की छड़ी हिलाने और 'शिवोऽहम्' रटने मात्र से ईश्वर की गहन एवं रहस्यमयी माया (जाल) का मूलोच्छेदन करने में उनका विश्वास नहीं था। वे अहंकार की असीम शक्ति एवं उसके सूक्ष्म प्रहारों को खूब समझते थे। यह शरीर सदैव ही गधा है और मन अन्त तक बन्दर है। अतः आध्यात्मिकता (अनुशासन) के कोड़े और तपश्चर्या-तितिक्षा के डण्डे को सदैव तैयार रखना चाहिए।

वे प्रायः कहा करते हैं-"चाहे आप जीवन्मुक्त ही क्यों न हों, आपको सदा सजग रहना होगा। माया रहस्यमयी है।" जितना आप ऊँचा उठेंगे, पतन की सम्भावना उतनी ही अधिक है। असावधानी में हुई छोटी-सी भूल-चूक भी आपको पतित असहायावस्था में वेग से गिरा देगी। इस विषय में उनके सम्पूर्ण कथ्य का सार इस लघु उक्ति में है- "चाहे आप आध्यात्मिक जगत् में उच्चतमावस्था में पहुँच चुके हों, सदैव यही सोचिए कि आपकी साधना का अभी श्रीगणेश हो रहा है।" इस उपदेश का वे स्वयं अन्त तक अक्षरशः पालन करते रहे हैं। इसलिए समय-समय पर वे उपवास, सहिष्णुता, तपश्चर्या, आत्म-परित्याग के लिए तत्पर रहते हैं ।

इसमें आश्चर्य नहीं कि उनकी वाणी और लेखनी समान रूप से प्रभावकारी हैं। उनके अनुभूत निर्देश सबके सम्मुख प्रस्तुत हैं और उनसे प्रत्येक लाभान्वित हो सकता है। आध्यात्मिक सम्पदा और आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण होने के कारण वे निर्देश पाठक अथवा श्रोता में आत्मिक जाग्रति लाने में कभी विफल नहीं होते। बताया जाता है कि पर्यटन-काल में उनके ओजस्वी भाषणों के प्रेरणात्मक वचनों की शक्ति से प्रभावित हो कर एक युवा श्रोता ने अपने परिवार और सम्पत्ति को तुरन्त त्याग कर तत्क्षण माता-पिता को पत्र में 'मेरा अन्तिम प्रणाम' लिखा और उनसे विदा ले ली।

ऐसा भी देखा गया है कि पुस्तकालय में स्वामी जी की किसी पुस्तक के दो वाक्यों का स्वाध्याय करने मात्र से व्यक्ति के मन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया है। तबसे उसने अपना जीवन अपने प्रेरक से पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते हुए नियमित साधना में समर्पित कर दिया।

धनुष-बाण को खींचने से कसी हुई प्रत्यंचा ऊँची उठेगी और बाण वेग से दूर पहुँच जायेगा। यदि प्रत्यंचा ढीली हुई, तो बाण लक्ष्य पर नहीं पहुँच पायेगा।

एकादश अध्याय

तपश्चर्या एवं सामान्य बुद्धि

पिछले अध्याय के अनुच्छेदों में मनन, अभ्यास और आत्मसात करने के लिए विषय-सामग्री प्रस्तुत की गयी है। साथ ही स्वामी जी की आन्तरिक तपस्या की झलक मिलती है। तितिक्षा को बनाये रखने की आवश्यकता के दृष्टिकोण से भी हम कुछ सीमा तक अवगत होते हैं; किन्तु केवल तपश्चर्या में ही उनके व्यक्तित्व की सम्पूर्णता नहीं है और न वे स्थूल व अपरिपक्व संयम की पराकाष्ठा के पक्ष में हैं। तपस्या एवं तितिक्षा के प्रति उनके विचार सामान्य बुद्धि एवं बौद्धिक उदारता से परिपुष्ट हैं।

तितिक्षा : साधना का सहायक अंग

अतीत के बुद्ध की भाँति, स्वर्णिम मध्यम मार्ग के अधिवक्ता के रूप में, वे उत्कट सजगता एवं सन्तुलित आत्म-संयम की स्थिति में शरीर और मन की शक्तियों के उपकरणों को स्थिर बनाये रखने के लिए तपस्या को उनका एक माध्यम मानने की आवश्यकता पर बल देते हैं। यह न तो लक्ष्य ही है और न सत्यानुभूति की विशिष्ट पद्धति है। सर्वोत्तम बौद्धिकता की दृष्टि से सत्य के साक्षात्कार हेतु तपश्चर्या एक सहायक माध्यम है। इसका महत्त्व इसी में है कि यह एक आवश्यकता है। कहा जा सकता है कि यह एक अपरिहार्य सहयोगी अंग है।

गौण रूप में होते हुए भी यह त्याज्य नहीं। इसलिए एक सच्चा साधक इसकी अवहेलना न करे, बल्कि विवेक-युक्त दृष्टि से इसका मूल्याकन करे। देह-धर्म की मर्यादाओं के अनुसार भी इसमें सावधानी की आवश्यकता है। अतः इसके व्यावहारिक रूप में बहुत भिन्नता आयेगी ही; क्योंकि साधकों की श्रेणी में स्वभाव, स्वास्थ्य एवं व्यवस्था आदि की विभिन्नता होती है। स्मरणीय तथ्य यह है कि तपश्चर्या का सिद्धान्त जीवन में अवश्य उपस्थित रहना चाहिए।

व्यावहारिक अनुभव के आधार पर स्वामी जी सभी साधकों एवं संन्यासियों को तपश्चर्या का सदुपदेश अवश्य देते हैं; किन्तु उसके सीमा-अतिक्रमण न करने की चेतावनी भी देते हैं। एक ओर स्वामी जी का यह वैयक्तिक अनुभव रहा है कि अनेक वर्ष एकान्तवास करने पर भी तपस्या की उपेक्षा के कारण साधु पुनः सांसारिक गर्त में गिर जाते हैं। दूसरी ओर उनकी अपनी कठोर तपश्चर्या की पराकाष्ठा के परिणाम- स्वरूप उन्हें अनेक शारीरिक कष्ट सहने पड़े। ऋषिकेश में चिरकाल से रहने वाले वयोवृद्ध अनेक महात्माओं से यदा-कदा वार्ता में स्वामी जी की स्वर्गाश्रम में की गयी कठोर साधना व तपश्चर्या के कुछ विवरण मुझे यत्र-तत्र मिले।

एक वयोवृद्ध संन्यासी (श्री राज गिरि) ने (जिनके पास मैं उपचार के लिए दवाई ले कर जाता था) बातचीत में मुझे स्वामी जी की उन दिनों की साधना के विषय से अवगत कराया। इतना जानते ही कि मैं स्वामी जी के 'धर्मार्थ औषधालय' से दवाई ले कर गया हूँ, उन्होंने मेरी ओर उत्सुकता से देखा और बोले- "हूँ, स्वामी जी की आप जैसे युवा-वर्ग के लोग उसी रूप में समझते हैं जैसे वे आजकल आपको दिखायी देते हैं। आपकी दृष्टि में वे सम्भवतः आराम-प्रियता का जीवन-यापन कर रहे हैं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते? आजसे बिलकुल भिन्न रूप में उनको मैं जानता हूँ जिसके विषय में आप अनभिज्ञ हैं। उन दिनों उनको इतना तीव्र वैराग्य था कि भोजन व वस्त्र जैसी दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं सामग्री भी वे अपने पास रखना नहीं चाहते थे।

"अन्नक्षेत्र में भिक्षाटन के लिए प्रतिदिन जाने से इनको साधना में विघ्न पड़ता, इसलिए शरीर-निर्वाह के लिए बासी भोजन पर निर्भर रहना श्रेयस्कर समझते। रोटी को कई दिन तक सँभाले रखते, सूख जाने पर गंगा-जल में भिगो कर खा लेते। इसका अर्थ था कि एक दिन की भोजन-सामग्री को वे सप्ताह-पर्यन्त रखते थे। दिन-प्रति-दिन अपने मूल्यवान् समय को अधिकाधिक जप, उपासना और ध्यान में व्यतीत करने के लिए स्वाद-हीन, सूखी और कड़ी रोटी ही इनका मुख्य भोजन रहा।

"इसी प्रकार पहनने के सम्बन्ध में भी हम जानते हैं कि उनके पास दो ही वस्त्र थे। उनके कमरे में एक कम्बल व एकमात्र पानी पीने के पात्र के अतिरिक्त कुछ भी न था। वह एकमात्र कम्बल भी एक बार उन्होंने एक निर्धन यात्री को दे दिया, जो सूती व पतले वस्त्र के कारण ठिठुर रहा था। भगवत्प्रेरणा से एक भद्र यात्री ने एक नया कम्बल ला कर दिया। तब तक वे बिना कम्बल के रहे।

"जप-साधना के लिए ही वे रात्रि के एकान्त अन्धकार में उठ जाते और गंगा जी में कटि-पर्यन्त गहरे शीतल जल में खड़े रह कर माला-जप आरम्भ कर देते। भुवन- भास्कर की प्रथम रश्मि के दर्शन तक उनकी यह साधना चलती रहती। सूर्यनमस्कार और सूर्योपासना के पश्चात् ही वे गंगा जी केजल से बाहर आते।

"ऐसी अभूतपूर्व कठोर साधना (जो उनके सुकुमार शरीर के लिए घातक सिद्ध हो सकती थी) के परिणाम-स्वरूप उनको अतिसार का रोग हो गया जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था। कमर-दर्द दूसरा परिणाम था। मानसिक एकाग्रता को बहुत दे बनाये रखने के कारण उन्हें मधुमेह रोग भी आरम्भ हो चुका था।"

समझदार बनो

तपस्या की अति के भानक परिणाम के अनुभवों के आधार पर स्वामी जी हो बताते हैं- "विलासिता की उपेक्षा करना अच्छा है; पर शरीर-रक्षा हेतु कुछ अपेक्षित आरामदायी आवश्यकताओं पूर्ति करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। यदि आप कुछ देर कार्य में निरन्तर संलग्न रहें, तो उसके पश्चात् पर्याप्त पौष्टिक भोजन से विमुख मत होइए। जब आप बौद्धिक कार्य में व्यस्त हों, तो सिर को शीतलता प्रदान करने वाला ब्राह्मी आँवला जैसा तेल प्रयोग करें। मेरे द्वारा दिये गये फल-प्रसाद को अस्वीकार न करें।"

इस प्रकार जब साधक स्वाध्याय और लेखन-कार्य में व्यस्त रहते, तो स्वामी जी उनसे दूध, घी, बादाम आदि का अतिरिक्त मात्रा में सेवन करने का आग्रह करते। यदि वे लेने में हिचकते, तो उनका सुझाव होता- "इसमें बुद्धिमत्ता नहीं है। क्या आप मधुमेह तथा नाड़ी-दौर्बल्य के रोगी बनना चाहते हैं? मेरी घोर तपश्चर्या का परिणाम आप देखिए। साधुत्व की कसौटी केवल सूखी रोटी और दाल खाना नहीं है। अपने कार्य के अनुसार ही उचित और आवश्यक भोजन लेना चाहिए।

"समय-परिवर्तन के साथ मानव की शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है। अब मनुष्य की वह स्थिति नहीं जो तपस्वी ध्रुव और वाल्मीकि के समय में थी। वर्तमान समय में घास खा कर

और एक टाँग पर खड़े रह कर तपस्या नहीं कर सकते। आंशिक उपवास करके अथवा नमक, चीनी रहित भोजन ले कर आप आत्म-संयम का अभ्यास कर सकते हैं।

"आत्म-संयम के लिए गति धीमी होनी चाहिए। शरीर को एकाएक परिवर्तन के लिए बाध्य मत करिए। सामान्य स्वास्थ्य के बिना कुछ भी प्राप्ति नहीं हो सकती।"

स्वामी जी रुग्णावस्था में भी औषधि प्रयोग न करने के सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। सहनशीलता बढ़ाने के लिए यह सिद्धान्त उनको हास्यास्पद प्रतीत होता है। (रूढ़िवादी व मायावादी भले ही इस सिद्धान्त का समर्थन न करें।) सच्ची तितिक्षा का स्वरूप यह नहीं है। यह कठोर सर्दी-गर्मी सहने व भूख-प्यास की यातना झेलने की अपेक्षा अपने प्रति कहे गये कटुवचन को मूक हो कर सहना, दुर्व्यवहार और अनादर को शान्तिपूर्वक सहन करना कम तपस्या नहीं है।

इसी प्रकार एक ही स्थान पर वर्ष-पर्यन्त टिके रहने में उतनी ही तपस्या है जितनी कि आश्रय-हीन रह कर जंगलों व पर्वतों में घूमने से होती है, भले ही कल्पना को यह भ्रमण साहसिक और मनोहारी प्रतीत हो। कल्पना और भावना के प्रवाह में बहने से यथार्थ जीवन में कुछ भी हाथ नहीं लगता।

शरीर-रक्षा हेतु व्यायाम आवश्यक है। स्वामी जी को किशोरावस्था से ही व्यायाम करने का अभ्यास हो गया था। साधना-काल में भी व्यायाम को आध्यात्मिक रूप दे कर वे उन्मुक्त वातावरण में एक या दो मील की दौड़ लगाते थे। आज के रूढ़िवादी संन्यासी व्यायाम के इस लौकिक रूप को अक्षमता और प्रतिकूलता की दृष्टि से देखते हैं। कभी-कभी तो साधु-समाज संकीर्ण और निषेधक होने के कारण ऐसे व्यायाम-समर्थक साधु को अधार्मिक और हेय समझ कर अपमानित करता है; किन्तु स्वामी जी ने धर्मान्धता को कभी तपस्या का रूप नहीं दिया।

स्वर्गाश्रम की मुख्य बस्ती से कुछ दूर जहाँ गंगा जी का मोड़ है, वहाँ से भी आगे जा कर स्वामी जी प्रतिदिन मील-दो-मील सोत्साह दौड़ लगाया करते थे। कार्य की अविराम संलग्नता के बीच अवसर प्राप्त होते ही दौड़ लगाने का उनका अभ्यास नियमित रूप से आज भी चलता है। इस अभ्यास के लिए वे सबको प्रेरित करते हैं, विशेष रूप से ऐसे साधकों को जिनको अन्य खेल व व्यायाम आदि करने की सुविधा नहीं मिलती। ऐसे गृहस्थी जिनका कार्य अपने व्यवसाय व नौकरी के अनुसार अधिक बैठने का है, उन्हें भी अपने कमरे अथवा प्रांगण में ही कम-से-कम कुछ समय तो दौड़ लगाने का अभ्यास करना चाहिए। दैनिक कार्यों के बीच में भी दीर्घ श्वास की प्रक्रिया तथा कार्यभार की अधिकता में भी विश्राम के लिए कुछ क्षण निकाल लेने की युक्ति शरीर को तरुण तथा स्वस्थ बनाये रखने के लिए अपेक्षित है।

स्वामी जी ने यह अनुभव किया- "तपश्चर्या ने यद्यपि मेरे शरीर-रचना-क्रम को अव्यवस्थित कर दिया है और मुझ पर भारी प्रतिक्रिया की है, तथापि इस सबके भयंकर घातक परिणामों से मैंने अपने शरीर को बचाये रखा है। व्यायाम के इस अभ्यास ने ही मेरे शरीर को सुरक्षित रखा है। आज भी मैं इस अभ्यास को बिना चूके प्रतिदिन नियमित रूप से करता हूँ। प्रतिक्रिया को मैं अपने ऊपर सवार नहीं होने देता। किसी कार्य के लिए खड़े होने पर कभी-कभी मेरा सिर चकराने लगता है, सो मैं इस पर नियन्त्रण कर लेता हूँ और पहाड़ी पर दौड़ लगा कर एवं शीर्षासन करके कार्य में पुनः संलग्न हो जाता हूँ।

"इसके बाद जैसे ही किसी कार्य के लिए तत्पर होता हूँ, मुझे विपुल शक्ति संचरण का अनुभव होता है। ईश्वर ही जाने यह शक्ति कहाँ से आती है? तब मैं सशक हो कर सहज ही अपने-आपको कार्य में लगा देता हूँ। तब मेरे प्रवाहपूर्ण ओजस्वी भाषण प्रस्फुटित होते हैं। थकान अनुभव करने पर ही मैं रुकता हूँ, बीच में मुझे कोई नहीं रोक सकता। मैं स्वयं ऐसा कर पाने की अपनी इस क्षमता पर विस्मित होता हूँ।

"कभी-कभी तो मेरे अन्दर खड़े होने की भी शक्ति नहीं होती; पर जब एक बार खड़ा हो जाता हूँ, तो एकाएक शक्ति का स्रोत कहाँ से फूट पड़ता है, इसका रहस्य केवल ईश्वर ही जान सकता है। यह शक्ति मेरी स्वयं की नहीं होती, मैं तो साधन मात्र हूँ, पर मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि व्यायाम के इस अभ्यास के परिणाम स्वरूप ही मेरा स्वस्थ शरीर एकाएक अमित शक्ति-संचार को वहन कर पाता है।"

माध्यम की रक्षा करो

अगले ही क्षण अपने दीर्घकाय शरीर पर धारण किये हुए बड़े कोट की ओर इंगित करते हुए (ये सर्दी के प्रारम्भिक दिन थे और जाड़ा सिहरन पैदा करने वाला था) अपनी हँसी दबाते हुए उन्होंने कहा- "निस्सन्देह मेरी यह वेशभूषा, ठाटबाट-युक्त है, पर मैं अपने सम्बन्ध में संसार के छिद्रान्वेषण की चिन्ता नहीं करता। शुभ कार्य अनवरत रूप से करने के लिए देह को स्वस्थ स्थिति में सुरक्षित रखना अत्यावश्यक है। जो भी निधि आपके पास है, उसका भागी विश्व को भी बनाइए, अन्यथा मानव-जीवन वृथा है। ऐसा करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को अखण्ड बनाये रखना होगा।

"यदि मैं सर्दी में गर्म वस्त्रों से शरीर की रक्षा नहीं करता, तो उसका परिणाम कमर दर्द को निमन्त्रण देना ही होगा और ऐसी रुग्णावस्था में मैं अपने काम व संसार की सेवा करने में असमर्थ हो जाऊँगा। केवल औषधि-विक्रेता को भले ही इसका लाभ हो जायेगा।"

तब आगे कहा- "क्या आपने ध्यान नहीं दिया? मैं कोई भी चीज क्षण भर के लिए अपने तक सीमित नहीं रख सकता। कोई भी नवीन ज्ञान प्राप्त हो, उसे मैं मानवता की सेवा हेतु समर्पित कर देता हूँ। उसे सविस्तार समझा कर लोगों को लाभान्वित करने में मैं क्षण-भर भी विलम्ब नहीं करता। अतः मैं सतत सक्रिय रहता हूँ। विश्राम के लिए मेरे पास कोई अवकाश (समय) नहीं है। सक्रियता के इस सिद्धान्त के आधार पर ही मैं अपने इस लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षण को लोक-हितार्थ लगाना चाहता हूँ।

"प्रागैतिहासिक तपस्या व कठोरता के नाम पर मैं अपने शरीर को विपत्ति में कैसे डाल सकता हूँ? तपस्या की अतिवादिता के साथ आप स्वयं को कभी परमार्थ की उपयुक्त स्थिति में नहीं रख सकते। इसके लिए तो स्वास्थ्य-रक्षा आवश्यक है। हाँ, विलासिता से बचने का तो प्रामाणिक प्रयत्न करते ही रहना है।"

मानव-सेवी सन्त ए. सी. सी. के अनुसार इस देह-रूपी गधे को यदा-कदा भोजन-रूपी चारा डालते ही रहना चाहिए। इस तथ्य से हम किनारा नहीं कर सकते। तभी शरीर-रूप गर्दभ बन्धु की सचलता कायम रखी जा सकेगी।

अतएव, तपस्या विवेक-युक्त मर्यादा में व्यावहारोचित होनी चाहिए, नहीं तो इस असावधानी से आध्यात्मिक क्षमता क्षीण व हास्यास्पद हो जायेगी। इसको व्यावहारिक ज्ञान तथा सजगता द्वारा सन्तुलित बनाये रखना होगा। तपस्वी अवश्य बनिए, परन्तु अति तक मत जाइए, नहीं तो विषम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वह हमारे ध्येय के विपरीत है। हमारा ध्येय अमरत्व व मोक्ष की प्राप्ति है जिसके लिए हमें अहं व निम्न व्यक्तित्व को मिटाना है, स्थूल शरीर को नहीं। अतः स्वर्णिम मध्यम मार्ग द्वारा ही ध्येय की प्राप्ति कीजिए।

द्वादश अध्याय

संसार के सर्वस्व

एक चित्र मेरे मस्तिष्क में निरन्तर उभरता है। एक टेढ़ा-मेढ़ा, लम्बा-चौड़ा, ऊबड़-खाबड़ मैदान है जो शुष्क एवं कठोर भी है। कोई पगडण्डी नहीं। हाँ, कुछ चरण-चिह्न अवश्य हैं जो दुर्गम मार्ग पर सुदूर क्षितिज तक जाते दृष्टिगत होते हैं। निरभ्र आकाश में निर्ममतापूर्वक चमकने वाले सूर्य के ताप से धरा की सतह विदीर्ण हो गयी है। ऐसे विशाल मैदान में जिसके एक छोर से दूसरे छोर तक छाया अथवा आश्रय का नाम नहीं, कहीं कुछ सम्पुष्ट वृक्ष हैं जो उस निर्जन स्थान में प्रमुख रूप से दीख रहे हैं। सूर्य की प्रचण्ड एवं असह्य किरणों को सहती हुई हरी-हरी घनी शाखाएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही हैं।

कभी-कभी तो बिना पूर्व-चेतावनी के ऋतु-परिवर्तन होता है। आकाश में घनघोर घटाएँ छा जाती हैं। धरती को चीर देने वाली दामिनी दमकती है। बादलों की रौद्र गड़गड़ाहट के साथ मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाती है। ये दोनों रूप ही कभी-कभी निर्जीव निस्तब्धता को जन्म देते हैं। जब वायु का एक झोंका भी नहीं होता, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो धरती जीवन-चिह्न रहित है। पर नहीं-नहीं, इस घने अन्धकार के आवरण में भी कई भयानक जीव-जन्तु रेंग रहे हैं, सरक रहे हैं। उड़ने वाले कीट-पतंगे आदि हर एक को, जो भी उनके सामने आता है, निगलने को दौड़ते हैं।

इस भयानक राज्य के अन्धकार में ठोकरें खाते, दुःख से तड़पते, वर्षा में ठिठुरते, गरमी से तप्त धरती पर पसीने से लथपथ हाँफते हुए मानव-जीवन का धारा-प्रवाह संघर्ष चलता है। इस प्रकार दैव का प्रकोप सहते, विषधर जीवों के चंगुल से बचते, रास्ता भटक जाने के भय से आक्रान्त मनुष्य चिल्ला उठता है- "हाय! कहीं तो आश्रय मिले, कहीं तो शरण मिले, कहाँ है छाया? कहाँ मिलेगा आश्रय? हाय! सूखे होठों को गीला करने को एक बूँद शीतल जल तो मिले कहीं से।"

भय-ज्वर से पीड़ित जन-समूह को उस बंजर मैदान में भी कुछ साहसी पेड़ दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी छाया में उनको विश्राम मिलता है। इन कुछ पेड़ों में भी सबके पास नहीं पहुँचा जा सकता। कुछेक तो ऊँची पहाड़ी पर हैं, जिनके नीचे आश्रय की कोई सम्भावना ही नहीं, पर इनमें दो ऊँचे पेड़ पास ही हैं। इनमें से एक बृहद् रूप में फैला हुआ पीपल का वृक्ष है। घनी हरियाली से हरे-भरे, ठण्ढी छाया सहित इस पेड़ की जड़ों के पास शीतल और शुद्ध जल का एक स्रोत फूट पड़ा है।

इस मनोहर पेड़ की छाया और आश्रय ने सहस्रों प्यासे पथिकों को हड़बड़ी में भी विश्रान्ति दी है। यह एक ऐसा विश्राम-स्थल है जो केवल आश्रय ही नहीं देता, अपितु धूप, वर्षा और विद्युत् से भी रक्षा करता है। इसी वृक्ष के मूल से एक पगडण्डी निकलती दृष्टिगोचर हो रही है। अब सोत्साह, अज्ञात विश्वासपूर्वक और सोल्लास यात्री अपनी यात्रा को गतिमान रखते हैं।

जब कभी भी मैं गंगातीर-स्थित कुटीर में निवास करने वाले इस सुविख्यात सन्त के विषय में सोचता हूँ, तब यही चित्र हर समय मेरे मस्तिष्क में उभर आता है। वे अपने-आपको मानवता के साथी और सेवक के रूप में ही स्वीकार करते हैं, दूसरे किसी रूप में नहीं। यदा-कदा वे कहते हैं- "मेरा यहाँ कुछ नहीं है। सब-कुछ आपका है। जहाँ तक सम्भव हो, मैं दूसरों की सेवा के लिए ही जिन्दा रहना चाहता हूँ और किसी भी समय मैं यह नश्वर शरीर छोड़ सकता हूँ। इसीलिए चाहता हूँ कि अधिकाधिक जनता मेरे पास आये और इस शरीर के समाधि लेने से पूर्व जो-कुछ भी मैं बाँटना चाहता हूँ,, उसे प्राप्त करे।"

जो लोग ज्ञान, पथ-प्रदर्शन, शान्ति एवं प्रेरणा-प्राप्ति हेतु इनके पास पहुँचते हैं, उन असंख्य लोगों को वे शरण तथा आश्रय प्रदान करते हैं। आज के इस अन्धकारमय भौतिकवादी विश्व-अस्तित्व के जंगल में, जब कि विश्व पाश्चात्य सभ्यता से उत्पन्न अराजकता का साक्षी बन रहा है, स्वामी जी घने अशोक या पीपल के वृक्ष की तरह शरणागत की रक्षा करते हैं, आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनको सजग करते हैं तथा पथ-प्रदर्शन के द्वारा जीवन के अर्थ की ओर

प्रेरित करते हैं। इसका अनुभव उसी को है, जिसकी कठिनाइयों, शंकाओं तथा समस्याओं का समाधान स्वामी जी ने स्वयं किया है और ऐसे लोगों की गिनती एकाध नहीं, असंख्य है।

एक बार नागपुर से डाक्टर बी. ए. वैद्य ने अपने पत्र में स्वामी जी को लिखा- "आपको अपने लिए कुछ नहीं करना है। न ही आपको अपनी चिन्ता है, तो भी आप सैकड़ों परिवारों का दायित्व स्वयं वहन करते हैं।"

वास्तव में ऐसा ही है। स्वामी जी का परिवार अकल्पनीय रूप में बहुत बड़ा है। इस परिवार के भाँति-भाँति के सदस्यों की अनेकविध इकाइयाँ विशाल उपमहाद्वीप के कोने-कोने में ही नहीं हैं, अपितु पोलैण्ड, रूमानिया, यूगोस्लाविया, अमेरिका, इंगलैण्ड आदि देशों के निवासी भी अपने को इस विश्व - कुटुम्ब का सदस्य मानते हैं।

स्वामी जी को इस प्रकार के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों में अति ही व्यस्त देख कर मुझे जिज्ञासा होती थी। स्वामी जी ने इसको ताड़ लिया और कहा- " सोचता हूँ कि मेरी गृहस्थी विश्व के सहस्रों गृहस्थियों से भी बहुत विशाल है। उनकी गार्हस्थ्य चिन्ताओं की एक सीमा है; पर मेरे परिवार की कोई सीमा नहीं है। असीम कर्तव्यों की भी गणना नहीं हो सकती है। मेरे क्रिया-कलाप का इतना अधिक विस्तार है कि विश्राम के लिए मैं सोच भी नहीं सकता। तुम्हें विस्मय हो रहा होगा और सोचते होगे कि यह स्वामी जी भी कितने व्यस्त व्यक्ति हैं!"

उन्होंने पुनः कहा- "मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि ईश्वर मुझे इस प्रकार समस्याओं में जकड़ देगा। मैंने सर्वस्व त्याग दिया, सब बन्धन तोड़ फेंके। यह सोचा था कि अब तन्मयता के साथ मधुर राम-नाम का सदैव स्मरण करता हुआ एकान्त का आनन्द लूंगा; परन्तु देखो, ईश्वर ने मुझे इतना विशाल परिवार दे दिया है और इसके सदस्य मुझ पर इतने अनुरक्त हैं कि मैं चाहूँ अथवा न चाहूँ, वे मुझे बिलकुल अपना समझते हैं। क्या मालूम, भगवान् ने मुझे इसीलिए जन्म दिया हो? जब तक मुझसे कोई अंशमात्र भी लाभान्वित होता रहेगा, मैं इसमें ही प्रसन्न रहूँगा कि सम्पूर्ण रूप से उनका अपना रहूँ। जो मुझे सर्वस्व समझते हैं, मैं भी उनके प्रति सर्वस्व समर्पण कर देता हूँ।"

इतना तो स्पष्टतया सत्य है कि स्वामी जी के पास विश्राम के लिए कोई समय नहीं है। पर-सेवार्थ वे अपने शारीरिक सुख की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। शरीर को तो अपना समझते ही नहीं। उनके साथ दो-तीन दिन के सम्पर्क से यह स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि उनका अधिकांश समय इस दिव्य परिवार के सहस्रों बच्चों की समस्याओं, कठिनाइयों, दुःखों और संशयों को सुलझाने में ही व्यतीत होता है।

कोई भी व्यक्ति जिसको अलौकिक अनुभव होते हैं, कल्पना में अनेक प्रकार का आभास होता है, ध्यान में दिव्य ज्योति की चकाचौंध होती है, शरीर-प्रणाली में अप्रकट शक्ति-प्रवाह-सा अनुभव होता है, तो वह पुलकित व व्याकुल हो कर स्वामी जी को प्रश्नों से परिपूर्ण एवं पथ-प्रदर्शनार्थ निवेदन-युक्त पत्र लिखता है। दूसरा व्यक्ति किसी विषय-विशेष का अध्ययन करता है, शंकाओं का समाधान चाहता है तथा ज्ञान-प्राप्ति हेतु याचना करता है। तीसरा व्यक्ति भी जिसके सामने जीवन-पथ पर दो मार्ग हैं-वह किस मार्ग को अपनाये, इसके लिए समाधान चाहता है।

इनके अतिरिक्त ऐसे भी लोग हैं, जो व्यथाओं व चिन्ताओं के अगाध सागर में गोते खा रहे होते हैं। वे साहस, शान्ति तथा उत्साह व प्रेरणा के लिए स्वामी जी के कर कमलों से लिखित सन्देश के लिए आकुल होते हैं। प्रधानतः इस प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में उनका दैनिक जीवन व्यस्त रहता है।

व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कर्तव्य-पूर्ति हेतु भी स्वामी जी पर उत्तरदायित्व रहते हैं। रोग-ग्रस्त बच्चों के माता-पिता, निर्दयी विधाता द्वारा असमय ही मृत्यु को प्रा बच्चों के माता-पिता, शोकाकुल विधुर, कातर विधवा, भाग्य-चक्र में फंसे ऐसे उद्योगपति जो समृद्ध एवं सम्पन्न थे, अब कंगाल हो गये हैं, ऐसे विद्यार्थी जिनकी प्रगति को एकाएक आपात पहुंचा है-ऐसे व्यक्ति स्वामी जी के पास सान्त्वना, शान्ति तथा प्रेरणा के लिए दौड़े चले आते हैं। इन सबका एक ही आग्रह होता है कि स्वामी जी उनकी व्यथा को एकचित्त हो कर सुन लें तथा अपनी मृदु वाणी से उनको सान्त्वना दें।

स्वामी जी भी उनकी दुःख-भरी गाथा सुन कर ऐसे व्याकुल हो जाते हैं मानो उन पर ही बीती हो अथवा बीत रही हो। उनका हृदय द्रवित हो उठता है। जब सहानुभूति दिखाते हुए उनके दुःख का बोझ स्वामी जी स्वयं वहन करने का आश्वासन देते हैं, तब ये लोग ऐसा अनुभव करते हैं मानो उनके कष्ट का सारा बोझ उतर गया है और उनके शरीर में शान्ति तथा नव-शक्ति का संचार हो रहा है।

असफल विद्यार्थियों के साथ वार्तालाप करने में स्वामी जी बड़ा उत्साह दिखाते और उन्हें अपनी सुदृढ़ आशावादिता से प्रोत्साहित करते हैं। शोक सन्तप्त बच्चे को वे कोमल-चित पिता की तरह मधुर शब्दों में सान्त्वना देते हैं। काल-चक्र की गति बता कर मृत्यु की अनिवार्यता स्पष्ट करते हुए उनको ऐसे अन्य कई दुःखी लोगों का उदाहरण देते हैं। ऐसे लोगों का दृष्टान्त देते हैं जिन्होंने इसी तरह की परिस्थिति में अपने दुःखों को मूक रह कर सहन किया तथा ऐसी विपदा की स्थिति में भगवदिच्छा पर निर्भर रहे। स्वामी जी उनको भी ऐसे ही साहसी दृष्टान्तों का अनुगमन करने का आग्रह करते हैं।

ऐसे निराश और दुःखी व्यापारी लोग जिनको बड़ी हानि उठानी पड़ी, उनको स्वामी जी धन की व्यर्थता तथा त्याग-वैराग्य के विषय में इस प्रकार समझाते कि वे भी अपने घाटे को भूल कर अपनी जड़-बुद्धि को कोसने लगते। इस प्रकार का क्रम अनवरत रूप से चलता। इस संसार में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग तथा द्वेष की ज्वाला से सन्ता थके-हारे और बोझिल मन वाले लोगों को स्वामी जी दुःखों से छुटकारा दिला कर आध्यात्मिक सम्पदा द्वारा उनके हृदय में शान्ति-विश्रान्ति का साम्राज्य स्थापित कर देते।

ऐसे व्यक्तियों के प्रति स्वामी जी का व्यवहार अति ही मृदुल होता। देखने का सुनने में विस्मय तो होता है कि किस प्रकार वे दुःखी लोगों की हर सुख-सुविधा का स्वयं ध्यान रखते। अपने ही कर कमलों से न केवल उनको खाना परोसते, बल्कि अपने सामने बैठा कर खिलाते। इसका परिणाम यह होता कि वे लोग निराशा के अन्धकार से निकल कर आशा के प्रकाश में विचरण करने लगते। मन भी उनका स्थिा तथा शान्त हो जाता। ऐसे व्यक्तिगत व्यथा से पीड़ित कई भक्तों एवं दर्शनार्थियों के लिए वे सच्चे माता-पिता की तरह ममता तथा वात्सल्य उँडेलते।

अनेक प्रवृत्तियों के मध्य थकान-रहित जीवन में अपने समस्त साधकों का- चाहे वे गृहस्थी होते अथवा वैरागी सबका -हित-चिन्तन उनकी दिनचर्या का सबसे औत्सुक्यपूर्ण अंग होता है। विशेष रूप से वैरागी साधकों के लिए तो वे सर्वस्व हैं। वे ही उनके एकमात्र पथ-प्रदर्शक, मित्र और गुरु हैं; क्योंकि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय में पथ-प्रदर्शन के लिए वे मात्र स्वामी जी पर निर्भर रहते हैं। दिन-रात स्वामी जी अपने साधकों की न केवल लौकिक, बल्कि पारलौकिक प्रगति के विषय में भी सोचते रहते हैं।

समाज-सुधारक तथा आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-कार्यों में उनको इतना अधिक व्यस्त रहना पड़ता है कि कई बार वे धीरज खो कर खीझ उठते हैं कि अपने ऐसे साधकों-जिन्होंने अपने निर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया था-की ओर इतना ध्यान नहीं दे पाते हैं जितना कि वे चाहते हैं।

दिव्य जीवन संघ के छोटे-से कार्यालय में कार्य-भार एवं कार्य-व्यस्तता के बीच में भी कभी-कभी वे अपने प्रिय साधकों से प्रभावपूर्ण शैली में आग्रह करते कि वे अपने हित-चिन्तन एवं निजत्व को सर्वथा भूल कर मानवता की सेवा जैसे उच्चादशों की प्राप्ति में पूर्णतया लगे रहें। पुलकित हो कर स्वामी जी निष्काम सेवा को सर्वोत्तम योग, बड़े-से-बड़ा यज्ञ तथा भगवद्-आराधना बता कर उसकी महत्ता बताते ।

ऐसे साधक कई बार निराश हो कर सोचते कि मानव-समस्याओं तथा उनके कष्टों का अन्त ही नहीं-भला वे निरीह और असमर्थ जीव विश्व-कल्याण और मानवता की सेवा जैसे उच्च आदर्शों की पूर्ति कैसे कर सकते हैं? यह तो दिव्य आत्माओं का ही काम है।

उन्हें ऐसा निराश देख कर स्वामी जी उनके हतोत्साहित हृदयों को निश्चय सहित आश्वासन देते कि विश्व-कल्याण अथवा मानवता की सेवा जैसे आदर्श की पूर्ति में बिताया गया जीवन कभी असफल नहीं होता। उत्साह का संचार करते हुए वे कहते- आत्म-साक्षात्कार होता है अथवा नहीं, इसकी चिन्ता मत करो। नैतिक उत्थान के लिए मास्व-सेवा में हर सम्भव प्रयास से जुट जायें। नर में नारायण के दर्शन करो। जनता को जनार्दन मानो।

''यदि आप ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास रखते हैं, तो सब जीवों में उनके दर्शन क्यों नहीं करते ? अपने इस विश्वास को कार्यान्वित करने में क्यों हिचकते हैं? ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि उस भगवान् के दर्शन बन्द आँखों अथवा ताले में बन्द इन्दिर के भीतर ही हो सकते हैं। प्रत्येक में उसकी सत्ता को विद्यमान मानो। सर्वत्र और समस्त में उनके दर्शन करके सेवा करो। फिर वे स्वयं आपके हृदय-मन्दिर में प्रत्यक्ष हो कर दर्शन देंगे।

"जब तक हृदय से मल का नाश नहीं होगा, पवित्रता नहीं आयेगी और पवित्रता के बिना आध्यात्मिक अनुभव कैसे होगा? जब तक अपनी प्रकृति को पूर्ण नहीं बनायेंगे, तब तक सत्य की अनुभूति कैसे होगी जो परिपूर्णतम का सार-तत्त्व है। अहंकार, क्रोध, लोभ, द्वेष आदि तथा छल-कपट का समूल नाश निष्काम सेवा द्वारा करें।

"यदि आप दश मनुष्यों की थोड़ी भी सेवा कर पाते हैं, यदि आप एक भी बुराई मिटा कर एक ही गुण अर्जित कर लेते हैं, तो निश्चित समझ लीजिए कि आपका जीवन व्यर्थ नहीं हुआ।

लाख में से दश व्यक्ति भी ऐसा सुअवसर उपलब्ध नहीं कर पाते, क्या हुआ जो समाधि और साक्षात्कार का अनुभव न मिला?"

इससे आगे भी वे कहते-"सदा प्रसन्न-चित्त रहिए। तन-मन लगा कर यह काम कीजिए। निश्चित रूप से आप सौभाग्यशाली और सुखी बनेंगे। न तो अपने भाग्य से असन्तुष्ट रहिए और न उत्थान के लिए हतोत्साहित होइए। मेरी शिक्षाओं को क्रियान्वित करिए। आपके आध्यात्मिक उत्थान की क्या मुझे चिन्ता नहीं है? अच्छा होता, आप जान पाते कि दिन-रात, प्रत्येक क्षण आपके हित के चिन्तन में मेरा हृदय कितना व्याकुल रहता है!"

एक दिन स्वामी जी ने मुझसे अपने मन की बात इस तरह कही - "खेद की बात है कि मेरे अपने शिक्षार्थी साधक कई बार मेरी बातों का उपयुक्त अर्थ नहीं समझ पाते, जब कि मैं उन्हें आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि वे अपना जीवन निष्काम सेवा हेतु अर्पण कर दें। यदि मैं कोई अन्य कार्य उन्हें सौंपता हूँ, तो उसका यह अर्थ नहीं कि वे साधना की अवहेलना करें। प्रतिदिन निश्चित समय पर प्रातः और सायं की व्यवस्थित साधना शशेष कार्यों से असंगत नहीं है।

"मेरा यह सब कहने का प्रयोजन यह है कि वे अपने को अकर्ता, अभोक्ता या ईश्वर-अर्पण की भावना से और अपने-आपको निमित्त-मात्र मान कर प्रत्येक कार्य को आध्यात्मिक साधना का रूप दें। इन कार्यों की सम्पन्नता से तो दिन-भर भगवद्- आराधना होती रहेगी। उनके जीवन में नित्य ही विराट्र रूप की पूजा से ज्ञान-ज्योति का प्रकाश विकीर्ण होता जायेगा। शनैः शनैः किन्तु अवश्यमेव उनके जीवन में परिवर्तन आ जायेगा।

"ऐसे कई गृहस्थी हैं जो अपने लौकिक कार्यों के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना को व्यवस्थित ढंग से कर रहे हैं। यदि आप जैसे बुद्धिजीवी तरुण भी मनोवैज्ञानिक तर्क द्वारा अपने मानसिक दृष्टिकोण को बदल कर कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते, तो साधारण जनता से कर्मयोग के सिद्धान्त को समझने की क्या अपेक्षा की जा सकती है?

"साधना क्या है, क्या नहीं है? पूर्व-निर्णीत विलक्षण साधना-क्रम के सिद्धान्त को छोड़ दीजिए। निष्काम और सादर किये गये कर्म साधना ही तो हैं। 'कर्म ही पूजा है' के सिद्धान्त को अपनाने वाले के जीवन में निराशा कभी नहीं आती।"

साथ ही यह भी देखने में आता है कि स्वामी जी से अधिक विचारवान् और शुभ-चिन्तक कोई नहीं है। स्वामी जी जब भी यह जान पाते हैं कि कोई साधक किसी कारण से अशान्त और व्याकुल है, तो वे ऐसे साधक को तुरन्त ही कार्य करने को मना कर देते हैं और कुछ दिन पूर्ण स्वतन्त्रता से बिताने व मनोरंजन के लिए किसी भी साधन को अपनाने का आग्रह करते हैं।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। किसी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण में शिथिलता और व्यग्रता का अनुभव करने लगा। उन्होंने भी मेरी इस स्थिति को एक ही दृष्टि में ताड़ लिया। मुझे सब कार्य बन्द करने को कहा और अपनी इच्छानुसार समय व्यतीत करने का निर्देश दिया। काम करने को तुरन्त मना करते हुए अपनी शारीरिक अनुकूलता के अनुसार दिनचर्या बनाने की मन्त्रणा दी।

मैं वनों में विचरण करता। पर्वतों के एकान्त स्थल में आनन्द का पान करता। विक्षिप्त विचार भी मन में उन्मुक्त रूप से विचरण व क्रीड़ा करते। इस प्रकार मधुर एकान्त और प्रार्थना से मेरी खोयी हुई शक्ति पूर्णतया शरीर में पुनः मंचरित होने लगी।

ऐसा देखा गया कि स्वामी जी को अपने परिवार के जिज्ञासुओं तथा साधकों व पंचारियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की अत्यन्त चिन्ता रहती है। इसके अतिशीत मुद्रा यूगोस्लाविया और लटेविया में भी कई ऐसे जिज्ञासु हैं जो अपने को बाबा मान कर स्वामी जी को पून्य मानते हैं। उन्होंने पारमार्थिक दिग्दर्शन के लिए ज्ञानी डोर स्वामी जी को सौंप दी है। उनकी समस्याओं व शंका-समाधान हेतु भी स्वामी जी को बहुधा समय निकालना पड़ता है।

युद्ध और भव से आक्रान्त आज की मानवता की शान्ति और सच्चे सुख की काम बुझाने वाले आनन्द-कुटीर के इस दयालु, कृपालु सन्त को ऋषिकेश के स्थानीय एवं आस-पास के लोग अपने पूजनीय आत्म जनों से भी अधिक मानते हैं। भारतीयों के ही नहीं, बल्कि विदेशियों के लिए भी स्वामी जी ज्ञानदाता हैं और संघर्ष से पीड़ितों के लिए प्रत्येक क्षण प्रत्येक आवश्यकता के पूरक हैं।

वे साधारण व्यक्ति को भी अपने कोमल वचनों से इस प्रकार प्रेरणा और शिक्षा देते हैं कि वह इनके वचनों को आज्ञा मान कर शिरोधार्य करता है और अपने दैनिक जीवन में रुचि लेने लगता है, मानो उसका दृष्टिकोण बदल गया हो और उसे आध्यात्मिक नव-जीवन प्राप्त हुआ हो।

पत्रिकाओं और पुस्तकों में निषेध-रूप से अंकित वचन भी प्रेरक बन जाते हैं जो संसार-भर को नव-जीवन प्रदान करते हैं। उनका उपदेशामृत जीवन-रूपी वृक्ष की लताओं को शीतलता तथा हरियाली प्रदान करता हुआ शरणागत जन-समूह को अपनी छाया तले आश्रय तथा विश्रान्ति देता है।

धर्म तथा परमार्थ-पथ के वे पथिक, जिन्होंने साधना को ही अपने जीवन का आधार बना रखा है, उनके लिए स्वामी जी प्रज्ञा और ज्ञान के अखण्ड स्रोत हैं। उनके निजी अनुभव और अलौकिक ज्ञान-सरिता पुस्तकों के रूप में वह निकली है। इन पुस्तकों के माध्यम से स्वामी जी विश्व-भर के साधकों को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का सन्देश देते रहते हैं।

जिज्ञासु विशेष के लिए तो वे एक मूक शिक्षक की भाँति हैं, जो उन्हें अपनी पुस्तकों के माध्यम से प्रगति-पथ पर अग्रसर करता रहता है। पुस्तकों में लिखे प्रेरणादायी शब्दों द्वारा अप्रकट रूप से वे सच्चे साथी की तरह पथ-प्रदर्शन करते हैं।

साधना के इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चल रहे साधकों को माया के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप को, मन की रहस्यमयी गुत्थियों को सुलझाने; आध्यात्मिक पथ से च्युत करने वाले अनेक कारणों व उनसे बचने के साधनों द्वारा स्वामी जी सदैव अपनी शिक्षाओं, निर्देशों तथा आदेशों के रूप में उनके अन्धकारमय मार्ग को अपने ज्ञान-सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित करते रहते हैं। साधना में आने वाले विघ्नों तथा बाधाओं को समझा कर उन पर विजय प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकृति और सामर्थ्य वाले साधकों को विभिन्न समाधान एवं साधन बताते हैं।

स्वामी जी इस प्रकार की बाधाओं को पार करने के लिए भक्तियोग, ज्ञानयोग, मनोवैज्ञानिक, नकारात्मक, सकारात्मक उपेक्षा एवं अवहेलना तथा प्रार्थना आदि विभिन्न ढंग बताते हैं। स्वामी जी की यह दिव्य ज्ञान-गंगा, जो उनकी जीवन-रूपी धारा में प्रवाहित हो रही है, साधक के लिए जीवन का आधारभूत स्रोत सिद्ध हुई है।

वे प्राणिमात्र का जीवन अपनी ज्ञान-धारा से सींच रहे हैं। साधकों को कीर्तन-कक्षा व वर्ष-भर में दो बार साधना-सप्ताह द्वारा व्यक्तिगत सुझाव दे कर स्वामी जी साधकों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ बनाये रखते हैं, उनमें प्रेरणा द्वारा प्राण फूंकते रहते हैं। अपने ओजस्वी भाषण द्वारा स्वामी जी साधकों में जीवन-शक्ति का संचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर वे अपने सान्निध्य से उनकी भावना को प्रबल बनाये रखते हैं।

इस प्रकार स्वामी जी जगत् के लिए दो वरदानों के मूर्तिमन्त स्वरूप सिद्ध हुए- एक तो भव-रोग एवं भय-ज्वर से पीड़ित जनता को उत्साहदायक आश्रय-स्थल की उपलब्धि और दूसरा संसार-भर के साधक-वर्ग को जीवन-प्रदायिनी संजीवनी प्राप्त हुई।

त्रयोदश अध्याय

स्वामी जी की दृष्टि में जगत्

"मूलतः जगत् जैसा दृष्टिगोचर होता है, वैसा ही रहेगा; किन्तु जगत् के प्रति ज्ञानी सन्त का दृष्टिकोण भिन्न होगा।" **-शिव**

वेदान्ती की यह एक सर्वप्रिय संकल्पना और हितकर मान्यता है कि बाह्य दृष्टिगोचर जगत् वास्तव में स्व-रचित भ्रम मात्र है और इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जगत् नाम की कोई वस्तु

है ही नहीं। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि इसके अस्तित्व की पूर्णतया उपेक्षा की जाये। यदि ऐसा भास होने लगे कि जगत् भी वेदान्ती के कथन की उपेक्षा करता है, तब उस बेचारे जगत् का रक्षक भगवान् ही है। वेदान्ती के कथन की उपेक्षा करने पर वह तत्काल ही क्षुब्ध हो संघर्ष के लिए उद्यत हो जायेगा।

तात्पर्य यह है कि आज का वेदान्ती चिरकाल से पीड़ित संसार से यह कहेगा- "देखो, मैं तुम्हें मनुष्य द्वारा प्रयुक्त न किये गये सब प्रकार के अपशब्द कहूँगा और तुम्हारे अस्तित्व के मौलिक अधिकार को भी नकार दूँगा। मैं तो ऐसा कहूँगा कि तुम उसके प्रतिकार में सब मनोहर एवं श्रेष्ठ वस्तुएँ मुझे दे दो।

व्यक्ति को जो प्राप्ति होती है, वह उसे बिना आभार प्रकट किये ही ग्रहण कर लेता है। सत्य तो यह है कि कौन किसका धन्यवाद करे? वास्तव में जब किसी का अस्तित्व ही नहीं, तो धन्यवाद कैसा? न कोई कर्ता है, न ही कोई कर्म, न ही सहायता, न ही आभार-प्रदर्शन। क्या बढ़िया सिद्धान्त है यह! अधिकार सब; किन्तु आभार-प्रदर्शन नगण्य! यह तो आनन्दोत्सव में भाग्य-पत्रक (लॉटरी) हो गया जहाँ लेना-ही-लेना है, देना कुछ नहीं। जहाँ 'मैं' के अतिरिक्त जब कोई दूसरा नहीं है ही नहीं, तब प्रत्युत्तर का प्रश्न ही नहीं उठता।

जगत् के प्रति स्वामी जी के मनोरम दृष्टिकोण को हृदयंगम करने के लिए उपर्युक्त धारणा को बिलकुल ही उलट देना होगा। यदि 'केवलोऽहम्', 'केवलोऽहम्' की उच्च घोषणा से ही संसार की उपेक्षा की जाती है, तो स्वामी जी अपने-आपकी उपेक्षा करते हुए जगत् को नित्य जीवन्त और भव्य, श्रेष्ठतम सत्य के रूप में मानेंगे। प्रत्यक्ष विश्व-रूपी दिव्यता की वेदी के समक्ष अपने अस्तित्व को पूर्णतया समर्पित कर उसमें विलीन कर देना ही उनकी साधना है। सदैव उपलब्ध शास्त्रोक्त दो सुलभ वाक्यों से वा संसार के अस्तित्व को मिटा देते प्रतीत नहीं होते।

हाँ, यह सत्य है कि स्वामी जी अद्वैत वेदान्ती हैं। निश्चय ही वे आदि गुरु शंकराचार्य जी के 'केवल अद्वैत-दर्शन' के अनुयायी हैं। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' सत्य है। सब-कुछ होते हुए भी निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि वे शुष्क मायावादी या मिथ्यावादी नहीं हैं।

निस्सन्देह रूप से सत्य के समक्ष गोचर जगत् मिथ्या है; किन्तु जहाँ तक वह १ पर शरीर धारण करके रहता है, चीनी और नमक का सेवन करता है, सुख और दुःख भोगता है, वह अपनी निष्कामता को न्याय-युक्त कह सकता है। क्योंकि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि साक्षात्कार-प्राप्ति पर किसी के शिर पर रात-ही-रात में उसके सींग नहीं उग आते, न ही सौर-मण्डल तथा अन्य मण्डल तारा-मण्डल में लय हो कर दृष्टि से ओझल हो जाते हैं और न भौगोलिक जगत् में तत्काल ही विद्युत्-मण्डल के कारण परिवर्तन होता है।

स्वामी जी ने एक बार लिखा था- "जगत् के अभाव और नाश से यह तात्पर्य नहीं कि पर्वतों, झीलों और वृक्षों आदि का विनाश हो जाता है। तृण-तृण ही रहेगा। बिच्छू-काँटा पूर्ववत् काटेगा ही। डाउन एक्सप्रेस पूर्ववत् साढ़े आठ बजे आयेगी। रेलवे व राशन कार्ड के दर पूर्ववत् सुख-दुःख का कारण बनते रहेंगे।"

फिर जगत् में क्या परिवर्तन हो जाते हैं? ज्ञात करने की बात तो यह है कि द्रष्टा को क्या हो जाता है; क्योंकि परिवर्तन तो केवल द्रष्टा में ही होता है।

भौतिक जगत् का स्वरूप तो पूर्ववत् रहता है, किन्तु ज्ञानोदय होने पर जगत् के प्रति उसका वैसा दृष्टिकोण नहीं रहता जैसा पहले था। उसे प्रत्येक वस्तु दिव्य प्रकाश से प्रकाशित प्रतीत होती है जो सामान्य-जन को दृष्टिगोचर नहीं थी। सौभाग्यशाली आत्मा के लिए एक नव-आध्यात्मिक दर्शन कृपा का वरदान-स्वरूप है और मानसिक तथा ऐन्द्रिक भास के स्थान पर प्रत्यक्ष अन्तर्ज्ञान की अनुभूति स्थानापन्न हो जाती है।

जगत् को मौखिक रूप से नकारने पर हम कहीं के न रहेंगे। परन्तु हमारा प्रामाणिक प्रयास यह होना चाहिए कि हम विश्वातीत, परम शुद्ध दृष्टि की प्राप्ति करें। यह गोचर जगत् नित्य ज्योति-पुंज का प्रत्यक्ष आकार है और परम सत्ता स्वयं में परिपूर्ण सत्य है जो अगम्य शक्ति के पारदर्शक रूप द्वारा चमक रहा है और इन्द्रियातीत माया के स्वरूप के प्रति पूर्णतया आनन्दपूर्वक जागरूक है। प्रचलित महावाक्यों और शास्त्रोक्तियों के आधार पर विश्व के अस्तित्व को शून्यता में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

अतः ऐसा सोचने की अपेक्षा कि जो कुछ प्रत्यक्ष गोचर जगत् है, उसका अस्तित्व है ही नहीं, स्वामी जी ने निरन्तर ऐसा भास करने का प्रयास किया कि जो दृष्टिगोचर है, वह स्वयं वही है। उनकी दृष्टि में सब विराट्-स्वरूप है जो प्रत्यक्ष अभिव्यक्त है। जैसा कि एक बवेरी के रहस्यवादी ने कहा है कि वह परम सत्ता की प्रत्यक्ष हस्ताक्षरित मुद्रा है। विश्व में दिव्यता का दर्शन करने से व्यक्ति का स्व- अस्तित्व भी पूर्णरूपेण उस परम सत्ता में विचरण करने लगता है। तब निष्प्रयोजनीय स्वाभाविक क्रिया-कलापों से जी चुराने व संकुचित होने की आवश्यकता नहीं रह जाती। नित्य सत्ता से किसी भी वस्तु की पृथकता का भास होना ही समस्त दुःख एवं भव के बन्धनों का कारण है। यदि सर्वत्र उस परम सत्य के ही दर्शन करें, तो आप जीवन्मुक्त हैं।

जब व्यक्ति उपर्युक्त दृष्टि से जगत् को देखता है, तो उसके आत्मिक अनुभव निश्चय ही विचारों और क्रियाओं में प्रतिबिम्बित होते हैं और वे इंगित करते हैं कि उसमें दिव्यता की विद्यमानता के चेतना-पुष्प विकसित हैं।

स्वामी जी का जीवन सबमें व्याप्त प्रत्यक्ष विराट्-स्वरूप की अनवरत (तैलधारावत्) पूजा है। सदैव सहज विनम्रता, सब प्राणियों के प्रति गहरा आदर-भाव, प्रत्येक व्यक्ति में पूर्ण एवं सहज विश्वास, किसी में अवगुण देखने की वृत्ति का पूर्ण अभाव निश्चय ही मानवता में दिव्यता के दर्शन करने के कारण हैं। यथार्थ में मैंने यह देखा है कि वह किसी से कटुवचन कह ही नहीं सकते। किसी ने कभी उन्हें क्रोधावेश में नहीं देखा, यद्यपि क्रोधावेश को विस्फोटित करने वाली कई घटनाएँ घटित हुईं।

इसी प्रकार अतिशय स्तुति या तीव्र कटु आलोचना से अप्रभावित उनके मुखारविन्द पर सदैव की भाँति सहज मधुर मुस्कान थिरकती रहती है। कई बार देखा गया कि एक ही समय में वे भिन्न प्रकार के व्यक्तियों से एक-सा व्यवहार करते-भले ही वह पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या वृद्ध, पर्वतीय हो या दिल्ली का शिष्ट जन हो। यहाँ तक कि एक आकस्मिक दर्शक यह समझता है कि स्वामी जी शून्य चित्त से सबसे बातचीत कर रहे हैं। कभी तो यह भी देखने में आया कि वे अधम व्यक्ति का स्वागत भी एक उच्च कोटि के महात्मा के समान करते। समस्त कीटाणु एवं प्राणियों के

प्रति उनकी विलक्षण कोमल भावना है। मच्छर से ले कर उच्च कोटि के शिक्षित एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति के प्रति उनकी समदृष्टि है।

इन सबके परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार से अपने बारों ओर दूसरों की सेवा सदैव सत्बद्ध रहते हैं, भले ही दूसरे चाहें या न चाहें। वे प्रत्यक्ष जगत् के के असख्यासंख्य रूपों की पूजा करते हैं। उनको समुचित रूप से समझने के लिए क अनन्त प्रकार के कार्य-कलापों में उनकी व्यस्तता के दर्शन करने होंगे। उनकी व्यस्तता को देख कर कई रूढ़िवादी संन्यासी ज्ञान की अपेक्षा कर्म को अन्यायपूर प्रधानता एवं महत्ता देने का आरोप लगाते हैं।

किन्तु आश्चर्य तो यह है कि दोषारोपण करने वाले उनका विशिष्ट लक्ष्य देखन चूक गये। किसी की उपेक्षा करना और किसी को महत्ता देने का तो यहाँ प्रश्न हो जहाँ उठता, अपितु यह एक सहज अनुभव है कि समभाव व्यवहार करना उनके स्वभाव स्थायी एवं अविच्छिन्न अंग बन चुका है। कहना तो यह चाहिए कि आधिक आनन्द-सागर में अवगाहन करने वाले व्यक्ति का यह पूर्ण व हार्दिक उन्मुक्त विकास है। अपनी आनन्द-युक्त हँसी को दर्शाये बिना वह रह नहीं सकता। वायलिन पर उब निष्णात संगीतज्ञ की उँगलियाँ कुशलता से चलेंगी, तो मधुर स्वर कैसे ध्वनित नहीं होगा? वंशी में तान देने पर मधुर स्वर कैसे नहीं निकलेगा? यह कहना निरर्थक एवं असंगत होगा कि मुरली से मधुर स्वर क्यों ध्वनित होते हैं? गुलाब सुवास क्यों विकीणं करता है? अगरबत्ती से मनोमुग्धकारी सुगन्धि क्यों फैलती है?

सच्चा वेदान्ती किसी को भी संकीर्ण एवं स्व-केन्द्रित नहीं बनाता। यह तो असीम चेतना का विस्तार है, संकीर्णता का नहीं। स्वामी जी इसकी सशक्त घोषणा करते हैं कि अद्वैत-भाव की परीक्षा स्वार्थ के लोप और विश्व-प्रेम के उत्थान में है।

समग्र सृष्टि को आत्मवत् मानना और मानव-मानव में भेद-भावना को छिन्न-विच्छिन्न करना ही बौद्धिक वेदान्त का प्रतिफल है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की भावना निर्मित होने के बाद भेद-भाव तथा ऊँच-नीच की भावना का तो अस्तित्व ही नहीं रहता।

स्वामी जी का आह्वान मानव को सर्वस्पर्शी विश्व-प्रेम का विकास करने के लिए है। वे बलपूर्वक कहते हैं-"सबमें एकत्व का अनुभव करो। पार्थक्य मृत्यु है। एकता जीवन है। सृष्टि का प्रत्येक जीवन्त प्राणी भगवान् का सन्देश ले कर आता है कि वह जीवन का उद्गम है, वही परम सत्ता है और उसमें सभी प्राणी निवास व विचरण करते हैं। प्रकृति में असीम सत्ता के दर्शन करो। सर्वत्र अमरत्व के दर्शन करो।"

भव्य! भव्य है यह सन्देश! और किस सत्य की मानव को आवश्यकता है?

चतुर्दश अध्याय

विश्व-मंच पर अभिनय

वेद तथा वर्णाश्रम धर्म वाले इस देश के सामाजिक और धार्मिक इतिहास में प्राचीन काल से एक विषय की पुनरावृत्ति होती चली आ रही है। समय-समय पर प्राचीन ऋषियों के अनुभव और धर्म व आध्यात्मिकता के जीवन से सम्बन्धित नित्य सत्य (जिनका विवेचन संस्कृत भाषा के साहित्य में है) कुछ उच्च रूढ़िवादी वर्ग के अल्पसख्यक व्यक्तियों तक ही सीमित रहते हैं।

संस्कृत में लिखे होने के कारण शास्त्रों का अध्ययन कुछेक उच्च वर्ग के लोगों का एकाधिकार बन गया है। अतः अशिक्षित तथा अज्ञानी लोगों को शास्त्रों के अध्ययन से बचित रहना पड़ता है। संस्कृत भाषा-भाषी लोग बहुत कम हैं, परिणाम-स्वरूप बहुसख्यक वर्ग विचार-विभिन्नता आने से शनैः शनैः मिथ्या धर्मावलम्बी बन जाता है।

समाज के अधिकांश वर्ग जीविकोपार्जन की समस्या हेतु दिन-रात जुटे रहते हैं। उनके पास शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन-मनन के लिए, संस्कृत सीखने के लिए न तो सामर्थ्य है, न शक्ति और न ही इतना समय है कि ज्ञानोपार्जन हेतु शास्त्र - मर्मज्ञों के चरणों में घण्टों तक बैठे रह सकें। फल-स्वरूप उनका अपने शास्त्रों से कुछ सम्पर्क नहीं रहता, जिसका लाभ वे थोड़े से शास्त्रानुसरण करने वाले धर्मावलम्बी उठाते हैं जो अज्ञानी जनता को ईश्वरीय ज्ञान, नैतिकता तथा मरणोपरान्त जीवन का ज्ञान देने में अपना एकमात्र प्रभुत्व समझते हैं।

ऐसे समय में एक ऐसे महानुभाव का आविर्भाव होता है जो उच्च आदर्शों से प्रेरित हो कर अपने और जनता के बीच की खाई पर स्थिति-अनुकूल सेतुबन्ध का कार्य आरम्भ कर देता है। समय की माँग और जनता की रुचि के अनुसार धर्म के बहुमूल्य रत्नों को वह जन-भाषा के माध्यम से प्रकाश में लाता है। शिवं-सुन्दरं का सन्देश जनता के सामने इस प्रकार उपस्थित करता है कि लोग अपने धर्म, अपनी संस्कृति के वास्तविक रूप को पुनः सुगमता से समझने लगते हैं, जिससे उनके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। यह उत्तेजक सन्देश प्रत्युत्तर में इतना प्रभावशाली होता है कि समाज में एक जाग्रति आ जाती है।

ऐसे कुछेक दूरदर्शी व्यक्ति-चाहे वे विद्वानों के हास्य तथा नास्तिक लोगों के व्यंग का भले ही पात्र बनें, तो भी-निष्काम भाव से जनता की सेवा करते रहते हैं। लोगों के ज्ञानदेव ने अद्वितीय पुस्तक 'ज्ञानेश्वरी गीता' तथा अन्य रचनाएँ महाराष्ट्र के ल निमित्त लिखीं। इसी प्रकार एनी बेसेन्ट ने अँगरेजी भाषा-प्रेमी दक्षिण प्रदेशीय युवा लोगों के लिए 'गीता' लिखी। एकनाथ महाराज ने महान् ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' उन लोगों के लिए लिखा जिनको संस्कृत भाषा का ज्ञान न था।

आन्ध्र प्रदेश के वीर-हृदय पोतन्ना, उत्तर प्रदेश के सन्त तुलसीदास जी तमिलनाडु के कम्बर की प्रतिभा इस विषय में संस्मरणीय है। इन्होंने रामायण के रमणीक प्रसंगों को जनता के हृदय तक पहुँचाया। इनकी रचनाओं ने जन-वाणी का रूप धारण कर पूरे देश को लाभान्वित किया। लक्ष्मीश कवि और मोरोपन्त भी पवित्र महाभारत को सुन्दरतम काव्य का रूप दे कर कन्नड़ और मराठी भाषा-भाषी जनता की सेवा में समा गये हैं। इसी प्रकार निश्चलदास का वेदान्त के उच्च विचारों से ओत-प्रोत 'विचार-सागर' सबके लिए उपलब्ध है।

वर्तमान समय की स्थिति नियति की अद्भुतता के अनोखेपन से युक्त थी। निस्सन्देह इतिहास की पुनरावृत्ति होती रहती है, पर भगवान् भी कभी-कभी विलक्षण हास्य-विनोद करते हैं। इस बार भी ऐसा ही खिलवाड़ हुआ। इस समय पूर्व-इतिहास से अन्तर इतना था कि पहले तो

अशिक्षित जन-साधारण ही अज्ञानतावश ईश्वर व धर्म के अध्ययन से वंचित रहता था, पर इस बार वही रूढ़िवादी लोग जो शास्त्रों के रक्षक थे, पाश्चात्य रंग में रँगी नयी विचारधारा और नये आदर्शों के प्रभाव में आ गये थे।

संस्कृत भाषा का तो एक ही रात्रि में बहिष्कार कर दिया गया था। धर्म-परम्परा के प्रति श्रद्धा तथा पुराने समय से प्रतिष्ठित रीति-रिवाजों को लोकाचार के विरुद्ध माना गया, जिसके लिए उनको प्रायश्चित्त करना चाहिए था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा आयोजित घृणास्पद शिक्षा-नीति का शिकार प्रथमतः बुद्धिजीवी हुए। घोषित व प्रकट स्वीकृत नीति के अनुसार अँगरेजी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया गया।

लार्ड मैकाले के १८३५ के ऐक्ट के अनुसार अँगरेजी को विधिवत् शिक्षा का माध्यम बना दिया गया। वे ही लोग जो संस्कृत-प्रेमी थे, अब अँगरेजी के भक्त बन गये और कम्पनी को योग्य लेखक, व्याख्याकार तथा सहायक देने लगे। शासनानुसार बाद में ऐसे ही लोगों की लेखा-जोखा विभाग, न्यायालयों, कार्यालयों व राजस्व विभाग में क्लर्कों के रूप में नियुक्ति होने लगी।

फल-स्वरूप उन्हीं कतिपय व्यक्तियों ने, जिन्होंने सस्कृत को शास्त्राध्ययन से जीवित बनाया हुआ था, अब सस्कृताध्ययन करना बिलकुल त्याग दिया। शास्त्रों को भूल गये, परम्पराओं से सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया और पाश्चात्य रीति-रिवाजों को अपना लिया। सम्पदा के रक्षकों ने ही जब सम्पत्ति की रक्षा न की, तो और कौन करता? इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? इसकी कल्पना की जा सकती है।

अतः इस बार शास्त्र-विद्या तथा आध्यात्मिकता को पुनर्जीवन देने का कार्य ऐसे व्यक्ति को सौंपा गया जो स्वयं इसी आधुनिक श्रेणी से सम्बन्धित था। भाग्य की विडम्बना तो यह रही कि जिस भाषा के कारण संस्कृत एवं संस्कृति का पतन हुआ, उस पतन का प्रतिकार करने के लिए वही अँगरेजी इस व्यक्ति के विचार-प्रसार का माध्यम बनी।

यह ऐतिहासिक रोग महाराष्ट्र, आन्ध्र और तमिलनाडु तक ही सीमित न रह कर सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गया था। शासकीय भाषा अँगरेजी का उपद्रव सब जगह व्याप्त था। यह विभिन्न लिपियों तथा विभिन्न भाषा-भाषी भारत जैसे देश में जटिल समस्या बन गयी। यदि किसी प्रादेशिक भाषा को माध्यम बनाया जाता, तो सम्भवतया सफलता न प्राप्त होती। जैसे सामान्य ग्रामवासी जूते से कटे घाव को चमड़ा जला कर लगाने से ठीक करता है या जैसे चिकित्सक रोगी के शरीर में से वैक्सीन का टीका तैयार करता है-इस रोगी की भी वैसी ही औषधि अपनायी गयी। अतः उसी तरह भाग्य ने भारतीय ज्ञान को पुनर्जन्म देने वाले धर्मदूत के रूप में एक ऐसे व्यक्ति को ही चुना जो स्वयं अँगरेजी में शिक्षित तथा कुछ सीमा तक अँगरेजियत के रंग में रंग चुका था। जो अँगरेजी रोग का कारण बनी, वही सांस्कृतिक पुनरुत्थान-रूपी उपचार का साधन भी सिद्ध हुई। धर्म और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार स्वामी जी ने अँगरेजी में ही शुरू किया, क्योंकि अँगरेजी अब तक दूसरी मातृ-भाषा का रूप धारण कर चुकी थी।

दिव्य जीवन के सिद्धान्तों, जिनकी अब तक बहुत उपेक्षा हो चुकी थी तथा इहलोक में रह कर अलौकिक अनुभव करने के सन्देशों का स्वामी जी ने सरल अँगरेजी भाषा को माध्यम बना कर देश के कोने-कोने में व्यवस्थित ढंग से प्रसार आरम्भ किया। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के

प्रभाव में आ कर अपने देश की महान्ता को भूल कर जिन महत्त्वपूर्ण उच्चादर्शों के ज्ञान की अवहेलना हो रही थी, उसका स्मरण लोगों को अनवरत रूप से कराते रहे।

संस्कृत के बहिष्कार से स्वदेशी साहित्य पर जो कुठाराघात हुआ, वही मानो पर्याप्त न था। विदेशियों के आगमन से ऐसे विचार और परम्पराओं को मान्यता मिली कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय आध्यात्मिक प्रतिभा के मूल्यों की अवहेलना होने लगी। भारतवासियों का दृष्टिकोण ही व्यावसायिक और धनोपार्जन का हो गया था। रूढ़िवादी परिवार जो विदेशी रोग से अछूते रहे, वे अब भी परम्परानुसार ज्योतिष-गणना, नक्षत्र-विद्या, कर्मकाण्ड आदि द्वारा पुरोहित तथा शास्त्री के रूप में जीवन-निर्वाह करते थे या वे पण्डित गण थे जो शास्त्रार्थ करने व व्याकरण के ज्ञाता थे। अतः आध्यात्मिकता की सर्वत्र दुःखद स्थिति हो गयी थी।

प्रत्येक सम्भव मार्ग से, प्रत्येक विधि से स्वामी जी ने देश भर को आध्यात्मिक ज्ञान-धारा से आप्लावित कर दिया। स्वामी जी ने सहस्रों लोगों को जीवन-प्रदायक तथ्यों ईश्वर, धर्म, नैतिकता व सदाचार तथा आध्यात्मिकता के विस्तृत ज्ञान आदि से परिचित कराया। नित्य सत्य का विषय जो देवनागरी लिपि में आबद्ध था, उसका सुगम अँगरेजी में इस तरह प्रचार किया कि हाईस्कूल का किशोर भी बिना किसी कठिनाई से प्रथम पाठन में ही समझ सकता था।

उपनिषद्, तान्त्रिक विद्या, योग-सूत्र, श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत व गीता और योगवासिष्ठ आदि के ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य स्वामी जी लगभग पिछले १५ वर्ष से कर रहे हैं। उनके ही भरसक प्रयत्नों का फल है कि ब्रह्मचर्य जैसे विषय को देश के विद्यार्थी और तरुण वर्ग के लिए उचित महत्त्व प्राप्त हुआ है। स्वामी जी को अपनी रचनाओं द्वारा गृहस्थियों को आदर्श जीवन-यापन का पाठ पढ़ाने में सफलता मिली। बहुत से गृहस्थी आज भी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

उन्होंने देश-भर के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार है। मानव-जीवन का यही सर्वोच्च उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यावहारिक साधना के विस्तृत ज्ञान का संग्रह कर उनको विभिन्न ढंगों में विभाजित करके जनता के सामने बड़े प्रभावशाली सीधे-सादे परन्तु व्यवस्थित एवं अनुपम ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया।

आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचारक, जनता में जाग्रति लाने वाले अपने इस निधर्धारित कर्तव्यनिष्ठा वाले रूप में स्वामी जी असाम्प्रदायिक, सार्वभौमिक विचारों को विश्व के सब धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का सोत्साह प्रचार एवं प्रसार करने के कारण सर्वप्रसिद्ध हो गये। इस लौकिक व्यवहार को नियन्त्रित तथा मार्ग-दर्शन करने वाली उस अज्ञात शक्ति ने देश के पुनरुद्धार का कार्य मानो इनके ही भाग्य में लिखा था।

उनको इस क्षेत्र में कितनी सफलता मिली, इसका ज्ञान हर द्रष्टा को है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि देश-भर की जनता में जाग्रति आ गयी है जिसने सब धमावलम्बियों को प्रभावित किया है। विशेष रूप से वे मध्यम और उच्च श्रेणी के लोग जो पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी बनते जा रहे थे, उन पर इस अथक प्रचार का अमिट प्रभाव पड़ा। स्वामी जी के इस प्रचार का स्वदेश के धार्मिक और सांस्कृतिक साहित्य एवं परम्परा के यथोचित महत्त्व और मूल्य के रूप में-कल्याणकारी रूप स्पष्ट हो गया।

पूर्वाग्रह की भावनाएँ सदैव दृढ़ रहती हैं। गहरी निष्ठाएँ मिटती नहीं। धर्मान्ध व्यक्तियों को अब भी यह विचार जकड़े हुए है कि शास्त्रीय विद्या की सम्पत्ति जिस-तिस को नहीं बाँटी जानी चाहिए और उस भाषा में तो इसका आदान-प्रदान होना ही नहीं चाहिए जो कि विदेश से आयी है, क्योंकि रूढ़िवादी चिन्तन के अनुसार ये लोग विदेशी वस्तु को अपवित्र मानते हैं।

स्वामी जी ने धर्म और आध्यात्मिकता का प्रचार और प्रसार अँगरेजी में किया, इसकी कटु आलोचना और टीका-टिप्पणी कोई कम नहीं हुई। संन्यासी हो कर अविराम रूप से ऐसे कार्य में रत रहने की प्रवृत्ति से कई लोग सहमत नहीं थे।

इस आलोचना और टीका-टिप्पणी का स्वामी जी पर लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अडिग और अविचल रहे। कारण यही कि स्वामी जी के पास निरुद्देश्य विषय सुनने के लिए न समय था और न रुचि। वे अपने समय और श्रम को व्यर्थ ही नहीं गँवाना चाहते थे। एक प्रेमी विधुर द्वारा संगमरमर से निर्मित भव्य ताजमहल के सौन्दर्य पर मोहित होना मूढ़ता है। ऐसी कटु आलोचना के प्रति अविचलित रहना ही स्वामी जी की स्थिति है।

भारतीय परम्पराओं के प्रति उनकी निष्ठा दृढ़ है; किन्तु साथ ही समय का माँग के अनुसार सुधार करने में वे झिझकते नहीं हैं। जब भी वे देखते हैं कि कोई भी परम्परा अब समय की माँग की पूर्ति नहीं करती और रूढ़ि का रूप धारण करती जा रही है, वे उसी समय अतिरिक्त भावनात्मक बोझ को उठा फेंकते हैं और आवश्यक रूढ़ियों की शल्य-चिकित्सा करने लग जाते हैं। उनका कथन है- "सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को अपनाने में कोई प्रयोजन नहीं है। प्रगति के लिए बौद्धिक उदारता और अनुकूलन-क्षमता की अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान् ने मनुष्य को विकास-मार्ग पर सतत गतिशील करने के लिए बनाया है। यदि आचार-विचार स्वस्थ बनाने के लिए परिवर्तनीय सुधार किया जाता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि आदर्शों और मूल सिद्धान्तों का आमूल परिवर्तन भी आवश्यक हो जाता है।"

वे ऐसा भी कहते हैं-"अपने सिद्धान्तों में सहिष्णु और पक्षपात-हीन बनो, उदार बनो, विशाल हृदयी बनो। क्षुद्र बातों से ऊपर उठो । परम्पराओं, कुरीतियों, छुआछूत, खान-पान, तिलक-छापों जैसी बातों से ऊपर उठो। अन्तर्भूत आधारों व गहराइयों पर ध्यान दो।"

मनुस्मृति स्वयं में बहुत अच्छी है। वर्णाश्रम-धर्म का आदर होना चाहिए और धर्म-शास्त्रों का अनुसरण करना चाहिए, पर साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुएँ तेजी से परिवर्तित होती हैं जो पुराने नियमों की व्याख्या नयी विचारधारा के सन्दर्भ में करवाना चाहती हैं। उदाहरण के लिए संन्यास-धर्म का पालन करने में स्वामी जी लकीर के फकीर नहीं बने और संन्यासी बन्धुओं से इस विषय में उनका मतभेद है।

अब तक यह भ्रम था कि जगत् की दौड़-धूप की अपेक्षा काषाय वस्त्रों की महत्ता बौद्धिक और शारीरिक तपस्या में है। स्वामी जी में इस मिथ्या भ्रम को सहने का धैर्य नहीं है। उनके विचार में संन्यासियों को मानवता का गतिशील सेवक और मार्गदर्शक होना चाहिए। वे संन्यासियों को परामर्श देते हैं कि समाज की अधिकाधिक सेवा हेतु अपनी प्रतिभा को सर्वतोमुखी बनाने का प्रतिदिन प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार उनके विचारानुसार औषधि-ज्ञान, स्वास्थ्य और शरीर-

विज्ञान, पत्रकारिता, प्रवचन और संगीत आदि का ज्ञान रखना संन्यास-धर्म के लिए असंगत एवं हानिकर नहीं है। संन्यासी की प्रतिभा बहुमुखी होनी चाहिए ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्ति उनके आदर्श का अनुकरण कर सकें। निष्काम सेवा हेतु सर्वांगीण विकास ही उसका चरम लक्ष्य होना चाहिए। आधुनिक युग में गुफा-जीवन का आदर्श अनुकरणीय नहीं है।

विश्व-शान्ति विषय पर लिखे एक अद्यतन लेख के अनुसार वे यहाँ तक कहते हैं कि साधुओं, संन्यासियों को वीरतापूर्वक जनता के समक्ष आ कर देश के कर्णधारों का निर्देशन और मार्गदर्शन करना चाहिए; क्योंकि उनकी नीतियों पर ही जन-कल्याण निर्भर है। यहाँ तक कि केवल संन्यासी ही नवयुग का निर्माण और नयी व्यवस्था को स्थापित करने में अपना पूरा जीवन समर्पित कर सकते हैं। शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए भी ये ही लोग उपयुक्त हैं।

समाज के और लोगों की अपेक्षा संन्यासी विश्व-कल्याण में पर्याप्त योगदान दे सकते हैं। मायावाद के प्रतिपादक श्री शंकराचार्य ने स्वयं अपने अल्प किन्तु स्वर्णिम जीवन में स्थायी सेवा का कार्य किया। इसीलिए स्वामी जी का भी यही आह्वान 'ले सन्यासियो ! जागो! लकीर के फकीर मत बनो। संगठित हो जाओ। आधुनिक बैच में यायोचित ढंग से अपने कर्तव्य की पूर्ति करो। समय के अनुकूल बनो। मिथ्या भ्रम में आ कर शरीर को अस्थि-पंजर मत बनाओ।"

आज के सभ्य कहलाने वाले समाज की बुराइयों का स्वामी जी स्पष्ट एवं अबाध रूप से खण्डन करते हैं। वे अस्पष्ट रूप से कभी कोई बात नहीं कहते। समाज में प्रचलित छुआछूत, बाल-विवाह, अनैतिक भ्रष्टाचार, चरम सीमा की निरक्षरता, दहेज-प्रथा, विवाह और अन्य अवसरों पर धन का अपव्यय आदि अनेक बुराइयों को स्वामी जी ने कलंक कह कर निन्दा की है। उन्होंने हर सम्भव ढंग से इन बुराइयों का समाज से बहिष्कार करने का भरसक प्रयत्न किया है।

कई बार वे कहते हैं-"यदि आपकी कन्या सेवा और त्याग जैसे विशेष सस्कार ले कर पैदा हुई है, तो उसे अच्छी शिक्षा व प्रशिक्षण देना ही पर्याप्त है। जीवन का पथ उसे अपने-आप निर्धारित करने दो। विवाह-बन्धन के लिए उसे विवश मत करो। ऐसे अपवाद के विषय में आपको साहस और बुद्धिमत्ता से काम लेना होगा। सदैव सामाजिक कुरीतियों का शिकार मत बनो।"

एक और अवसर पर उन्होंने उत्साहपूर्वक यह कहा- "उपहासास्पद तुच्छ बातों में समय गँवाने से किसी भी महान् उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। खान-पान जैसी छोटी बातों पर ही लड़ मरने से क्या आप धर्म की रक्षा कर सकते हैं? जरा ध्यान से सोचिए, यह सब कितना हास्यास्पद लगता है? यदि एक धर्मशाला में दश ब्राह्मण ठहरे हैं, तो वे दशों अलग-अलग रसोईघर में अपना खाना पकायेंगे। एक उपजाति का व्यक्ति दूसरी उपजाति के साथ खाना नहीं खायेगा। ऐसे निरर्थक बन्धनों को निर्दयतापूर्वक तोड़ डालिए।"

समाज-कल्याण हेतु अछूतोद्धार, निरक्षरता-निवारण, पददलित वर्ग के शिक्षण एवं प्रशिक्षण तथा निष्काम सेवा के लिए राष्ट्रीय संस्थान स्थापित करना आदि सेवाएँ करना उनकी हार्दिक अभिलाषा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब उनके जीवन का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक जागरण है, तो इन सब विषयों का उससे क्या सम्बन्ध ? उनके प्रमुख कार्य में इनका स्थान किस तरह उपयुक्त

है? इसके उत्तर के लिए मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। वास्तविक आध्यात्मिक वृद्धि व प्रगति के लिए कुछ निश्चित स्थितियाँ एवं निश्चित नैतिक मूल्य प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। व्यक्तिगत व सामाजिक सुरक्षा, प्रचुर मात्रा से व्यावसायिक ज्ञान ईमानदारी से जीवन-यापन और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए अत्पन आवश्यक है। देश में शान्ति व स्थिरता का वातावरण, उच्च कोटि का राष्ट्रीय स्वास्थ आदि तत्त्व देश में आध्यात्मिकता की रुचि उत्पन्न करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

उच्च आदर्शों और नित्य सत्य की प्राप्ति की बात लोगों को भला कैसे सुहायेगी, जब कि देश में अराजकता की स्थिति हो और लोग भोजन, वस्त्र, आवास तथा अन्य आवश्यकताओं समुचित व्यवस्था के लिए चिन्तित हों? आध्यात्मिक प्रगति का अर्थ है-प्रेम, एकता, सहनशीलता और समदृष्टि की प्राप्ति। जब तक स्वार्थपूर्ण जाति- पाँति का भेद-भाव और साम्प्रदायिकता के क्षुद्र बन्धन नहीं टूटेंगे और यथोचित क्षेत्र तैयार नहीं होगा, तब तक आध्यात्मिक प्रचार एक ढोंग मात्र रहेगा। परिणाम-स्वरूप एक धार्मिक उपदेशक, आध्यात्मिक प्रचारक को समाज-सुधार में भी योगदान देना चाहिए।

स्वामी जी में इन दोनों रूपों का समन्वय है। वे दोनों का प्रचार-कार्य इस प्रकार साथ-ही-साथ करते हैं कि अन्ततः बल आध्यात्मिक पहलू पर ही पड़ता है।

इन दो तथ्यों के अतिरिक्त स्वामी जी का एक और महत्त्वपूर्ण रूप है और वह है-सनातन धर्म के पुनरुत्थान (Revival) की परम्परा को विवेकपूर्वक अनिवार्य रूप से बनाये रखना।

भारत को भावी विश्व की आध्यात्मिक जननी होने के लिए हिन्दू-धर्म को प्रभावशाली और जीवन्त शक्ति बनाना होगा। बंगाल के सुदूर देहात की एक विनम्र कुटिया में आज से सौ वर्ष पहले हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान की प्रबल भावना भड़की। इस भड़कती ज्वाला ने दो हजार वर्ष की आध्यात्मिकता और संस्कृति में ऐसी विद्युच्छक्ति का संचार किया जिससे युवा वर्ग को नयी दिशा मिली और जिसने शताब्दियों पुरानी जड़ता व निद्रा को दूर कर आध्यात्मिक सम्पत्ति के प्रति उनकी उदासीनता से उन्हें जाग्रत किया। पर जब तक जनता पूरी तरह जाग्रत हो और जड़ता से अपने को पूर्णतया मुक्त करे, तब तक वह देदीप्यमान ज्योति भी विलीन हो गयी।

उस साहसी योगी का जीवन जितना अधिक ज्योतित था, उतना ही अल्प था। ज्वार-भाटा के प्रवाह की दिशा तो बदल गयी थी, पर धारा-प्रवाह को अजस्र बनाये रखने की अत्यन्त आवश्यकता थी।

अतः जनता की मोह-निद्रा को दूर कर आध्यात्मिकता को क्रियाशील व गतिशील बनाने के अत्यन्त महान् कार्य के लिए विधाता को मानो स्वामी जी से बढ़ कर और उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिला।

मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि इस उच्च आदर्श की पूर्ति के लिए स्वामी जी सर्वाधिक उपयुक्त हैं, क्योंकि सतत कार्यशील रहना, विश्रान्ति को पास न फटकने देना उनका एक दैवी गुण है। देश को इनके रूप में धार्मिक चेतना की शान्त, अजस्र परन्तु वेगवती धारा मिली है।

पंचदश अध्याय

मेरी एकमात्र आराधना

"जिज्ञासुओं और साधकों की निष्काम सेवा ही मेरे विचार में ईश्वर की सच्ची पूजा है। किसी और भगवान् को मैं नहीं जानता। इनकी जिज्ञासा की पिपासा को शान्त करना ही मेरी योग-साधना है और इसी में आत्म-साक्षात्कार है। सब-कुछ इसी में निहित है।"

समूचे भारत में कैलास के शिखर से ले कर कन्याकुमारी पर्यन्त-श्रद्धालु हिन्दुओं की पूजा, उपासना की पद्धति एक-सी ही है और वह है-झाँझ-मंजीर, घण्टे-घड़ियाल आदि को मधुर ताल-सहित बजा कर, शास्त्रानुसार श्लोकों का सस्वर उच्चारण करते हुए कपूर की सुगन्धित ज्योति से सुव्यवस्थित ढंग से देवता की आरती उतारना। पारसी लोगों की उपासना-पद्धति इससे भिन्न है। वे पवित्र ज्योति के सम्मुख प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न पुरोहित तथा गाउन व कैप पहने भक्त जनों की व्यवस्थित सभा में 'जेन्द अवस्ता' में से 'अहुरमज्दा' की महिमा का गान करते हैं। घुटनों के बल बैठ कर ईसाई लोग 'हे परम पिता!' कहते हुए क्रॉस का आकार बना कर हार्दिक पूजा-भावना को मूक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। पूजा-स्थल मोमबत्तियों के प्रकाश से जगमगा रहा होता है। वाद्यवृन्द पर हृदय को आह्लादित करने वाले गम्भीर और मधुर स्तोत्रों का गायन होता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि पश्चिम की ओर मुख किये हुए इस्लाम-धर्म का प्रार्थी घुटनों पर बैठ निमग्न हो करुणावरुणालय भगवान् को रिझाता है, यदा-कदा मसजिद में आराधना-स्थल की ओर पुष्पांजलि व सुगन्धि दिखा कर निहारता है। इस प्रकार मन्दिर, मसजिद और गिरजाघर में उस एक ही दिव्य शक्ति की उपासना विभिन्न धर्मानुयायी अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करते हैं।

इसी प्रकार उस सौभाग्यशाली की-जिसे भगवत्कृपा से अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो गयी है-पूजा-उपासना की पद्धति अपने ही ढंग की है।

इस प्रकार स्वामी जी की सर्वोत्तम पूजा-पद्धति ने-बाह्य रूप में 'दिव्य जीवन संघ' का रूप धारण किया है।

उनके विचार में महती पूजा सबको इस तथ्य से अवगत कराना है कि वे दिव्य शक्ति की सन्तान है। वास्तविक दिव्य पूजा का अर्थ भी यही है। योगी शुद्धानन्द जी के लिखने के अनुसार स्वामी जी का मत है- "मानव के अन्तर में दिव्यत्व को जगाना हावा उसे दिव्य बनाना ही सच्चे अर्थों में मानव-सेवा है। शेष तो इसी सेवा के अंग मात्र है।"

दिव्य जीवन के इस नाटक में-उत्पत्ति, स्थिति और संहार के इस अनन्त अभिनय में मनुष्य अपने सत्य स्वरूप को भूल कर एक दास मात्र रह गया है। मानवता की सुप्त दिव्यता को जगाना, माया के भ्रमात्मक आवरण को हटाना तथा नव-प्राणी को अपने दिव्य आत्म-तत्त्व के दर्शन कराना ही स्वामी जी के जीवन का प्रमुख ध्येय है। 'दिव्य जीवन संघ' की स्थापना का मूलमन्त्र यही है और इसका परम आदर्श भी यही है।

स्वामी जी की पूजा-पद्धति में शास्त्रानुकूल उपासना-जैसे अर्चना, स्तुतिगान, अगर, धूप, दीप, आरती आदि भी सम्मिलित हैं, पर इनका स्वरूप भिन्न है। ज्ञान-निधि से परिपूरित अनेक पुस्तकें, व्यावहारिक साधना के लिए संकेत रूप में परिपत्र तथा सहस्रों जिज्ञासुओं को लिखे गये अनेक प्रेरणादायक पत्र ही उनकी पूजा की विलक्षण सामग्री है।

प्रत्येक पुस्तक ही मानो देवता को अर्पित की गयी पुष्पमाला है; प्रत्येक लघु पुस्तक ही छोटा-सा सुगन्धित पुष्प है; अर्चना तथा मानव को उत्तिष्ठित करने वाले लेखों का सतत प्रवाह ही मानो धूप की सुगन्धि है। प्रोत्साहन, आश्वासन, उपदेश, पथ-प्रदर्शन, शिक्षा और परामर्श के रूप में लिखे गये पत्रों का अविरल प्रवाह ही मानो (मैं ऐसा ही सोचता हूँ) उपासक की-जिसका हृदय दिव्य प्रकाश से युक्त है-अपने इष्टदेव के प्रति शाश्वत उल्लासमयी जय-जयकार है।

इस संघ की जो और शाखाएँ हैं तथा जो निष्काम सेवक हैं, वे इस भव्य विश्व-पूजा में भाग्यशाली सहायक हैं।

(२)

विराट्-पूजा के इस पुजारी के विशिष्ट पूजा-मण्डप की शोभा का तो क्या ही कहना है। इसकी साज-सज्जा तो विशेष उल्लेखनीय है। यह आश्रम परम भाग्यशाली है। पवित्र भागीरथी के तीर पर स्थित, हिमालय की पहाड़ी पर बसा हुआ यह आश्रम प्रकृति की क्रीड़ास्थली-सा प्रतीत होता है। यहाँ पर आये साधकों, जिज्ञासुओं, अतिथियों, परिचितों, प्रशंसकों, भक्तों, तीर्थ-यात्रियों तथा रोगियों तक की भी निष्काम भाव से सेवा-पूजा होती है। विशेष रूप से साधना-सप्ताह तथा अन्य सामयिक उत्सवों में केवल कार्यकर्ता ही नहीं, अपितु स्वामी जी स्वयं भी अभ्यागतो की सेवा में तन-मन अर्पण कर देते हैं।

प्रख्यात आनन्द-कुटीर में लोग भक्ति-भावना से इन महात्मा के दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते हैं, पर यहाँ पहुँचने पर उस वैभवयुक्त, पुष्टकाय सन्त के उत्कण्ठित सेवा-व्यवहार को देख कर दर्शनार्थी चकित हो कर दुविधा में पड़ जाता है मानो स्वामी जी ही दर्शनार्थी हों। यद्यपि स्वामी जी की उपस्थिति सदैव दिव्यता और शान्ति प्रदान करने वाली होती है, तथापि उनकी प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक शब्द और क्रियाकलाप यही कहता हुआ प्रतीत होता है कि मैं आपका सेवक हूँ।

स्वामी जी जब आश्रम में ठहरे अभ्यागतों-दर्शनार्थियों की व्यक्तिगत रूप से देखभाल करते हैं, तो यह दृश्य अपूर्व होता है। एक प्रसिद्ध दार्शनिक अन्ताराष्ट्रिय ख्याति-प्राप्त लेखक, शिक्षक, देश-भर के शीर्षस्थ जनप्रिय सुधारक और सबसे अधिक तो एक महान् व विशाल संघ के संस्थापक एवं प्रधान होते हुए भी-इन सबको भूल कर-स्वामी जी अपने-आपको सदैव उस विराट् स्वरूप का सेवक एवं उपासक ही मानते हैं।

स्वामी जी की सेवा में तत्पर दर्जनों सेवक एक ही संकेत पर आज्ञा-पालन के लिए सन्नद्ध रहते हैं, तो भी कभी-कभी ऐसा होता है कि एक थके-माँदे अतिथि के लिए जब तक दूध का गिलास तैयार हो, तब तक स्वामी जी स्वयं हाथ में दूध का गिलास लिये कुटीर से आ कर उपस्थित हो जाते हैं। इतना ही नहीं फल भी सफेद थैले से निकाल कर देते हैं। यदि वे देखते हैं

कि दर्शनार्थी संकोची प्रकृति का है और अपनी आवश्यकताओं को प्रकट करने में झिझकता है, तो स्वामी जी उसकी आवश्यकताओं को भाँप लेते और उसके कहने के पूर्व ही उनकी पूर्ति करने को किसी एक आश्रमवासी को कहते तथा सविस्तर सब बातें समझा देते ताकि उसको किसी प्रकार की कठिनाई न हो। सायंकालीन भ्रमण के समय भी स्वामी जी फल तथा खाने की अन्य सामग्री व पुस्तक आदि अपने साथ रखने के अभ्यस्त हैं जिनको देने के लिए वह स्वयं अभ्यागतों के कक्षों में चले जाते हैं। मध्याह्न में भी अपने कुटीर को जाते हुए यदि मार्ग में किसी साधु को आश्रम द्वारा परोसी गयी भिक्षा ग्रहण करते देखते, तो उसकी सुविधा के लिए वह बन्दरों को दूर भगा देते और उसके हाथ धुलाने के लिए स्वयं जल देने लग जाते । ऐसे अवसर पर आप कितना ही उन्हें यह सब करने के लिए मना करें, पर वे सेवा के सुअवसर को हाथ से भला क्यों जाने दें!

जब भी कोई भक्त इनको फल और मिष्टान्न भेंट-स्वरूप भेजता, तो तत्काल ही उन सामग्री को उपस्थित दर्शनार्थियों में बाँटना आरम्भ कर देते। आश्रम के बालक, सेवक, नाई, पोस्टमैन, पथिक, भिक्षुक, यहाँ तक कि यदि मेहतर भी वहाँ उस समय होता, तो सबको एक-समान ही भाग मिलता।

विशेष अवसरों पर जब विशाल भोज का आयोजन होता, तो हलवाई को किसी विशिष्ट वस्तु को बनाये अभी आधा घण्टा ही बीता होता कि स्वामी जी बच्चों की भाँति धैर्य खो देते। उनका भगवान् अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। माँ गंगा को शीघ्रता से थोड़ा-सा अर्पण कर जितना भी तैयार होता, उसी को ले कर आस-पास बाँटना आरम्भ कर देते हैं।

वे केवल देना ही जानते हैं। बाँटना भी एक हाथ से नहीं, दोनों हाथों से। बाँटने के उत्साह में तो वे बच्चे और बड़े का अन्तर ही भूल जाते हैं। कुछ न कर सकते हुए भी मैंने ऐसा हास्यजनक दृश्य कई बार देखा। प्यारे प्यारे बच्चों के छोटे-छोटे हाथों को वे इतना अधिक भर देते हैं कि वह अकेला उस कृपा-प्रसाद को सँभाल ही नहीं पाता है, उठा कर ले जाने की बात तो दूर रही।

एक रूढ़िवादी संन्यासी जब इनको अपने भक्तों की सेवा में तत्पर देखता है, तो वह एकाएक आश्चर्य में डूब जाता है। अतिथि यह सोचता है कि स्वामी जी का समस्त समय और ध्यान उस पर ही केन्द्रित है और स्वामी जी उसी का सर्वाधिक ध्यान रखते हैं। जैसे ही उसको रहने के लिए कमरा मिलता है, तुरन्त ही कई सेवक उसकी आवश्यकताओं पूर्ति अथवा सुख-सुविधा या आराम पहुँचाने हेतु वहाँ पहुँच जाते हैं। पानी का प्रबन्ध उसके कमरे में पहले ही से होता है। प्रकाश के लिए लैम्प तत्काल पहुँचा दिया जाता है (उन दिनों आश्रम में बिजली नहीं थी)।

गरमी के दिनों में तुरन्त मच्छरदानी और सर्दी के दिनों में एक या दो अतिरिक्त कम्बल इत्यादि दे दिये जाते हैं। यदि अतिथि वृद्ध या रोगी होता है, तो एक आरामप्रद कुर्सी भी तैयार रहती है। स्वामी जी पुस्तकालय के प्रबन्धक को उसकी रुच्यनुसार पुस्तक भी देने को कहते हैं। ये सब वह उसे भगवत्स्वरूप समझ कर करते हैं और आध्यात्मिक साहित्य द्वारा उसकी आत्मा की भूख मिटाने का पूरा ध्यान रखते हैं। उनके आतिथ्य-सत्कार-भाव में यह सेवा प्रमुख है। आगे इसका उदाहरण भी प्रस्तुत है।

बंगलोर से आये एक भक्त को जब गंगा जी में स्नान करने से सर्दी एवं ज्वा हो गया, तब स्वामी जी रात के समय उसके कमरे में उसका हाल पूछने स्वयं गये और पूछताछ की कि

उसको ठीक दवाई मिली या नहीं, उसने दवायी खायी भी कि नहीं और अब उसका क्या हाल है? अभी पिछले दिनों एक दर्शनार्थी किसी कारण अस्वस्थ था और अपने कमरे में ही था। श्री विश्वनाथ मन्दिर की सायंकालीन पूजा-आरती के पश्चात् कमरे में अपने सामने अचानक आरती का थाल देख कर आश्चर्यचकित रह गया।

स्वामी जी किसी भी बात से चूकते नहीं हैं। यही कारण था कि उस रोगी के लिए एक सेवक को विशेष रूप से नियत किया और समझाया कि आरती के थाल के साथ कपूर की एक टिक्की भी ले जाया करे। ध्यान देने की बात तो यह है कि कई बार दर्शनार्थियों में से कई ऐसे अपरिचित होते हैं जिनसे आश्रम में कुछ दिन वास करने के पश्चात् जीवन-भर कभी मिलन नहीं हो पाता।

स्वामी जी की इस हार्दिक अतिथि सत्कार की भावना की पराकाष्ठा देख कर दर्शनार्थी विस्मित हो कर कह उठता है- "इस विषय में स्वामी जी के समक्ष हम लज्जित हो जाते हैं। वे हम गृहस्थियों को सच्चे अतिथि सत्कार का पाठ पढ़ाते हैं। अतिथि-सत्कार की कला में स्वामी जी स्वयं ही पूर्ण हैं। हम अनुभव करते हैं कि उनसे हमें कई शिक्षाएँ लेनी हैं। गृहस्थी हो कर हम सोचते हैं कि हमारे लिए कुछ और सीखने की बात है ही नहीं, पर स्वामी जी के अतिथि सत्कार के आदर्श को देख कर हमें लगता है कि हमें इस आदर्श-मूर्ति का पूर्णरूपेण अनुकरण करना चाहिए।"

आशा है कि विषयान्तर के लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे; क्योंकि इस विषय की चर्चा करना मैं आवश्यक समझता हूँ। इस उदाहरण से ऐसा आदर्श सामने आता है जो धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थाओं के लिए भी अनुकरणीय है। जन-सामान्य के प्रति यदि शिष्टता, प्रेम और विनम्रता का व्यवहार किया जाये, तो जन-साधारण के लिए अनुकरणीय आदर्श बन जायेगा। इन संस्थाओं का मूल उद्देश्य भी यही है। अतः जनता के सहयोग के लिए जनता को प्रभावित करना है जिससे संस्थाओं के मुख्य कार्य-जैसे जन-साधारण के हृदय में आध्यात्मिकता का बीजारोपण और नास्तिकता तथा प्रमाद का विनष्टीकरण सुगमता से हो सके।

धार्मिक संस्थाओं के निष्काम सेवकों को विनम्र और स्नेहिल होना चाहिए जिससे कि नास्तिक और आलोचक का हृदय भी परिवर्तित हो जाये। इस हार्दिक सद्भोवना के आदान-प्रदान में ही आध्यात्मिक संस्थाओं के दिव्य कायों का वैभव हैं: किन्नु जब ये संस्थाएँ प्रसिद्धि को प्राप्त हो जाती हैं और अपने आदर्श को भुला देती हैं, ही परिणाम-स्वरूप जनता के प्रति सहृदयता समाप्त हो जाती है। आश्रमवासी दर्शनार्थियों की अवहेलना करने लगते हैं और केवल समृद्ध अतिथियों का ही हार्दिक स्वागत होता है जिससे वे समदर्शिता के आदर्श से च्युत हो जाते हैं।

इस आश्रम का अतिथियों तथा दर्शनार्थियों के प्रति व्यवहार लोगों की आँखें छोलने वाला है, इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। आश्रमवासी तथा इससे सम्बन्धित समस्त व्यक्तियों को इस बात का गौरव है। इसका सभी निष्पक्षता से समर्थन करते हैं। स्वामी जी इस बात का कड़ा निरीक्षण करते हैं तथा ध्यान रखते हैं। ये सदैव अपने साधकों को दर्शनार्थियों के प्रति विनम्र रहने की शिक्षा देते हैं तथा सिखाते हैं कि सेवा-भाव में सदैव सजगता, दयालुता, मृदुता तथा तत्परता दिखानी चाहिए। इसी का फूल है कि यहाँ अतिथियों का सहर्ष स्वागत होता है तथा उनके साथ स्नेहिल व्यवहार होता है।

स्वामी जी सदैव कहते हैं-"यदि आप सबमें आत्म-भाव रखने का प्रयत्न करते हो अथवा सबमें उस वासुदेव के ही दर्शन करते हो (**'वासुदेवः सर्वमिति'**) और 'सर्व विष्णुमयं जगत्' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हो, तो अपने आचरण में इसी भाव का प्रकटीकरण करो, नहीं तो वह निष्प्रयोजन-सा ही लगता है कि आप उच्चादर्शों से मस्तिष्क को भरपूर रखें, पर आचरण के समय हाथों को जेब में बन्द रखें।

"यहाँ ठहरने वालों को आध्यात्मिकता की प्राप्ति हो अथवा न हो; पर जब तक वे यहाँ ठहरें, उन्हें वास्तविक शान्ति का आनन्द अवश्य करना चाहिए, क्योंकि बाद में जब कभी वे यहाँ प्राप्त होने वाले इस दिव्य प्रेम और दया का स्मरण करेंगे तो उन्हें यहाँ से सम्बन्धित दिव्य शान्ति, माँ गंगा, संकीर्तन तथा आध्यात्मिक उपदेशों का स्वतः स्मरण आ जायेगा। इसलिए सबकी भावपूर्वक सेवा करो। धार्मिक संस्थाओं और मठों को सात्त्विक भाव, निष्काम सेवा और निःस्वार्थ प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए।"

निस्सन्देह एक ऐसे व्यक्ति को जिसके हृदय में योगी और संन्यासी के लिए केवल पारम्परिक या पुस्तकीय संकल्पना है, इसमें बहुत कुछ विचित्र प्रतीत होता है। स्वामी जी की आतिथ्य-भावना और आदर्श-आचरण का मर्म समझने का प्रयत्न करें, तो स्पष्ट हो जायेगा कि वे यह सब लोकाचार हेतु नहीं करते। शिष्टाचार का भाव तो केवल प्रसंगवश है। प्रधान तथ्य तो यह है कि उच्चादर्श ही उनके सेवा-पूजा-कार्यों का प्रेरक है। कर्मकाण्डी की पूजा की भाँति इनकी आराधना भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को ले कर ही होती है, तभी तो उसमें किसी प्रकार की सावधानी व कुशलता-सम्बन्धी त्रुटि देखने में नहीं आती।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान केन्द्रित करने वाली बात तो यह है कि स्वामी जी अपने इस दयालु व्यवहार से व्यक्ति का हृदय जीत कर उसको प्रत्यक्षतः एक नव-उन्नत रूप में परिवर्तित कर लौटाते हैं। उस व्यक्ति का दृष्टिकोण एकाएक बदल जाता है। वे उसकी स्थिति और सामर्थ्यानुसार उसमें अज्ञात शक्ति भर कर विदाई देते हैं। एक बुद्धिमान् और कुशल प्रबन्धक की भाँति वे आतिथ्य व सेवा के साथ चीनी से लिपटी गोलियों की दवाई दे कर उसके आचार-विचार में अल्प दिनों में ही परिवर्तन ले आते हैं।

इस विलक्षण कृपा का रूप अनोखा ही है। वह दर्शनार्थी अब कुछ कीर्तन- ध्वनियों को गा लेता है, कुछ आसन और साधारण प्राणायाम का अभ्यास कर लेता है और अल्प जन-समुदाय के समक्ष दो बार भाषण दे लेता है। लिखित जप, आध्यात्मिक डायरी तथा सुव्यवस्थित दिनचर्या का भी कुछ अभ्यास करवा दिया जाता है। ध्यान, स्वाध्याय और प्रार्थना की कक्षा के संचालन का प्रशिक्षण भी प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में जब तक वह अतिथि विदाई लेता है, तब तक वस्तुतः वह दिव्य विचारों और आध्यात्मिक साधनों का प्रचार-प्रसार करने का सशक्त केन्द्र बनने में समर्थ हो जाता है।

स्वामी जी का यह प्रशिक्षण आधुनिक युग की अद्यतन युद्धकालीन पद्धति के तुल्य है। थोड़े ही समय में तीव्रता से, गहराई से यह शिक्षण उसी प्रकार मिलता है जैसे आकस्मिक युद्धकालीन स्थिति में तकनीकी प्रशिक्षार्थियों को विशेष केन्द्रों में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है। एक सप्ताह अथवा दश दिनों के अल्प समय में ही अभ्यागत साधक संक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से बहुत-सी बातों का शिक्षण प्राप्त कर लेता है।

इस द्रुत 'सद्यो पूजा' का-जैसा कि मैंने इसको नाम दिया है-ढंग उस संक्षिप्त पूजा से मिलता है जो कि दक्षिण भारत के निवासी उत्सवों पर अपने स्थानीय देवता की शोभा-यात्रा के अवसर पर करते हैं। देवता से सुसज्जित पालकी मार्ग में आये भक्तों के घरों के सम्मुख रोक दी जाती है। वे भक्त संक्षिप्त अर्चना कर नैवेद्य और आरती अर्पित करते हैं। तब पालकी आगे बढ़ जाती है।

जब किसी ने परिहास में इस प्रशिक्षण की समानता आकस्मिक युद्ध-व्यवस्था के प्रशिक्षण से की, तो स्वामी जी तुरन्त बोल उठे- "हाँ! हाँ! क्यों नहीं! आज के युग में संक्षिप्त और मृदु नीति ही अपनानी चाहिए । परम्परागत पवित्रता का लोप हो चुका है। समयाभाव के कारण लोग उस परम्परा को नहीं निभा पाते। स्थिति के अनुकूल ही गायक विषय का सामंजस्य होता रहना चाहिए। जीवन क्षण-भंगुर है-दिनों और वी के बीतने का पता ही नहीं चलता। अतः मैं अपने पास आये भक्तों को उनके स्वभावानुकूल तथा उनकी स्थिति विशेष के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र प्रशिक्षण दे देता हूँ।"

(३)

उनके जीवनोद्देश्य के व्यापक पहलुओं को जीवन्त रखने व विकसित करने का काम इस संघ की कई शाखाओं एवं इनके निष्काम सेवक और उत्साही, अनुरागी भक्त-मण्डली द्वारा हो रहा है। कई साधक, जिनको स्वामी जी में पूर्ण निष्ठा है, व्यक्तिगत रूप से इस आदर्श के अनुसरण द्वारा जनता के सामने उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। इस सत्यता की साक्षी संघ की अनेक शाखाएँ और उनके कार्य-विस्तार की सफलताएँ हैं।

इसका दूसरा रूप है-भारतवासियों की पुकार। वे स्वामी जी के अथक परिश्रम का आशातीत लाभ उठा कर हार्दिक कृतज्ञता तथा प्रशंसा के रूप में अपने भावों का प्रकटीकरण कर रहे हैं। उनके इस धैर्यपूर्वक किये गये शोध के सुपरिणाम के प्रति हार्दिक आभार को लोगों ने व्यक्तिगत रूप में पत्र-व्यवहार तथा समाचार पत्रों द्वारा प्रकट किया है।

स्वामी जी ने भी दृढ़ संकल्पानुसार गंगा-तट स्थित छोटी-से कुटीर में ही रह कर गंगा माता के प्रति आदर तथा प्रेम का परिचय दिया है। कुटीर में रह कर भी दिव्य प्रेम, निष्काम सेवा तथा सत्यता की प्रेरणा देने का कार्य देश के कोने-कोने में ही नहीं, अपितु सुदूर दक्षिण कोलम्बो तथा जाफना, उत्तर में श्रीनगर तथा पेशावर पर्यन्त किया है। विभिन्न स्थानों की दिव्य जीवन की शाखाएँ आध्यात्मिकता का प्रसार बड़े उत्साह और तीव्रता से कर रही हैं। इसका प्रमाण अनेकों साधकों द्वारा स्वामी जी के पास भेजी गयी आध्यात्मिक दैनन्दिनी व नियमित साधना की जानकारियाँ हैं।

पूर्व में संघाई, रंगून और प्रॉम में संस्थापित दिव्य जीवन संघ की शाखाओं से स्फूर्तिदायक कार्यों के उत्साहवर्धक प्रतिवेदन मिल रहे हैं। युद्ध के कारण आवागमन में अवरोध उपस्थित होने से आजकल परस्पर सम्पर्क स्थापित करना कठिन हो गया है जिससे उनकी प्रगति के विषय में कुछ ज्ञात होना असम्भव है।

रंगून से प्राप्त समाचार के अनुसार वहाँ नित्य-प्रति वेद-पाठ, साप्ताहिक गीता कक्षाएँ, रविवारीय यज्ञ-हवन का कार्यक्रम चलता है। पश्चिमी सागर के पार भी फारस की खाड़ी के पास बेहरीन (Behrein) तक तथा ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका में इससे अधिक उत्साह से 'दिव्य जीवन संघ' की शाखाओं का कार्य चल रहा है।

भारत के प्रमुख नगरों में जहाँ के लोग लक्ष्मी के पुजारी बन गये हैं, वहाँ भी दिव्य जीवन का प्रसार हो रहा है और उन लोगों में आध्यात्मिकता का बीज बोया जा रहा है। अतः हर्ष का विषय है कि बम्बई, कलकत्ता, लाहौर (अब पाकिस्तान में), मद्रास, मैसूर, बैंगलोर, दिल्ली, पटना, कराची (पाकिस्तान), अहमदाबाद, मेहसाना आदि नगरों में दिव्य जीवन का प्रसार हो रहा है।

पूना, नागपुर, बरार, सियालकोट (पाकिस्तान), अमृतसर, इलाहाबाद, रावलपिण्डी (पाकिस्तान), त्रिची, त्रिवेन्द्रम, सेलम, मैटूपलायम, कुण्डापुर, कारकल, नरोल, विशाखापट्टम आदि शहरों में लोग अगाध निष्ठा से इस कार्य में रुचि ले रहे हैं। कुछ केन्द्रों में रात्रि-कक्षाएँ, कुछ में धर्मार्थ औषधालय तथा कुछ में निर्धनों को भोजन देने के कार्यक्रम सफलता से चल रहे हैं। इस प्रकार वे सब लोग व्यावहारिक आध्यात्मिक साधना का कार्यक्रम सम्पन्न कर रहे हैं।

भारत के सुदूर नगरों तथा गाँवों में लोग पारस्परिक वार्ता हेतु संगोष्ठी का नियमित रूप से आयोजन करते हैं ताकि स्वामी जी द्वारा बतायी गयी साधना और निष्काम सेवा का कार्य सुचारु और सामूहिक रूप से हो सके। ऐसे लोग जिनके जीवन में साधना नाम का अंश भी न था, अब ब्राह्ममुहूर्त में ४ बजे उठना, निर्धारित आसन पर बैठ कर माला जपना तथा इष्टदेव के दिव्य नाम का स्मरण करना अच्छी तरह सीख गये हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण तथा श्रीमद्भागवत आदि जो ग्रन्थ विस्मृति के गर्त में थे, उनका पाठ, स्वाध्याय, अध्ययन और मनन आरम्भ हो गया है, जिससे उन पर वर्षों से जमी धूल हट गयी है, ताजी हवा का संस्पर्श हुआ है और फिर से नये वस्त्रों में लपेट कर रखने से उनका हार्दिक स्वागत हुआ है। सहस्रों साधकों ने लिखित जप में रुचि ले कर कितनी ही अछूती मन्त्र-पुस्तिकाओं के पन्ने-के-पन्ने भर डाले।

लिखित जप की सर्वाधिक प्रेरणा स्वामी जी से ही मिली। उसी का परिणाम है कि मुख्यालय में साधकों द्वारा भेजे गये मन्त्र-पुस्तिकाओं के बण्डल-के-बण्डल प्राप्त हो रहे हैं। अभी पिछले दिनों बम्बई की एक सम्भ्रान्त महिला ने करोड़ों की संख्या में 'राम-कोटि' राम-राम लिख कर ताँबे की पेटी में रख कर भेजा है।

आसनों के अभ्यास में भी वृद्ध, युवा-सभी वर्ग के लोग रुचि ले कर आशातीत लाभान्वित हो रहे हैं। नित्य-प्रति कीर्तन तथा साप्ताहिक प्रवचन का आयोजन भी होता है। यह समुदाय ही दिव्य जीवन संघ के विभिन्न केन्द्रों का रूप धारण कर दिव्य जीवन सम्बन्धी सार्वभौमिक तत्त्वों के पुण्य-कार्यों का संचालन कर रहे हैं।

स्वामी जी ने स्वयं भी अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य के विस्तार की इतनी कल्पना न की होगी, पर विधाता ने भी आसुरी-सम्पत्ति के विरुद्ध दिव्य जीवन का सशक्त शस्त्र उठा लिया है।

अतः इसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य आदि तत्त्वों का आश्रय ले कर धन-दौलत तथा भौतिकवाद के विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया है।

आध्यात्मिक साहित्य तथा ज्ञान के प्रसार हेतु वाचनालय एवं पुस्तकालय पर्याप्त सफल साधन सिद्ध हुए हैं। औषधालयों, चिकित्सालयों की व्यवस्था कई केन्द्रों में की गयी है। समस्त केन्द्रों में कार्य स्वेच्छा एवं विशुद्ध प्रेम से हो रहा है। इन सब विविध आयोजनों के केन्द्र-बिन्दु स्वामी जी हैं जो अपने आश्रम में रह कर भी आध्यात्मिक ऊर्जा-केन्द्र की भाँति सब श्रेय मातृ-शक्ति को ही देते हैं- "प्रकृति ही इस भव्य नाटक की सूत्रधार है। मैं क्या कर रहा हूँ? मैं तो स्वयं को यन्त्र मात्र समझता हूँ जिसका चयन मातृ-शक्ति ने किया है। हाँ, जब तक उसकी इच्छा है, मैं इस कार्य को गतिमान करता रहूँगा। यदि उसकी इच्छा होगी, तो इसको जारी रखेगी। मुझे इस विषय में किंचिन्मात्र भी चिन्ता नहीं है। मेरी इतनी प्रार्थना अवश्य है कि मैं मृत्यु- पर्यन्त अपनी इस आराधना और निष्काम सेवा में संलग्न रहूँ।"

षोडश अध्याय

आधुनिक युग का माध्यम

"सत्साहित्य के लिए परमात्मा को धन्यवाद दें।" -डब्ल्यू. ई. चेर्निन्स

कुछ दिनों पूर्व की बात है कि मसूरी शमशेर नाम का स्वामी जी का एक परम प्रिय मित्र आश्रम में आया। वास्तव में वह तीन-चार दिन से अपराह्न वेला में कई घण्टों के लिए नियमित रूप से स्वामी जी के पास आता था। उनमें से जिन व्यक्तियों को मैं अब तक मिल चुका हूँ, नेपाल के एक सम्भ्रान्त परिवार का यह (कुमार) सुशिक्षित, सुसंस्कृत और सबसे अधिक सुन्दर और रोचक व्यक्तियों में से एक है। यह राजकुमार बुद्धि और विनोद-चातुर्य-दोनों गुणों से सम्पन्न है।

जब यह स्वामी जी से वार्तालाप करता, तब बहुत ही आनन्द आता। अतः इन दोनों को बातचीत में व्यस्त रखना और फिर उस विचार-विमर्श को सुनने में विलक्षण आनन्द की अनुभूति होती। बातों-ही-बातों में उसने स्वामी जी के लिए तीन सराहनीय कथन कहे, जिसने तुरन्त मेरा ध्यान उन वचनों में अभिव्यंजित निर्णय की यथार्थता और गूढ़ महत्ता की ओर आकृष्ट किया।

राजकुमार बड़ा ही गम्भीर, विचारवान् और चतुर न्यायविद् था। हाँ, बात करने का ढंग भले ही सरल और चपल था। अतः जो उक्ति उसने स्वामी जी के विषय में कही, उसको मैं सरलता से नहीं भूलूँगा। जब स्वामी जी उसको नव-निर्मित मन्दिर (जो पर्वत पर बना था) की ओर ले जा रहे थे, मसूरी शमशेर एकाएक रुक गया और स्वामी जी को निहारते हुए कहने लगा- "मैं नहीं जान पाया कि आप कौन हैं और वास्तव में आप क्या है? आप ज्ञानी सन्त हैं, राजयोगी हैं, भक्त हैं, महा कर्मयोगी हैं या संकीर्तन-सम्राट् !"

पुनः बोला- "कोई भी सन्त जनता में परम भक्त के रूप में या ख्याति-प्राप्त योगी या विख्यात हठयोगी के रूप में प्रसिद्ध होता है। आप इन सबसे सम्पन्न होते हुए भी एक विशेष उपाधि से विभूषित नहीं हैं। आप एक गतिशील कर्मयोगी हैं। उत्तर प्रदेश और पंजाब के लोग

आपका अभिनन्दन 'संकीर्तन-सम्राट्' के रूप में करते हैं। आप योग-योगांग के भी पूर्ण ज्ञाता हैं तथा अन्य सभी योगों में भी निष्णात हैं। अतः आप एक पहेली हैं।"

ऐसा कह कर वह दुविधा से सिर हिला कर मुस्कराने लगा।

कुछ क्षणोपरान्त उसने गम्भीरतापूर्वक कहा - "आप क्या अनुभव करते हैं, यह कुछ नहीं मालूम, पर जब मैं आपके इन पिछले दश-ग्यारह वर्षों के महत्त्वपूर्ण कार्यों की जालब्धि के विषय में सोचता हूँ, तो मेरी यह व्यक्तिगत अनुभूति है कि जो-कुछ आपने अकेले कर दिखाया, वह मानवेतर है।"

कितनी पूर्णता है उसके निरीक्षण में और कितना समुचित समीकरण है स्वामी जी उपलब्धियों का! पाठक गण पिछले अध्याय में दिये गये तथ्यों के आधार पर इसका समुचित निर्णय कर सकते हैं। स्वामी जी की कृतियों से यह सिद्ध हो जाता है कि स्वामी जी वास्तव में एक पहेली हैं। उन्होंने जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए पुस्तकों के माध्यम का चयन किया है, जिसमें उन्होंने अपने विचारों और अनुभवों को मुद्रित पृष्ठों के माध्यम से अंकित कर जनता के लिए सुलभ बना दिया है।

वर्षों पूर्व प्रगतिशील पाश्चात्य देशों में बहुत आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण सूचना भेजने का शीघ्रगामी साधन सवारी गाड़ी से बढ़ कर और नहीं था। मरणासन्न व्यक्ति-सम्बन्धी सूचना उसके प्रिय सम्बन्धी को भेजने के साधन की भी यही सीमा थी। ऐसा भी होता कि गाड़ी अभी थोड़ी ही दूर गयी होती कि मरणासन्न व्यक्ति परलोक भी सिधार जाता।

आज के युग में यदि कोई व्यक्ति इस साधन द्वारा समाचार भेजना चाहे, तो उसे महामूर्ख कहा जायेगा। दुनिया उसका उपहास करेगी और उसके कर्म को चन्द्रस्पर्श की संज्ञा देगी। अब द्रुतगामी तार दो घण्टे में सम्बन्धित व्यक्ति के पास पहुँच जाता है और द्रुतगामी गाड़ी उस व्यक्ति को उसी दिन सन्ध्या-समय उसके गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देती है। कुछ वर्षों पूर्व संसार-भर में जॉक लगवा कर रोगोपचार का ढंग प्रचलित था। आज इसको कोई भी आजमाना नहीं चाहेगा।

कार्य करने के साधन बदल चुके हैं। प्राचीन काल के घिसे-पिटे साधनों की अपेक्षा व्यक्ति नये एवं सुन्दर साधनों को ही महत्त्व देता है। वर्तमान युग की बड़ी संस्थाओं की भाँति (स्वामी जी स्वयं ही एक संस्था है) स्वामी जी ने अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु मुद्रणालय के साधन को अपनाया है। इसीलिए स्वामी जी के कर कमलों ने जाग्रति हेतु पाठकों तक अपने सन्देश पहुँचाने और सहस्रों कृतज्ञ पाठकों को (सच्चे) शाश्वत सुख की ओर ले जाने के लिए साहित्य को अपना माध्यम बनाया। मानव जाति मुद्रणालय के आविष्कारक की हृदय से आभारी है। इसी के फल-स्वरूप सब देशों के विचारवान् एवं सामान्य व्यक्ति का, जो जीवन-यापन हितार्थ चोर करते हैं, परस्पर सहज सम्पर्क बना।

मुख्यतः पुस्तकों द्वारा ही परस्पर सम्पर्क स्थापित कर महान् पुरुषों के परिश्रम के महाफल की प्राप्ति होती है। यह मार्ग सबके लिए खुला है। सब धर्मो सद्ग्रन्थ जो अब तक अज्ञात थे, इसी माध्यम से सब-काल, सब देशों में सुलभ हो गये हैं।

महान् आत्माएँ अपनी उच्च साधना को पुस्तकों के माध्यम से ही करता के समक्ष प्रस्तुत करती हैं, आपसे वार्तालाप करती हैं, अपने अमूल्य विचारों में अपने आत्मसात भावों एवं अनुभूतियों का प्रकटीकरण करती हैं। केम्पिस की 'इटियन आफ क्राइस्ट', आगस्टाइन की 'कन्फेशन', सम्राट् ओरलियस की 'मेडिटेशन', की 'सीरियस कॉल' गीता, बाइबिल आदि महान् रचनाएँ हजारों लोगों के लिए अज्ञात ही रहतीं यदि विश्व-भर में हिग्गिनबोथम्स और ह्वीलर की कम्पनियाँ उनके प्रसार की माध्यम न बनीं।

'दिसम्बर १९४२ का नवम संस्करण' या इसी तरह के दूसरे प्रकाशनों का समुचित मूल्य, आकर्षक जिल्द असंख्य भाग्यशाली पाठकों का जीवन परिवर्तन करने व उनके जीवन में प्रसन्नता, शान्ति व ज्ञान प्रदान करने का अप्रत्यक्ष माध्यम बनी है। पुस्तकें ही मानव को महान् आत्माओं, ऋषियों, सन्तों का सत्संग एवं आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करती हैं। डब्ल्यू. डी. केनिंग के शब्दों में हमें भी पुस्तकों के लिए ईस्वर का अतिशय आभार प्रदर्शित करना चाहिए; क्योंकि टेनीसन ने भी लिखा है कि ईझकर अपनी अभिव्यक्ति अनेक माध्यमों में से पुस्तकों के माध्यम से करता है।

थोड़ा ही विचारने से मालूम हो जाता है कि स्वामी जी की कृतियाँ द्विमुखी तीव्र आकांक्षाओं का परिणाम हैं। प्रथम तो मानव को जगाने की तीव्र इच्छा, ज्ञान प्रदान करना, मार्ग-दर्शन में सहायता करना और दूसरे अपनी रचनाओं को प्रत्येक देश के सभी प्रकार के लोगों, जीवन के सभी क्षेत्रों, प्रत्येक स्थिति और उद्विकास के प्रत्येक स्तर के अनुकूल बनाना। सत्य तो यह है कि इस माध्यम से इन्होंने विश्व की सेवा की है।

उनकी कृतियों के विषय में एक रोचक बात यह है कि इनसे इनके 'चिन्तक-ऋषि' तथा जन-नेता के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। लेखबद्ध विषयों में जिनका चयन उन्होंने स्वेच्छा से किया है, उसमें जहाँ एक ओर नित्य तत्त्व की असीमता तथा अनिर्वचनीयता की अछूती ऊँचाइयों का वर्णन किया है, वहाँ दूसरी भो अन-साधारण के लिए यह भी लिखते हैं कि जुकाम का उपचार क्या है? शिशु का जवाहर का होना बाहिए तथा उसका लालन-पालन कैसे किया जाये ? उसके दुग्धपान की बोतल की सोडा तथा ब्रश से भली प्रकार सफाई करनी चाहिए। एक स्थान पर तो अक्षक की चटनी बनाने की विधि भी लिखी है।

स्वामी जी योगी हैं, वेदान्ती है और विरक्त हैं, फिर उनकी रचनाओं में उपर्युक्त अपासंगिक बातें कैसे आ गयी हैं? जागृति लाने वाले इस महान् पुरुष ने क्या सर्वत्र आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार नहीं किया है? निःसन्देह किया है। हमारे मध्य स्वामी जी की उपस्थिति युगानुकूल है। इस तपस्वी का संन्यास-जीवन-यापन आज के युग के लिए जीवात्म अर्थात् केवल मात्र प्राचीन परिपाटी पर ही आधारित नहीं है। दूरदर्शिता और विशालता के कारण उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। प्रथम यह कि वे जानते हैं कि आधुनिक मनुष्य के साथ व्यवहार करना चीनियों के खाने की चम्मच की तरह सरल नहीं है।

आज का मानव जटिल प्रकृति का है। उसके अनेक जटिल रूप हैं। जीवन के पारस्परिक सम्बन्धित विविध क्षेत्रों से आज का मानव इतना संयुक्त है कि उनसे वह पृथक् नहीं हो सकता। निःसन्देह वह शुद्ध आत्मा है; किन्तु देह से अपना तादात्म्य मान बैठा है।

उसका मन चिन्तातुर रहता है। शरीरधारी होने के नाते उसकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याएँ भी हैं, भौतिक आवश्यकताएँ भी हैं और उसे सामाजिक स्थिति का भी ध्यान रखना पड़ता है। अपने दैनिक जीवन में वह गृहस्थी की देखभाल करता है, कार्यालय- सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न करता है। वह सरकार का करदाता भी है। लोकाचार भी उसे करना पड़ता है। सम्भवतः स्थानीय बन्द गलियों में सट्टा भी खेलता है।

अब कोई भी आध्यात्मिक गुरु अथवा शिक्षक यदि मानव के शरीर-मन- आत्मा-इस त्रिमुखी व्यक्तित्व का तथा जो अर्थ पर आधारित आधुनिक समाज का एक अंग है, उसके इन विविध पक्षों की अवहेलना करता है, तो उसे शीघ्र ही ज्ञात हो जाता है कि उसके समस्त प्रयत्न निष्फल हुए हैं।

स्वामी जी का यह विश्वास है कि भूखे पेट और वस्त्रहीन व्यक्ति पर धर्म नहीं लादा जा सकता। इसीलिए उन्होंने निश्चयत: मानव जाति की शारीरिक, सामाजिक, मानसिक तथा नैतिक सुख की प्राप्ति को आध्यात्मिक ज्ञान की पूर्वापेक्षाएँ बताया। आत्मा और आत्मोत्तर ज्ञान की उच्चकोटि की व्याख्या सुनने के पश्चात् दाँत-दर्द रोगी तो यही कहेगा-"भगवान् के नाम पर पहले मेरी दाँत की पीड़ा को दूर करो।

यह स्थिति सामान्य व्यक्ति की है। सामान्य व्यक्ति ही सामान्य समाज के बहुत का प्रतिनिधित्व करता है, इसीलिए समाज का बहुमत ही उनका वर्णित विषय है जिसको उन्हें जगाना और प्रेरणा देनी है। अतः स्वामी जी का साहित्य शिक्षाद, पथ-प्रदर्शक एवं विस्तृत ज्ञान से पूर्ण है। स्वामी जी द्वारा वर्णित विषयों का ज्ञान विश्व-ज्ञान से परिपूर्ण है। उनकी कृतियाँ प्रेरणा, व्यावहारिक ज्ञान एवं महत्वपूर्ण सूचनाओं का सार-संग्रह हैं।

परिणामतः स्वामी जी के साहित्य में महती विविधता रही है। 'जीवन में सफलता के रहस्य', 'विद्यार्थी-जीवन में सफलता', 'स्त्री-धर्म', 'पारिवारिक चिकित्सा', 'दैनिक जीवन में योग', 'दैनिक जीवन में वेदान्त', 'काव्य में गीतासार', 'प्रेरणादायक सन्देश', 'मन : रहस्य और निग्रह', 'योग के सरल सोपान' आदि पुस्तकें अपनी-अपनी विशिष्टता लिये हुए हैं। ये सब पुस्तकें विभिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न रुचियों, विभिन्न प्रकृति एवं आवश्यकताओं के अनुकूल हैं।

आज के शिवानन्द-साहित्य की पृष्ठभूमि में उसके विकास और स्वामी जी के अध्यवसाय का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें, तो एक सुनियोजित सुन्दर पद्धति आपको दृष्टिगोचर होगी। उनकी कृतियाँ स्वयं में एक विषय हैं जिसका अध्ययन रुचिकर होते हुए भी ज्ञानवर्द्धक और आनन्दप्रद है।

स्वामी जी ने मानव के शरीर, मन और आत्मा के उत्थान के लिए बौद्धिक ढंग से लक्ष्य की पूर्ति की है। हम जब उनकी कृतियों का निरीक्षण करते हैं, तो यह सब प्रत्यक्ष हो जाता है।

उन्होंने अपनी प्रारम्भिक सर्वप्रिय पुस्तकों में 'योगासन' की रचना करके शरीर-रक्षा के आदर्श को पुनर्जीवित कर प्रभावोत्पादक ढंग से राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत किया है। पुष्ट शरीर और सुन्दर स्वास्थ्य के महत्त्व को भली प्रकार जानते हुए स्वामी जी ने आसन-सम्बन्धी इस व्यावहारिक लाभदायक पुस्तक की रचना की है। उन्होंने स्पष्टतया लिखा है कि मानव का सर्वप्रथम कर्तव्य है

शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाना तथा स्वास्थ्य की रक्षा करना, भले ही वह संसारी हो या आध्यात्मिक पथ का पथिक हो।

सब उपलब्धियों का मूलाधार स्वास्थ्य है। 'ब्रह्मचर्य का अभ्यास', 'हठयोग' तथा 'यौगिक होम एक्सरसाइजिज़' (घरेलू यौगिक व्यायाम) ये तीन पुस्तकें लिख कर है, विशेषकर विद्यार्थियों में स्वास्थ्य-रक्षा के प्रति चेतना उद्‌भूत करने में उन्होंने वायी योगदान दिया है।

अब तक पतंजलि के अष्टांगयोग को ही महत्त्व दे कर आसन, प्राणायाम और सरिक क्रियाएँ हुआ करती थीं। स्वामी जी के बौद्धिक ढंग से समझाने से अष्टांगयोग के पक्षपात का निवारण हो गया। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। उन्होंने यौगिक छुवाओं को रोगों के आक्रमण से शरीर-रक्षा और स्वास्थ्य को सुन्दर रखने के साधन के रूप में स्वीकार किया है।

अब वे क्रियाएँ केवल भस्म रमाये हुए जटाधारी योगियों की ही सम्पत्ति नहीं हाँ, बल्कि देहात, नगर, शहर, युवक, वृद्ध, स्त्री सबने इनको अपनाया है। उपर्युक्त पुस्तकों में 'दि फैमिली डॉक्टर' (घरेलू दवाइयाँ) भी पारिवारिक चिकित्सा के रूप में हम्मिलित है; क्योंकि इसका उद्देश्य भी स्वास्थ्य का सुधार एवं रक्षा और राष्ट्र की शक्ति ३ स्वास्थ्य की वृद्धि करना है।

स्वामी जी ने अपनी अधिकांश कृतियों में नैतिक विचार और मानसिक शक्तियों के विकास की समुचित प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। 'मनः रहस्य और निग्रह' (Mind, Its Mysteries and Control) और 'योगाभ्यास' (प्रेक्टिस ऑफ योगा) तथा 'जीवन में सफलता के रहस्य' (Sure Ways for Success in Life) के पहले और पाँचवें अध्याय में मानसिक साधना का विस्तृत वर्णन किया है।

इन पुस्तकों के अध्ययन के उपरान्त एक पाठक लिखता है कि स्वामी जी की ये तीन पुस्तकें- 'Mind, Its Mysteries and Control' अर्थात् 'मन : रहस्य और निग्रह', 'Sure Ways for Success in Life' अर्थात् 'जीवन में सफलता के रहस्य' और 'Practice of Bhakti Yoga' अर्थात् 'भक्तियोग' - श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। इन अमूल्य रचनाओं का अध्ययन सब साधकों को करना चाहिए-चाहे वे लोकैषणा के इच्छुक हो अथवा वित्तैषणा के अथवा आत्म-साक्षात्कार के।

स्वामी जी ने अपनी प्रत्येक पुस्तक में आध्यात्मिक पक्ष का स्पष्ट वर्णन किया है। यह तो कहने की आवश्यकता नहीं, उनकी सब रचनाओं में चाहे वे बड़ी पुस्तकें हो या परिपत्र-यह तथ्य आधार रूप में निहित है।

पारम्परिक दृष्टिकोण से भी यदि रचनाओं का निरीक्षण किया जाये, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने भी आत्म-साक्षात्कार के लिए चली आ रही परिपाटी के अनुसार चार मुख्य विधियों का बोधगम्य ढंग से वर्णन किया है। इन चार भागों से अभिप्राय ज्ञान-ज्योति की प्राप्ति हेतु हिन्दू-धर्म के चार महान् व उच्चकोटि के मा है। प्राचीन काल के महान् ज्ञानियों की दृष्टि में ये चारों ही सर्वमान्य पथ हैं जो मान को सदा के लिए प्रदान किये गये।

उनकी 'Practice of Karma Yoga' अर्थात् 'कर्मयोग का अभ्यास', 'Praete of Bhakti Yoga' अर्थात् 'भक्तियोग', 'Practice of Vedanta' अर्थात् 'वेदान क

अभ्यास', 'Practice of Raj Yoga' अर्थात् 'राजयोग का अभ्यास' और 'Practice of Kundalini Yoga' अर्थात् 'कुण्डलिनी योग का अभ्यास' पुस्तकें स्थायी प्रभाव रखती हैं, ऐसा मेरा निश्चित मत है। ये इतनी अमूल्य रचनाएँ हैं, जिन्होंने आज के संसार में स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है।

मुझे विश्वास है कि आगामी पीढ़ियाँ भी बहुत अधिक अंश तक इससे लाभान्वित होती रहेंगी। चार मार्गों में से किसी एक मार्ग की उपलब्धि हेतु प्रत्येक पुस्तक अपने में पाठ्य-पुस्तक के रूप में सम्पूर्ण है। इन रचनाओं में स्वामी जी ने विशेष परिश्रम किया है। योग के विशेष अभ्यास के लिए जिज्ञासु आदि से अन्त तक आवश्यक निर्देशों से अवगत हो जाता है। उसे फिर किसी अन्य पुस्तक या शास्त्र के अध्ययन की अपेक्षा नहीं रहती।

इनमें से प्रत्येक रचना स्वयं में सर्वोत्तम शास्त्र है। उसमें मूल विषय एवं स्वामी जी के व्यक्तिगत अनुभवों का सारतत्त्व वर्णित होता है। पुस्तकों में वर्णित स्वानुभूतियाँ- सुझावों, बहुमूल्य संकेतों तथा व्यावहारिक अनुदेशों के रूप में- हमारी सहायतार्थ प्रस्तुत की गयी हैं। वे विशिष्टताएँ स्वामी जी की चार-पाँच स्मरणीय पुस्तकों का महत्त्व बढ़ा देती हैं।

आत्म-साक्षात्कार के इन चारों मौलिक योगों की पूरक व्याख्या उन्होंने नये विचारों से संयुक्त, व्यवस्थित ढंग से (कई पुस्तकों में) लिखी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'वेदान्त का अभ्यास' (Practice of Vedanta) की पुष्टि 'उपनिषदों के संवाद' (Dialogues from the Upanishadas) एवं 'दैनिक जीवन में वेदान्त' (Vedanta in Daily Life) द्वारा हुई है।

'भक्तियोग' की व्याख्या के लिए केवल 'भक्तियोग का अभ्यास' (Practice of Bhakti Yoga) ही नहीं लिखा, बल्कि दो और पुस्तकों की रचना भी की। वे है 'भक्ति और संकीर्तन' तथा 'भजन-संग्रह' (Inspiring Songs and Kirtans) राजयोग के विस्तृत ज्ञान तथा बौद्धिक व्याख्या के लिए 'हठयोग' और 'प्रणायाम-साधना' पुस्तकें सामने आयीं। 'कर्मयोग-साधना' के लिए 'दैनिक जीवन में 'योग-साधना' की रचना कर लौकिक जीवन-यापन के साथ-साथ आध्यात्मिक अथवा दिव्य जीवन-यापन का परामर्श दिया है।

साधना-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना के उपरान्त रचयिता ने हिन्दू-धर्म हे तीन मुख्य एवं आधिकारिक मूल सिद्धान्तों का वर्णन प्रस्थानत्रय है-उपनिषद्, संता और ब्रह्मसूत्र में किया है। दश प्रमुख उपनिषदों की व्याख्या स्वामी जी ने दो भागों इकी है। तीसरी पुस्तक में प्रणव-दर्शन को समझाने के लिए माण्डूक्योपनिषद् की सरल शब्दों में व्याख्या की है।

इन रचनाओं को पण्डित और विद्वानों के गुण-दोष-विवेचन के लिए नहीं रचा तया, अपितु एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी इनके अध्ययन द्वारा उपनिषदों का परिचय प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद भी सुन्दर व्याख्या सहित किया है। आजकल वे प्रस्थानत्रय के तीसरे परन्तु कठिन विषय 'ब्रह्मसूत्र' की व्याख्या लिखने में व्यस्त हैं।

चार मार्ग एवं परमोच्च साक्षात्कार नामक भारतीय संस्कृति का दूसरा संग्रहालय समझा जाता है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने पुराणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। परम पावन श्रीमद्भागवत महापुराण का सारतत्त्व 'श्रीकृष्ण और उनकी लीलाएँ' (Lord Krishna His Lilas and

Teachings) चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीकृष्ण-उद्धव के हृदयग्राही संवाद को सारांश-रूप तथा भागवत-धर्म के तत्त्व के रूप में प्रस्तुत करने के लिए सरल, नवीन तथा उच्चकोटि की भाषा-शैली को अपनाया है।

'Essence of Ramayana' (रामायण-सार) में वाल्मीकि के अमर काव्य 'रामायण' की शिक्षाओं को पाठकों के लिए प्रेरणाप्रद बनाने का पूरा प्रयास किया है। रामायण के भव्य पात्रों के आदर्श चरित्र-चित्रण में लेखक ने स्पष्ट पर भावग्राही वर्णन का आश्रय लिया है।

एक अन्य पुस्तक 'महाभारत की कहानियों' (Stories From the Mahabharata) में दार्शनिक एवं नीतिपूर्ण शिक्षाओं का संकलन किया गया है। इस रचना में वीर योद्धाओं के शौर्यपूर्ण जीवन, मानवेतर शौर्य, अविस्मरणीय करुणा, साहस, आत्म-बलिदान और स्वामी-भक्ति जैसी गाथाओं का समावेश किया है जिनका वृत्तान्त महाभारत के महाकाव्य में आया है।

'अमृत-मन्थन' की पौराणिक गाथा का नवीन ढंग से प्रस्तुतीकरण करके सा जी ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। विश्व-प्रेम से ओत-प्रोत आधुनिक द्रष्टा ने वेदों, श्रुतियों, पुराणों तथा सभी धर्मों के प्रमुख धर्म-ग्रन्थों का मगर कर नवनीत-सार को अमृत-रूप में पृथ्वी के प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ कर दिया।।।

संस्कृत के स्तोत्रों का सुन्दर संग्रह 'स्तोत्र-रत्नमाला' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें श्री शंकराचार्य जी की 'आनन्द-लहरी' का अविकल एवं सटीक अनुवाद हुआ है। प्रेरणादायक एवं दर्शन-तत्त्व से पूर्ण योगवासिष्ठ की सुन्दर गाथाओं का संकलन भी स्वामी जी ने किया है। इस प्रकार स्वामी जी ने हिन्दू-दर्शन के प्रमुख तत्वों, प्रमुख हिन्दू-धर्म-शास्त्रों और हिन्दू-धर्म के चार मौलिक योगों-इन सभी का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। किसी ग्रन्थ को अछूता नहीं छोड़ा है। उन्होंने इस विषय-सामग्री को विशिष्ट एवं व्यवस्थित ढंग से अपनी रचनाओं में दर्शाया है।

अब स्वभावतः यह जानने की उत्सुकता होती है कि स्वामी जी ने किस विधि-विशेष को अपना कर भिन्न-भिन्न पाठकों के विभिन्न स्वभाव एवं रुचि के अनुसार अपने साहित्य की रचना की है? उनका साहित्य सार्वभौमिक रूप से ग्रहण करने योग्य है। सांसारिक जीवन के संघर्ष में रत हर प्रकार के साधक की विलक्षण ढंग से जो सेवा स्वामी जी ने अपनी कृतियों द्वारा की है, उसका विश्लेषण उनकी पुस्तकों के द्वारा ही करने का प्रयास करना होगा।

शिवानन्द-साहित्य द्वारा सभी प्रकार की रुचियों और प्रकृति के व्यक्तियों को साधना और आध्यात्मिक जीवन-सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति उनकी हार्दिक अभिलाषा के अनुसार ही हो रही है। निष्काम कर्मयोगी, भक्त, वेदान्ती और योग के साधक सभी स्वामी जी की पुस्तकों से व्यावहारिक ज्ञान द्वारा लाभान्वित होते हैं। स्वामी जी की कर्म, भक्ति, ज्ञान और राजयोग-सम्बन्धी रचनाएँ सभी साधकों की-चाहे वे भक्त हो, चाहे ज्ञानी, चाहे बुद्धिजीवी अथवा कर्मयोगी-आवश्यकताओं की समान रूप से पूर्ति करती है।

'आध्यात्मिक शिक्षण' (प्रथम एवं द्वितीय भाग) पुस्तक में दी गयी आध्यात्मिक शिक्षाएँ, 'दैनिक जीवन में योग-साधना' (Yoga in Daily Life), 'योग के सरल सोपान' (Easy Steps in Yoga), 'जपयोग-साधना' (Japa Yoga) आदि पुस्तकें भी व्यस्त गृहस्थियों के

लिए सरल, शिक्षाप्रद और उपयोगी सिद्ध हुई हैं। 'जपयोग-साधना' की रचना तो मानव-जाति के लिए वरदान-स्वरूप है जिसके लिए मानव उस प्रेरक रचयिता के लिए अनन्त काल तक आभारी रहेगा। आज के युग के दायित्व-भार से दबे गृहस्थी के लिए आत्मसाक्षात्कार हेतु सतत दिव्य नाम-स्मरण की एवं सरलतम विधि के आदर्श साधन के रूप में 'जपयोग-साधना' प्रदान की है।

त्रियोपयोगी चार पुस्तकें है- 'स्त्री-धर्म', 'घरेलू दवाइयाँ' (Family Doctor), रामायण-सार' तथा 'भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाएँ'। इन पुस्तकों में आदर्श गृहलक्ष्मी बनने की शिक्षाओं के साथ-साथ बच्चों को सुशिक्षित बनाने एवं आध्यात्मिकता के बीज बोने के निर्देश दिये हैं। भक्तिमती भारतीय गृहलक्ष्मी के लिए दो पुस्तकें 'स्तोत्र-रत्नमाला' तथा 'प्रार्थना-मंजरी' प्रेरणाप्रद एवं सफल मित्र सरीखी है। नव प्रकाशित 'संगीत-रामायण' तथा 'संगीत भागवतम्' सभी स्त्री, पुरुष तथा बच्चों के लिए रत्नों की निधि तुल्य संग्रहणीय हैं।

आज का तरुण एवं विद्यार्थी वर्ग कुछ ही पीढ़ियों के अपने पूर्वजों से भिन्न दृष्टिकोण रखता है। सभी विषयों को आँकने का एक भिन्न दृष्टिकोण है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में वह आँख पर पट्टी बाँध कर नेतृत्व का अनुकरण नहीं करना चाहता। स्वीकारने से पूर्व वह सभी विषयों की बौद्धिक स्तर पर जाँच करना चाहता है। वह किसी भी साधना को दैनिक जीवन में क्रियान्वित करने के प्रत्यक्ष प्रमाण को देखना चाहता है।

क्षुधार्त ब्राह्मण की कहावत के अनुसार स्वामी जी की कृतियाँ कटे फल की तरह बुवा साधकों के अंग में गिर पड़ती हैं अर्थात् बिना परिश्रम के अभीष्ट साधन की प्राप्ति हो जाती है। उनकी रचनाओं की इन विशिष्ट विशेषताओं के बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विधि से विषय की व्याख्या जो व्यावहारिक सामान्य बुद्धि, सहानुभूति एवं परिज्ञान से परिपूर्ण है-कारण ही आज का युवावर्ग स्वामी जी की खोज में रहता है तथा स्वास्थ्य, व्यक्तिगत समस्याओं और आध्यात्मिक साधना-सम्बन्धी मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहता है।

अत: 'जीवन में सफलता के रहस्य' (Sure Ways for Success in Life), 'योगासन' (Yoga Asanas) और 'ब्रह्मचर्य-साधना' (Practice of Brahmacharya) के अध्ययन के लिए किसी भी विद्यार्थी को चूकना नहीं चाहिए। ये पुस्तकें प्रत्येक विद्यार्थी के पास होनी चाहिए, क्योंकि ये रचनाएँ गम्भीर दर्शन की व्याख्या न करके जीवन-यापन के लिए सन्मार्ग दर्शाती हैं।

इन कृतियों में स्वामी जी का प्रमुख उद्देश्य सबको स्वस्थ, शकि मुद्धिमान् एवं समृद्ध बनाना है। विशेषतया 'जीवन में सफलता के रहस्य' (for Success in Life)) जैसी अनुपम पुस्तक तो भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति दिव्य आध्यात्मिकता के भव्य तत्त्वों द्वारा मानव को सर्वगुण-सम्पत्र बनने के उत्साहित करती है।

स्वामी जी की ब्रहाचर्य विषय पर अतुलनीय रचना 'ब्रह्मचर्य-साधना' पर यहाँ पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालना चाहता हूँ। इसकी व्याख्या का आधार बौदिक है। शरीर तथा स्वास्थ्य-विज्ञान, आन्तरिक, मानसिक तथा भावात्मक पक्ष की व करते हुए इसमें (ब्रहाचर्य-साधना में) विभिन्न प्रयोगों-शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक की स्पष्ट व्याख्या की है।

इन्द्रिय-निग्रह के अनेक रूपों में सफलता प्राप्त करने के लिए लेखक ने अनेक ढंग बताये हैं; जैसे सादा और सहज-स्वाभाविक जीवन-यापन, भोजन-सामग्री का ध्यानपूर्वक चयन, संगति में विवेकपूर्वक रहना, अध्ययन और मनोरंजन, दुर्व्यसनों का मूलोच्छेदन, विचारों का शुद्धीकरण, नवीन विचारशील दृष्टिकोण, आसनों का नित्यप्रति अभ्यास, आसन-विशेष पर बल देना, मुद्राएँ, क्रियाएँ एवं प्राणायाम में निपुणता प्राप्त करना आदि।

मनोविज्ञान का भी समुचित उपयोग किया गया है। सद्विचारों, आत्म-सुझावों, सकारात्मक तथा विकासोन्मुखी प्रयोगों द्वारा पाठक को अपनी शक्ति के समुचित उपयोग के लिए इन्द्रिय-निग्रह तथा शक्ति-संचय का निर्देश दिया है। ध्यानाभ्यास, जप और प्रार्थना का समर्थन बौद्धिक व्याख्या के आधार पर किया गया है। 'ब्रह्मचर्य' की महत्ता पर अपूर्व बल दिया गया है; क्योंकि यही तो वास्तविक तथा महान् विधि है। निस्सन्देह 'ब्रहाचर्य-साधना' की बौद्धिक व्याख्या पर पहले कभी इतना बल नहीं दिया गया।

स्वामी जी की उपर्युक्त कृति की विस्तृत व्याख्या का विशेष कारण है। इसको साधारण समझ कर कोई इसकी उपेक्षा भी कर सकता है; क्योंकि आकार और मूल्य में यह साधारण-सी ही है, पर मेरे विचार में यह पुस्तक अपने विषय के कारण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह समस्त उपलब्धियों का आधार है। ब्रह्मचर्य के बिना प्रगति तथा सफलता के प्रयत्न विफल हो जाते हैं। इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। इसका प्रशिक्षण आधुनिक भारत की ज्वलन्त माँग है।

आज के भारत के युवा कल के राष्ट्र के कर्णधार हैं। आज की बुद्ध से पीड़ित पीढ़ी के उपरान्त इन्हें ही बागडोर संभालनी है। अतः ब्रहाचर्य की शक्ति ही इनको भविष्य के कष्टसाध्य कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने की क्षमता देगी। भारत के युवावर्ग को शक्तिशाली, उत्साही, शुद्ध-हृदयी तथा आत्म-विश्वासी बनाने में स्वामी जी का यह महत्वपूर्ण योगदान है। अतः आशा है कि सभी माता-पिता, सभी शिक्षक गण, सभी उपदेशक तथा समस्त विद्यालय, कालेज, पुस्तकालय तथा वाचनालय इस पुस्तक को लेकर और रख कर गौरव का अनुभव करेंगे।

एक बार जब मैं नवयुवकों की आवश्यकताओं के विषय में सोच रहा था, तब एक विचार मेरे मस्तिष्क में कौंधा। कई बार ऐसा घटित होता है, जब व्यक्ति माँगता है रोटी और उसको मिलता है पत्थर!

उपहार देने के अवसरों पर जैसे जन्म-दिवस, नव-वर्ष, विवाह तथा उपनयन-संस्कार भी हमारा चुनाव श्रेष्ठ पुस्तकों की ओर ही होना चाहिए। सिल्क की कमीज, सर्ज का कोट, कलाई की घड़ी, फाउण्टेनपैन तथा अन्य अर्थहीन उपहारों से पुस्तकों का उपहार हजारगुना अच्छा है। शेष वस्तुएँ तो कभी भी खरीदी जा सकती हैं। ऐसी वस्तुएँ सदैव मनुष्य को मोहित करती हैं तथा छलती हैं। भला हो आज की यन्त्रवत् सभ्यता का और लुभावने विज्ञापनों की कला-चातुरी का!

'जीवन में सफलता के रहस्य' (Sure Ways for Success in Life), 'ब्रह्मचर्य-साधना' (Practice of Brahamcharya), योगासन (Yoga Asanas) तथा 'योग-साधना' का दूसरा भाग पुस्तकों जैसे अमूल्य उपहार आजीवन उपयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि जिसको भी यह उपहार मिलेगा, वह अवश्यमेव जीवन पर्यन्त आभारी रहेगा। विद्यालयों में भी वार्षिकोत्सव के

अवसर पर यदि पुस्तकों के ही पुरस्कार वितरित किये जायें, तो पुरस्कार का मूल्य भी सैकड़ों गुना बढ़ जाता है।

अन्त में 'Inspiring Messages' अर्थात् 'प्रेरणादायी सन्देश' की रचना कर स्वामी जी ने प्रत्येक वर्ग के स्त्री-पुरुषों के लिए लाभदायक संकेत, सुझाव, निर्देश तथा शिक्षाएँ दी हैं। इस पुस्तक में डाक्टर, वकील, शिक्षक, माता-पिता, बिबाहित, अविवाहित, वानप्रस्थी, संन्यासी, सेवा निवृत्त व्यक्ति, नारी-वर्ग, साधक गण, नास्तिक एवं रोगी आदि सभी के लिए शिक्षाप्रद सन्देश निहित हैं।

स्वामी जी की रचनाओं की विविधता व विशेषता भी उल्लेखनीय है। शिवानन्द-साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि एवं हित का एकाध अनुच्छेद अवश्यमेव मिल जाता है। सच्चे साधकों तथा आध्यात्मिक एथ के पथिकों के लिए तो उसमें आध्यात्मिक अनुभव एवं ज्ञान का मानो स्रोत ही भरा पड़ा है। आत्यन्तिक सत्य को दृष्टान्तों एवं कथाओं द्वारा समझने के आकांक्षी व्यक्ति के लिए भी दो परमोपयोगी पुस्तकें हैं- 'दार्शनिक कथाएँ' एवं 'योगवासिष्ठ की कथाएँ। उन कृतियों में धर्म और दर्शन को बड़ी सरल, स्पष्ट एवं रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। गम्भीर विषयों में रुचि न रखने वाले लोगों के लिए ये पुस्तकें बड़ी ही लाभप्रद हैं। वे दो लघु पुस्तकें रोचक और शिक्षाप्रद होती हुई भी जीवन के चरम सत्य को प्रभावोत्पादक शैली में समझाती हैं।

'Lives of Saints' अर्थात् 'सन्तों के जीवन-चरित्र' में महात्माओं के जीवन के संक्षिप्त वृत्तान्तों द्वारा भक्त लोगों को दिव्य जीवन-सम्बन्धी रोमांचकारी घटनाओं और उपाख्यानों से अवगत कराया गया है। सन्तों के जीवन-यापन को अपना आदर्श मानने वालों के लिए यह रचना बहुत ही प्रेरणाप्रद है। इस लघुकाय पुस्तक में स्वामी जी ने प्राचीन भक्तों के जीवन को आकर्षक एवं प्रोन्नतकारी सरल एवं स्पष्ट शैली में प्रस्तुत कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया है। उनकी यह सफलता निश्चय ही स्पर्धा का विषय है।

रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इसीलिए स्वामी जी ने कुछ लोगों की रुचि के अनुकूल बनाने के लिए धर्म के विवेचन को वार्तालाप के रूप में 'Dialogues from the Upanishadas' and 'Conversations in Yoga' (उपनिषदों के संवाद तथा यौगिक वार्तालाप) पुस्तकों में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की रचनाओं की यह विशेषता है कि इनमें प्रश्नोत्तर-शैली को अपना कर साधकों की समस्याओं और शंकाओं का समाधान बड़े सुन्दर रूप से दर्शाया है। जिज्ञासुओं द्वारा किये गये अनेक प्रश्नों को उत्तर सहित साधकों तक पहुँचाने के लिए इस पुस्तक की रचना की गयी है।

प्रेरणाप्रद पत्रों का क्रमबद्ध संग्रह स्वामी जी की कृतियों का पाँचवाँ प्रकार है। यह भी उनकी अमूल्य कृतियों में से एक है; क्योंकि इसमें देश-भर के प्रत्येक भाग से भिन्न-भिन्न रुचियों के व्यक्तियों के पत्र एवं स्वामी जी द्वारा दिये गये उनके उत्तर संकलित हैं। इसमें संशय-निवारण, समस्याओं का समाधान, कठिनाइयों का निराकरण, उपचारों के सुझाव, परामर्श एवं प्रेरणाप्रद शिक्षाओं का समावेश स्वतः ही हो गया है।

स्वामी जी ने काव्य-पक्ष की भी उपेक्षा नहीं की है। गद्य की अपेक्षा काव्य की विशेषता यह है कि विचारों एवं भावों को हम संक्षिप्त एवं सामासिक शब्दावली द्वारा महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत कर सकते हैं। कई पाठकों को यह शैली विशेष रूप से रुचिकर लगती है। अतः 'गीतासार' काव्य रूप में तथा 'संगीत-लीला-योग दर्शन और योग कविताओं में' तथा 'प्रेरणादायक भजन'- ये पुस्तके उपर्युक्त विषय की सम्पूर्ति करके अनोखे और आकर्षक रूप में हमारे सामने आयी हैं।

दो लघु नाटकों के लिए भी हम स्वामी जी के आभारी हैं। इनके नाम हैं-'ब्रह्मचर्य ड्रामा'। यह चार अंगों का उद्बोधक नाटक है तथा दूसरा है 'दिव्य जीवन' जो एक सुन्दर लघु एकांकी है। 'ब्रह्मचर्य ड्रामा' प्रेरणादायक, उत्साहप्रद तथा प्रभावशाली होने के कारण सभी विद्यालयों एवं युवा संस्थाओं द्वारा अभिनीत करने दोय है। रूढ़िवादी पक्ष का होते हुए भी इसमें ओजपूर्ण शैली में असत् पर सत् की विजय दर्शायी गयी है।

'योग और वेदान्त पर प्रवचन' (Lectures on Yoga and Vedanta) का विषय अन्य पुस्तकों की अपेक्षा अधिक गम्भीर है। नीले आवरण की इस पुस्तक में संकलित विषय क्लिष्ट साहित्य अवगाहन करने वाले पाठकों की रुचि के अनुकूल है।

एक पुस्तक की चर्चा मैंने अन्त में ही करना उचित समझा है; क्योंकि इसे मैं हर तरह से एक विलक्षण कृति मानता हूँ, इसमें स्वामी जी के व्यक्तित्व और जीवन के कुछ पक्ष गहरे स्वर में अभिव्यंजित हैं। इस कृति का नाम है 'How to Get Vairagya?' (वैराग्य की प्राप्ति कैसे हो?)। यह मुद्रित रूप में वैराग्य विषयक एक स्मारक है। इस पुस्तक के पृष्ठों में शाक्य वंश के एक राजकुमार सिद्धार्थ को राजमहलों से पावन वट-वृक्ष की ओर खींच ले जाने वाली महान् त्याग और वैराग्य की सूक्ष्म शक्ति को अनिर्वचनीय ढंग से अंकित किया गया है।

यह पुस्तक शिक्षित अज्ञानियों और भौतिकवाद के दुर्ग पर एक सशक्त प्रहार है। आधुनिक युग के अज्ञानान्धकार से काँपती हुई दीवारों पर, स्पष्ट शैली में, इन पृष्ठों द्वारा मूक एवं प्रच्छन्न रूप से आक्रमण किया गया है। मैं भी हर समय इस पुस्तक का स्वाध्याय करता हूँ। मुझे इसके प्रत्येक शब्द में एक प्रभावशाली गरजता हुआ नाद सुनायी देता है। किसी एक पाठक के हाथ में जब तक यह एक भी पुस्तक रहेगी, तब तक गरजना निरन्तर सुनायी देती रहेगी।

मन की धूर्तता, कुटिलता तथा चातुरी, प्रत्येक क्षण मानव को अपनी कल्पनाओं से भ्रमित करने की विधि, इन्द्रियों की सर्वथा अविश्वसनीयता, उनकी कामनाओं और प्रलोभनों का मिथ्या स्वरूप, सब विषयों की नश्वरता, दृश्य जगत् की क्षणभंगुरता- इन सब बातों को प्रभावोत्पादक शैली में हमारे मस्तिष्कों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। जगत् की नश्वरता की तीव्र भावना मन को नित्य एवं अविनाशी तत्व की खोज के लिए प्रेरित ही नहीं करती, अपितु उस तत्त्व में विलीन हो जाने की उत्कण्ठा हो जाग्रत करती है।

मेरी उत्कट इच्छा है कि 'वैराग्य की प्राप्ति कैसे हो?' (How to Get Var) पुस्तक का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हो। यह ऐसी कृति है जिसके किसी-न-किल्ले अंश का पाठ अनौपचारिक सभाओं तथा गोष्ठियों में अवश्य होना चाहिए। माया के विभिन्न रूपों व उसके चरित्र का सविस्तर उद्घाटन स्वामी जी की इस कृति की अद्भुत देन है। इसीलिए यह एक महान् कृति

है। भले ही इस विषय पर और पुस्तके भी उपलब्ध हों; किन्तु किसी ने भी इस विषय पर इतनी पूर्ण एवं प्रभावशाली व्याख्या नहीं की है।

उनके अनवरत श्रम से जिज्ञासु जनता के लिए हर प्रकार के साहित्य का सृजन हुआ है। साहित्य की कोई भी विधा उनके कर कमलों से अछूती नहीं रही। सभी विषयों-मौलिक ग्रन्थ, संवाद, कथाएँ, उपकथाएँ, नाटक, कविताएँ, भाषण, सन्देश और गीत, चरित्र-निर्माण, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा, शारीरिक व्यायाम, स्वास्थ्य- विज्ञान, मनोविज्ञान, औषधि-विज्ञान, निष्काम सेवा, भक्ति, उपासना, संकीर्तन- विज्ञान, जप और अनुष्ठान के पुरश्चरण, प्राणायाम, आसन, षक्रिया, हठयोग, पतंजलि का अष्टांगयोग, शंकर का 'केवलाद्वैत वेदान्त', दैनिक जीवन में वेदान्त का व्यावहारिक रूप, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, स्त्री-धर्म आदि विषयों की निश्चयात्मक रूप से प्रतीति कराते हैं।

इस सूची को देखते हुए इसमें आश्चर्य की क्या बात है जो श्री मसूरी शमशेर ने स्वामी जी को एक पहेली की संज्ञा दी; क्योंकि स्वामी जी ने हिन्दू-धर्म के प्रामाणिक शास्त्रों का सार ही नहीं दिया, अपितु विश्व-भर के सन्तों के जीवन-चरित्र को भी लेखबद्ध किया है। हर वर्ग के स्त्री-पुरुष के लिए उपाख्यानों की रचना की है। साहित्य की सभी विधाओं में- आख्यान, काव्य, नाटक एवं संवाद-अपने साहित्य का प्रवाह बहाया है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व पुरुषों द्वारा की गयी धार्मिक साहित्य की अपूर्णता व अर्ध-पूर्णता को स्वामी जी ने अपनी रचनाओं में तर्कसंगत पूर्णता में परिणत कर दिया है।

सौभाग्य का विषय है कि राष्ट्र के विचारशील लोग उनकी कृतियों के महत्त्व को पहचान रहे हैं। परिणामतः ये कृतियाँ अब सर्वप्रिय हो गयी हैं। आध्यात्मिक जीवन-यापन और साधना-सम्बन्धी स्वामी जी के विचारों का केवल समकालीन भारतीयों पर ही नहीं, विदेशियों पर भी अप्रतिम प्रभाव पड़ा है।

(२)

स्वामी जी की कृतियों के विषय में जो कुछ भी लाभप्रद तथा रोचक रूप मैंने अवलोकन किया, उसे पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य के महत्त्व की एक और विशेषता है जिसे सम्भवतः किसी और ने न देखा हो। मेरा आशय उनकी पुस्तकों के आकार-प्रकार, विषय-विन्यास तथा साज-सज्जा से है। उनकी रचनाएँ सूक्ष्माकृति में उनकी योजना एवं कृतियों की विविधता को दर्शाती हैं। परिणामतः एक विशेष विषय की पुस्तक में भी ऐसे सामान्य उपविषय होंगे जिससे भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले पाठकों की रुचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो जायेगी।

समर्पण की परिपाटी-जिसको स्वामी जी असाधारण शैली में लिखते हैं-के पश्चात् कुछ संस्कृत के सुन्दर श्लोक अँगरेजी अनुवाद-सहित लिखे मिलते हैं जिससे पाठक को बड़ा आनन्द व प्रेरणा मिलती है। पृष्ठ पलटते ही ईश-स्तवन अथवा मातृ-शक्ति की सुन्दर प्रार्थना होती है। उनकी प्रत्येक पुस्तक में आप सदैव ऐसी मधुर एवं आत्ममयी अभिव्यक्ति पायेंगे।

इसके पश्चात् उनके हस्तलिखित प्रेरणाप्रद पत्र की मुद्रित प्रतिलिपि भी होती है। भूमिका में पाठक को जाग्रत होने और कर्मशील बनने का आग्रह एक प्रभावशाली भाषण के रूप में होता है। फिर पुस्तक का मुख्य भाग प्रारम्भ होता है। मूल विषय से सम्बन्धित विविध आध्यात्मिक पहलुओं पर विभिन्न अध्याय होते हैं।

पुस्तक का समापन करने की भी स्वामी जी की अपनी ही शैली है। इसमें कई परिशिष्ट होते हैं जिसका अभिप्राय साधकों को विशेष सन्देश या स्त्रियोपयोगी उपदेश तथा दिव्य जीवन के विधि-निषेध को लेखबद्ध करना होता है। 'योग-माला' के अन्तर्गत प्रश्नोत्तर-माला होती है। सामयिक महात्माओं का संक्षिप्त परिचय, आध्यात्मिक दैनन्दिनी तथा संकल्प-पत्र का भी समावेश होता है।

पुस्तक के अन्दर कहीं ओजपूर्ण काव्यमय गद्य भी लिखा होता है तथा कहीं स्वामी जी के कथनों का चयन भी अंकित होता है। कुछ तथ्य वर्णमाला के क्रमानुसार वर्णित होते हैं। ऐसी सुन्दर व्यवस्था विशेष रूप से उपयोगी है; क्योंकि इसमें मुख्य आदेश-निर्देशों को स्मरण रखने का सरल एवं सुन्दर ढंग निहित है।

निष्कर्ष यह है कि स्वामी जी की एक ही पुस्तक अपने में पूर्ण पुस्तकालय है क्योंकि इसमें विविध रूपों का समावेश होता है-जैसे स्तोत्र, उद्बोधन, प्रार्थना, प्रेरणादायक एक-दो पत्र, दो जीवन्त सन्देश, भूमिका या आमुख में छोटा-सा भाषण, विशेष शिक्षा, कविता, वर्णमाला-क्रमानुसार योग-वर्णमाला, विधि-निषेध, सन्तों का जीवन-चरित्र और सूत्र आदि।

(३)

एक बार एक वाचाल ने अपने परिचित से, जो हँसमुख भगवद्भक्त था, यह पूछा-"आपके देवता के अनन्त मुख और अनन्त हाथ क्यों दिखाये जाते हैं?" भक्त ने संयत हो कर उत्तर दिया-"क्या तुम नहीं जानते कि संसार-भर के लाखों लोग, लाखों वस्तुओं की माँग ले कर उनके सामने दिन-रात याचना करते हैं। करुणा-वरुणालय भगवान् भक्तों की प्रार्थना के पूर्व ही कृपावृष्टि कर देते हैं। यदि वे केवल दो हाथों से उनकी आवश्यकताओं की वस्तु देते, तो प्रलय-काल तक देने के काम में ही समय बीत जाता। अतः अपनी दया को लुटाने तथा सबके सब मनोरथ पूर्ण करने के लिए ही उनको अनन्त हाथ धारण करने पड़ते हैं। अब भी आप समझ पाये कि नहीं ?"

अब भी स्वामी जी घोर परिश्रम के द्वारा देश-भर में पुस्तकों की बाढ़ ला कर सहस्रों व्यक्तियों को सफलतापूर्वक जाग्रति और ज्ञान का सन्देश दे कर भी सन्तुष्ट नहीं हुए। ऐसी आध्यात्मिक साहित्य-सेवा एक सामान्य व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर की बात है। दश वर्षों की अल्पावधि में स्वामी जी ने इतना अधिक कार्य किया जो दश जन्मों में भी कोई नहीं कर सकता।

अपने दीन-हीन भाइयों को तृप्त करने की लालसा से उन्होंने और भी संक्षिप्त साहित्य की रचना की है। उनका विचार है कि बड़ी-बड़ी पुस्तकें सम्भवतः सब तक न पहुँच पायें; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पुस्तकों को खरीदने में समर्थ नहीं होता अथवा किसी पुस्तकालय का सदस्य भी नहीं बन सकता। एक औसत वर्ग का श्रमिक अपनी छोटी-सी गृहस्थी का जीवन-निर्वाह ही कठिनाई से

कर पाता है। ऐसे व्यक्तियों के लिए स्वामी जी ने छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें सदाचार, साधना एवं सेवा का सार है। यह साहित्य निःशुल्क वितरण के लिए है।

बहुमूल्य पुस्तकों को प्रसाद रूप से वितरण करने के काम को संस्था के कार्यकर्ताओं ने नि:शुल्क रखा है। इस प्रकार के ज्ञान-दान अथवा ज्ञान-यज्ञ को स्वामी जी बहुत महत्व देते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव जनता पर असाधारण रूप से पड़ा है। देश के सुदूर भागों में इसका प्रसार अप्रत्याशित रूप से हुआ है। उनके व्यावहारिक उपदेश, मुद्रित पत्रक के रूप में आध्यात्मिक ज्ञान की मसाल ले कर, जगत् के कोने-कोने में जा कर अज्ञानान्धकार का विनाश करने में पूर्णतया सफल हुए हैं, दिव्य जीवन-यापन के लिए नयी दिशा जनता को मिली है।

एक समय एक दर्शनार्थी स्वामी जी से बोला- "आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का आपका ढंग निश्चय ही आश्चर्यजनक है। 'शंकरन नायर' (विशेष रूप से वह पाश्चात्य जगत् के विषय में चर्चा कर रहा था) के 'काफी क्लब' की तरह आपके भी आध्यात्मिक पत्रक सर्वत्र फैल चुके हैं। जहाँ-कहीं भी मैं गया, दिव्य जीवन संघ की पुस्तकें वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं।"

कहा जाता है कि जब चन्द्रमा में विद्यमान स्वर्णागार पर चर्चा हो रही थी, तो एक आदमी ने जोर दे कर इसे असम्भव बताया। उसके इस निश्चयात्मक वक्तव्य पर प्रश्न करने पर उसने तत्काल उत्तर दिया- "मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि चन्द्रमा में स्वर्ण नहीं है; क्योंकि यदि वहाँ स्वर्ण होता तो अँगरेज पहले से ही वहाँ उपस्थित होता।" इसी प्रकार जहाँ-कहीं भी जप, कीर्तन, आसन, प्राणायाम, गीता का स्वाध्याय तथा लिखित जप का आध्यात्मिक रूप से अभ्यास हो रहा हो, तो हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि वहाँ दिव्य जीवन संघ की पत्रिका विद्यमान है।

'दिव्य जीवन' पत्रिका द्वारा अपने सुन्दर व उत्तम लेखों में स्वामी जी अपना सन्देश सामान्य, व्यस्त और अल्प आय वाले व्यक्ति तक पहुँचाने में सफल रहे हैं। इस पत्रिका का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह सबके लिए प्राप्य है-चाहे वह २००० रुपये मासिक आय वाला अफसर है अथवा १० या १२ रुपये मानसिक आय वाला बस-कण्डक्टर अथवा होटल का नौकर।

इस पत्रिका तक ही स्वामी जी की आध्यात्मिक सेवा सीमित नहीं है; अपितु दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाओं के लिए, भी वे लेख लिख कर भेजते रहते हैं। उन्होंने लेख अथवा सन्देश भेजने की प्रार्थना को आज तक नहीं ठुकराया। नयी 'ज्ञान-सूर्य-माला' जन-जाग्रति के लिए उत्साहवर्धक तथा अति-उपयोगी है। उनकी उर्वर लेखनी से रचित ये अनेकों रचनाएँ आध्यात्मिक धनुष के तूणीर से निकले शक्तिमान तीर सरीखी हैं जिनका एकमात्र लक्ष्य अविद्या, माया, अन्धकार, निराशावादिता, नास्तिकता तथा अधर्म का संहार करना है।

सप्तदश अध्याय

पाश्चात्य जगत् से प्रतिध्वनि

मानव-जीवन के ताने-बाने को मूक भाग्य-देवता बुनता है, पर उसको रंगता है मानव स्वयं। कोई विरला मनुष्य ही उस चादर को निष्कलंक रखने में सफल होता है। जुलाहे भी अपने धागों के रंग स्वयं चुनते हैं।

दो दशक पूर्व सुदूर पूर्व में जब उस युवा डाक्टर के हृदय में तीव्र वैराग्य की ज्वाला भड़की, जिसने उसे मातृभूमि भारत में भ्रमण करने वाला परिव्राजक बना दिया, तब उन्होंने धर्मोपदेश करने, आध्यात्मिक साहित्य लिखने तथा परमार्थ के लिए किसी संघ की स्थापना के विषय में स्वप्न तक में भी कल्पना न की थी। उनकी एकमात्र आकांक्षा किसी एकान्त, निर्जन पुण्य-स्थली के अज्ञात कोने में ईश्वर-ध्यान में लीन हो जाने की थी।

गरमी में झुलसा देने वाले दक्षिणीय मैदानों व भारतवर्ष के निचले भागों को पार करने के पश्चात् वह एकाकी पथिक हिमालय की तलहटी में पहुँचा। डिक्सल के दयालु पोस्टमास्टर श्री दस्तार ने उनको हरिद्वार तक का टिकट ले कर दिया। अतः वह हरिद्वार पहुँच गये।

हरिद्वार से स्वामी जी ने पैदल ही ऋषिकेश के लिए प्रस्थान किया। एक बार जब वह मार्ग में कहीं विश्राम कर रहे थे, तो एक घटना घटी जो कि समयान्तर के कारण विचित्र एवं अविश्वसनीय लगती है। वह घटना स्वामी जी के वर्तमान जीवन से एकदम विपरीत है। जंगल के ऊबड़-खाबड़ मार्ग में एक ताँगा खड़खड़ करता हुआ आया। जैसे ही वह ताँगा वहाँ से निकला जहाँ वह युवा त्यागी बैठा विश्राम कर रहा था, तो ताँगे में बैठे यात्री ने एक सिक्का भेंट-स्वरूप उस युवा त्यागी की ओर फेंका। तीव्र वैराग्य और आध्यात्मिक आकांक्षा में उल्लसित उस युवा त्यागी ने उस सिक्के पर दृष्टि तक नहीं डाली और आगे बढ़ गया।

तो यह थी उनकी वैराग्य की पराकाष्ठा तथा संसार और सांसारिक उपहारों से विरक्ति जिससे उनके साधना-जीवन का प्रारम्भ हुआ। यदि वही त्याग-वैराग्य की ज्वाला उनके हृदय में धधकती रहती, तो कहा नहीं जा सकता कि संसार कितने उच्चकोटि के आध्यात्मिक वैभव से वंचित रह जाता; पर मानवता के सौभाग्य से ऐसा न हुआ और उन्होंने अपने स्वभाव का रूपान्तर कर दिया।

अब स्वामी जी गंगातट पर स्थित अज्ञात स्थल ऋषिकेश पहुँच गये, जिसे वैरागी और भगवत्साक्षात्कार के आकांक्षियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। वह एकाकी, अपरिचित और सर्वथा आश्रयहीन थे। वह इस ओर की भाषा तया आचार-विचार से सर्वथा अपरिचित थे, तभी तो पहले ही दिन मिट्टी के कुल्हड़ में दूप पी कर कुल्हड़ दूकानदार का ही समझ कर उसे वापस करना चाहा। दूकानदार को आश्चर्य भी हुआ और खीझ भी हुई; क्योंकि ऐसे मिट्टी के बर्तन एक बार प्रयोग में आने पर अशुद्ध माने जाते हैं। अगले क्षण उसने कुल्हड़ को फेंक देने का आदेशात्मक संकेत किया। उस विस्मित तथा हतप्रभ साधक ने जैसा उसे इंगित किया गया, वैसा ही किया और साथ ही स्वयं को सावधान भी किया कि इस नये स्थान में उसे अभी बहुत कुछ सीखना है।

स्थायी आश्रय न होने के कारण वह मायाकुण्ड के निकट एक धर्मशाला के खुले बरामदे में रात्रि व्यतीत करते थे। कालान्तर में जब उन्हें स्वर्गाश्रम में एक कुटीर मिली तो उस समय उनके पास निजी सम्पत्ति के नाम पर एक लोटा और एक कम्बल ही था। स्वर्गाश्रम में वास कर वह गम्भीर साधना में निमग्न हो गये। भोजन के लिए वह वहाँ के अन्नक्षेत्र पर निर्भर करने लगे। उनके जीवन का यह पक्ष भी उल्लेखनीय है, क्योंकि यह उनके जीवन का मौलिक उपक्रमण था जिसमें कुछ समयोपरान्त सर्वथा अप्रत्याशित तथा नाटकीय परिवर्तन आया।

अब स्वामी जी के उस चित्र का अवलोकन करें जो उनकी आज की अति- व्यस्त दिनचर्या तथा उस महान् कार्य में दृष्टिगोचर होता है जिसे विधाता ने मानो स्वामी जी के लिए अलग रख छोड़ा था। उनके आकुल हृदय के स्पन्दन में भगवत्साक्षात्कार की अदम्य आकांक्षा, आतुरता तथा छटपटाहट पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। उस दिव्यानन्द की लहरियाँ इतनी अधिक बढ़ीं जो सूदूर, यहाँ तक कि समुद्र पार के देशों में पहुँच गयीं।

भले ही हमें विश्वास न हो, पर इसी के परिणाम स्वरूप दिव्य पुनर्जीवन का बीज यूरोप के हृदय में रोपित हुआ और वही आध्यात्मिकता के पौधे के रूप में अब फल-फूल रहा है। वहाँ (यूरोप) के जिज्ञासु-जिनकी संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है-स्वामी जी को अपना सद्‌गुरु मानते हैं तथा उनके सदुपदेशों का पालन करते हैं। वे अन्य जनों को घोषित करते हैं कि स्वामी जी उद्धारक, युग-विभूति तथा प्राची दिशा के क्षितिज में उदित उस ज्योति-नक्षत्र की भाँति हैं जो सतत पथ-प्रदर्शन करता रहता है।

वे अपने मित्रों को श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक उस प्रकाशमय नक्षत्र का अनुसरण करने को कहते हैं। स्वामी जी के दिव्य जीवन तथा दिव्य प्रेम के सन्देश को, उनके सार्वभौमिक तत्वों तथा योग और साधना के प्रचार-कार्य में पाश्चात्य देशों के उन विज्ञासुओं की निष्ठा व उत्साह देख कर उसकी तुलना में अपने देशवासियों के मन्द विश्वास को देख कर ग्लानि होती है।

उदाहरण के लिए स्वामी जी की 'कुण्डलिनी योग' पुस्तक ने योग-विज्ञान की अद्वितीय दर्शिका के रूप में अपनी अमूल्य व्यावहारिक महत्ता से श्रीमान् हैरी डिकमैन को इतना अधिक प्रभावित किया है कि लैटविया के इस सुसंस्कृत भद्र पुरुष ने उस (कुण्डलिनी-योग) का पूर्ण मनोयोग से सचित्र सोदाहरण तालिकाओं सहित अविकल अनुवाद करने में अपने चमत्कारक धैर्य और परिश्रम का अपूर्व परिचय दिया है। श्रेय की बात तो यह है कि श्रीमान् डिकमैन ने सारी पुस्तक को टाइप करने में अथक परिश्रम किया।

चर्च-पद्धति में क्रिश्चियन धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म से सम्बन्धित पुस्तक के मुद्रण की अनुमति नहीं है। यही कारण था कि पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए उन्हें टंकण का ढंग अपनाना पड़ा। श्रीमान् डिकमैन ने अपनी श्रद्धा-भेंट के रूप में उस अनुवाद की दो प्रतिलिपियाँ साइक्लोस्टाइल (चक्र-लेखित्र) करके स्वामी जी को प्रेषित कीं, जो आनन्द-कुटीर के पुस्तकालय में-सूदूर पश्चिम में स्वामी जी के अमिट प्रभाव के प्रमाण का परिचय दे रही हैं। पाश्चात्य सभ्यता का पौर्वात्य सभ्यता के सूर्य के लिए यह अभिनन्दन-स्वरूप है। स्वामी जी उत्सुक दर्शनार्थियों को इन प्रतिलिपियों का दर्शन करा कर स्वयं हर्षित होते हैं तथा प्रेरित करते हैं कि दिव्य जीवन सन्देश के प्रति सबको इतना ही उत्साह होना चाहिए।

श्रीमान् डिकमैन सब प्रकार के आसन, मुद्रा, बन्ध, क्रिया और प्राणायाम में अधिकार प्राप्त करके तथा वैदिक संस्कृति का गहरा अध्ययन-मनन कर अब दिव्य ज्ञान तथा आध्यात्मिक संस्कृति का प्रचार करने में भगीरथ परिश्रम कर रहे हैं। हिमालय की तलहटी की भाग्यशाली पहाड़ियों के गतिमान दिव्य पुत्र की पुकार के प्रत्युत्तर में श्रीमान् डिकमैन जिज्ञासुओं के शिक्षण तथा प्रशिक्षण द्वारा धन-वैभव में उन्मत्त पाश्चात्य जगत् में योग का प्रचार कर रहे हैं।

लैटविया के उच्च समाज ने पाश्चात्य संस्कृति के सक्रिय और अभिनिवेश से साधना और निष्काम सेवा-भाव को गम्भीर रूप से अपनाया है। य जी के सदुपदेशों से प्रेरित तथा उनके ग्रन्थों से प्रभावित हो कर लैटविया की योगी को प्रबल अनुमोदन मिला है, जिससे वह निरन्तर प्रगति-पथ पर अग्रसर होती ह निकट भविष्य में प्रवृत्तियों के परिवर्तन की विश्वासपूर्ण आशा कर रही है। स्वामी जी के साहित्य के सम्पर्क में आ कर वहाँ के साधकों के जीवन में इतना चमत्कार क विकासोन्मुखी परिवर्तन हुआ है कि उन्होंने आत्म-विकास के क्षेत्र में महान् उपलब्धि की प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर लिया है। स्वामी जी के साहित्य तथा उसकी अहर्ता सेत्र इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि अब उनका विश्वास है कि विधाता ने पाश्चात्य जगत में योग और आध्यात्मिक साधना की जाग्रति लाने के लिए स्वामी जी को विशेष रूप से चुना है।

लैटविया के रीगा नगर की एक प्रख्यात महिला श्रीमती एन. प्लाडिस स्वामी जी के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में भेजे गये अपने सन्देश में लिखती हैं कि स्वामी जी का जीवन तथा उनके सदुपदेश अनेकानेक पाश्चात्य लोगों के हृदय में स्थायी रूप से घर कर गये हैं और उनसे ही उनको प्रेरणा तथा पथ-प्रदर्शन मिला है। आध्यात्मिक उत्थान के लिए उनके विचार वहाँ की जनता के लिए मूल्यवान् सिद्ध हुए हैं। इसीलिए वे उनकी रचनाओं को लोगों तक पहुँचाने व प्रचार करने में हार्दिक रुचि दिखाते हैं।

स्वामी जी के धर्म की व्याख्या करने की सरल सुबोध शैली से, उनके विचारों की गहराई से तथा पुनर्जीवन प्रारम्भ करने के प्रोत्साहन से अनगिनत पाश्चात्य जिज्ञासुओं को शक्ति और आश्वासन प्राप्त हुआ है। लैटविया की शिक्षित एवं सम्भ्रान्त महिलाएँ दिव्य जीवन संघ की शाखा खोल कर सामूहिक रूप से भगवान् श्री कृष्ण के द्वादशाक्षर मन्त्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का जप नियमित रूप से करती हैं।

यदि आप चमत्कार ही देखना चाहते हैं, तो इससे अधिक चमत्कार और क्या होगा? उन उत्कण्ठित जिज्ञासुओं ने कभी स्वामी जी के दर्शन नहीं किये और न ही स्वामी जी अपने गंगातीर के कुटीर से बाहर गये, तो भी सुदूर पश्चिम के लोग, जो यहाँ की सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा से सर्वथा अपरिचित हैं, स्वामी जी को अपना सद्गुरु मान कर पूजा करते हैं।

कहाँ ऋषिकेश और कहाँ रीगा! गंगा से बुल्गारिया तक की महान् खाई पर सेतुबन्ध। कितनी आश्चर्यजनक बात है। पर यदि परमा माता की ऐसी ही इच्छा है तो क्या समुद्र और क्या पर्वत-ये तो मात्र पोखर और वल्मीक सदृश ही हैं। ये भागवत्सन्देश के प्रचार-प्रसार में बाधा उपस्थित करने का साहस भला कैसे कर सकते है? त्रेतायुग में महावीर हनुमान् ने लंका की ओर गमन करते हुए सेतु का सहारा तो लिया ही नहीं था। वियोगिनी सीता को भगवान् राम के सन्देश-स्वरूप अँगूठी देने के लिए समुद्र पार जाने के लिए कूद ही तो गये थे। यह उदाहरण स्वामी जी

पर- पाश्चात्य जगत् में उत्तरोत्तर आध्यात्मिक प्रगति के सम्बन्ध में सर्वथा ठीक-ठीक चरितार्थ होता है।

स्वामी जी उपद्वीप से महाद्वीप तक-समुद्र पार-योग और व्यावहारिक बेदान्त तथा भागवतीय जीवन के सन्देश-रूपी अमूल्य मणि को हताश लोगों में सोत्साह बाँट रहे हैं। आधुनिक सैनिक शासन की दुष्प्रवृत्ति तथा पुरोहितों की घृणा से पीड़ित कतिपय भक्तों की भक्ति तथा अभीप्सा दश-पन्दरह वर्षों से यूरोप में प्रचलित पैशाची वृत्ति से मिट जाने वाली थी। उनकी भक्ति भी आसुरी शक्तियों की धमकियों से आक्रान्त सीता की तरह आतंकित थी। पौराणिक महावीर हनुमान् की भाँति समुद्र पार से स्वामी जी के सन्देश के वहाँ पहुँचने से उनकी सब निराशा और भय को, उनके अन्धविश्वासों को भस्मीभूत करने तथा योग से सम्बन्धित मायावी विद्या के प्रचलन का समूल नाश करने का विशेष कार्य हुआ।

अब वे यूरोपवासी पूर्ण विश्वास के साथ अपनी साधना-जप, ध्यान तथा आसन का अभ्यास करते हैं। हैरी डिकमैन के साथ श्रीमती एना प्लाडिस दिव्य जीवन संस्था की समस्त पुस्तकों तथा परिपत्रों का अनुवाद कर प्रकाशित कर-विश्व-प्रेम, निष्काम सेवा, त्रिविध-मन-वचन-कर्म की पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दानशीलता आदि के साधन-सन्देश का प्रचार करने में अथक परिश्रम कर पूर्ण एवं सक्रिय सहयोग दे रही हैं।

इस दिव्य सन्देश का प्रचारक एक और सच्चा यूरोपियन भक्त है लुई ब्रिकफोर्ट जो इस क्षेत्र में लगन से कार्य कर रहा है। उसी के सार्थक प्रयत्नों का फल है कि स्वामी जी की अनुवादित रचनाएँ कोपेनहेगन के समाचार-पत्र तथा पत्रिकाओं में छपती हैं। गाँवों अथवा शहरों में जहाँ भी वह जाता है, योग और साधना के ज्ञान का प्रचार करता है।

अध्ययनप्रिय श्री ब्रिकफोर्ट स्वामी जी के सिद्धान्त और व्यावहारिक ज्ञान की अद्‌भुत वैज्ञानिक समन्वय-पद्धति से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उसने समस्त ज्ञान को हृदयंगम कर साधना-विषय को आत्मसात् कर लिया है। अतः वह स्वामी जी के 'दिव्य जीवन' प्रचार में प्रमुख रूप से कार्य करने में सफल सिद्ध हुआ है। कोपेनहेगन की विव्य जीवन की शाखा में महिला-विभाग है जिसकी मार्गदर्शिका है एक महिला-रत्न श्रीमती इर्मा।

एक अन्य सज्जन हैं जो स्वामी जी के सदुपदेशों तथा सन्देशों के प्रचार-प्रसा लिए सचल पुस्तकालय तथा सन्देशवाहक के रूप में कार्य कर रहे हैं, ये हैं. डा. बॉगब्लेट्। वह जहाँ भी जाते हैं, बाँटने के लिए स्वामी जी के आध्यात्मिक साहित्य भरी एक पेटी अपने पास रखते हैं, जन-समूह के समक्ष भाषण देते हैं तथा पुस्तकों में जे महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ पढ़ कर सुनाते हैं। स्वामी जी की शिक्षाओं के अनुसार 'ॐ' का उच्चारण, कीर्तन और प्रार्थना तो उनके कार्यक्रम के स्थायी अंग हैं। उन्होंने अपूर्व सवा के द्वारा अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को निष्काम प्रेम तथा सेवा का पट पढ़ाया है। इस्टोनिया में श्रीमान् क्रामेर भी अपने भाषणों तथा योग-साहित्य के वितरण द्वारा दिव्य जीवन के सन्देश का प्रचार कर रहे हैं।

सुदूरवासी स्वामी जी के अकथनीय प्रभाव का महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है बल्गेरिया-वासी एक सुसंस्कृत पादरी श्री सेप्लेर्वेको। अन्तप्रेरणा से उन्होंने दिव्य जीवन संस्था के पुण्य-कार्य हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया है। योग में भी उनका अभ्यास उच्च कोटि का है। वे अपने ज्ञान से औरों

को भी प्रशिक्षित करते हैं। इस दिशा में भले ही किसी को विश्वास न हो, पर वे लिखित मन्त्र-पुस्तिका भी रखते हैं, जिसमें पंचाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' लिखते हैं तथा पुस्तिका पूर्ण हो जाने के पश्चात् नियमित रूप से स्वामी जी के पास अवलोकनार्थ भेजते हैं।

वे श्री इ. कोस्मोव्स्की और अलेक्जेण्डर मिनीफ़ के सक्रिय सहयोग से धर्म और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं। दिव्य जीवन-सम्बन्धी पुस्तकें निःशुल्क वितरणार्थ अनूदित की जा रही हैं। उनकी अपनी भाषा-पत्रिका 'योग'-जो वहाँ की 'दिव्य जीवन संघ' की शाखा की प्रचार-पत्रिका है-में स्वामी जी के लेख बल्गेरियन भाषा में प्रकाशित होते हैं। सेप्लेवेंको एवं उनके मित्र बोरिस सचारो स्वभाव से कर्मयोगी हैं। वे दोनों मिल कर परोपकार का कार्य-विशेष रूप से रोगियों और पीड़ितों की सेवा निष्काम भाव से कर रहे हैं।

इंग्लैण्ड के डोम्ब्रोयस्की, श्रीमती डॉलफिज, एटकिन्सन, मैबिसको के आल्डो लावग्निनी भी निष्ठापूर्वक स्वामी जी से नियमित रूप से पत्र-व्यवहार द्वारा प्राप्त पथ-प्रदर्शन के आधार पर प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं।

कितना अन्तर है आज में और तब में। कई वर्ष पूर्व दिव्य जीवन का कार्य प्रारम्भ हा छोटी-सी सीमा से और वही सन्देश देश-विदेश में पहुँच गया। प्रसार का कल्पनातीत कार्य हुआ। 'दिव्य जीवन संस्था' और उसके कितने ही केन्द्रों में चल रहे कार्यक्रमों की विविधता से सहस्रों जिज्ञासु मार्ग-दर्शन प्राप्त करते हैं। स्वामी जी के इन्म-दिवस महोत्सव पर पाश्चात्य भक्त तथा प्रशंसक अपनी मंगल-कामनाएँ प्रेषित करते हैं तथा अपनी हार्दिक भावनाओं के प्रतीक-रूप में अपने-अपने देश की विश्वकला तथा हस्तकला की वस्तुएँ उपहार स्वरूप भेजते हैं। सैकड़ों भारतवासी व्यक्तिगत रूप से श्रद्धांजलि अर्पित करने आते हैं। 'दिव्य जीवन संघ' का कार्य छोटी-सी सीमा से शुरू हो कर महान् उपलब्धि को प्राप्त हुआ। इसी से इसकी महानता प्रत्यक्ष हो जाती है।

यूरोप में दिव्य जीवन संघ की शाखाओं के कार्यकलापों को देख कर मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि स्वामी जी ने अवश्य ही कुछ दिनों के लिए उस महाद्वीप में प्रवास किया होगा, पर यह मेरा भ्रम था। किसी को विश्वास नहीं होता कि भारत से बाहर केवल मलाया में ही स्वामी जी रहे जहाँ उनके संन्यास-जीवन के बीजारोपण की पृष्ठभूमि निर्मित हुई। इन बीस-इक्कीस वर्षों में स्वामी जी भारत की पुण्य-स्थली से बाहर नहीं गये। इतना ही नहीं, विदेशियों ने तो उनके अब तक भी दर्शन ही नहीं किये, तो भी वे दिव्य जीवन के प्रसार का कार्य इतनी भव्यता से कर रहे हैं। मैं इस विषय में जितना अधिक सोचता हूँ, उतना ही अधिक आश्चर्य में डूब जाता हूँ।

इस सम्बन्ध में कई और रोचक तथ्य हैं। ज्योतिर्मय आत्मा विवेकानन्द तथा प्रखर प्रतिभाशाली स्वामी रामतीर्थ ने यूरोप तथा अमेरिका में जा कर आध्यात्मिक क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से भ्रमण किया जिसमें उनको परिश्रम भी करना पड़ा; पर हमारे तत्त्ववेत्ता स्वामी जी ने (जिनके अहंशून्य व्यक्तित्व के पीछे प्रतिभा छिपी है) इस महान् आध्यात्मिक कार्य की उपलब्धि हिमालय की तलहटी में अठखेलियाँ करती हुई पावनी गंगा-तट पर अवस्थित कुटीर के भीतर रह कर ही की।

प्रारम्भ में उनमें जो सर्वोपरि वृत्ति थी–वह थी विरक्ति। अपने अनुभवों को लिखित रूप देने तथा अपने विचारों को विश्व के लोगों के साथ आदान–प्रदान करने का विचार स्वामी जी को कैसे आया, इसकी भी रोचक कहानी है। वह पढ़ने में बिलकुल उपन्यास–सी लगती है।

जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में थे, तो तीर्थयात्री तथा दर्शनार्थी उनके पास यदा–कदा आते रहते थे। उस समय सत्संग के साथ–साथ आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा भी चलती थी। सुशिक्षित और बुद्धिमान् तो वे थे ही। आगन्तुकों ने भी यही अनुभव किया कि स्वामी जी उनकी आन्तरिक कठिनाइयों तथा समस्याओं को समझने में बड़े कुशल हैं, साथ ही उनके प्रश्नों के उत्तर भी सहृदयतापूर्वक व सीध निर्णयात्मक ढंग से देते हैं।

उस समय ऐसे महापुरुष का बहुत अभाव था। दूसरों की कठिनाइयों, आपत्तियों चिन्ताओं और समस्याओं को अनुभव कर उनका बुद्धि एवं विवेकयुक्त समाधान करना तथा धैर्य प्रदान करना सबके वश की बात नहीं है। उत्सुक जिज्ञासुओं का ध्यान इनकी ओर केन्द्रित हो गया। वे सदैव आध्यात्मिक साधना–पथ की आन्तरिक बाधाओं, साधना के अनुभवों, विचित्र कठिनाइयों जैसे विविध विषयों तथा व्यक्तिमत समस्याओं पर निरन्तर प्रश्न करते रहते थे।

वे स्वामी जी के सामने अपनी शंकाएँ समाधान हेतु प्रस्तुत करते थे। स्वामी जी अपनी योग्यतानुसार सुझावों द्वारा उनकी अधिकतम सहायता करने में तत्पर रहते तया साधना–पथ पर अग्रसर होने के लिए स्वानुभव पर आधारित समुचित साधनों का उपयुक्त प्रयोग बतलाते थे।

उनकी शिक्षाओं के व्यावहारिक पक्ष की अत्यधिक सराहना हुई। इससे वे सोचने लगे कि इस प्रकार की समस्या वाले अन्य व्यक्ति सहायता प्राप्त कर सकते हैं। अतः इन सब प्रश्नों और उनके उत्तरों को लिखित रूप दे कर अधिकाधिक लोगों में वितरण करने का विचार मन में आया।

वह शुभ विचारों को तुरन्त ही कार्यान्वित करने के पक्ष में थे, इसलिए कार्य में जुट गये। वह प्रतिदिन आने वाले दर्शनार्थियों के प्रश्नों तथा शंकाओं को याद करके अंकित करने तथा उन प्रश्नों पर मनन करने के पश्चात् उत्तरों, सुझावों तथा शिक्षाओं को लिखित रूप देने लगे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह लिखते रहते। दृढ़ धारणा द्वारा आपत्तियों की अवहेलना करते हुए उन्होंने आध्यात्मिकता को पुनर्जीवन देने का अपूर्व कार्य किया है। लगभग आधे विश्व में प्रतिनिधियों द्वारा उनके सन्देश का प्रचार हुआ है।

दिव्य जीवन के इतने विस्तार की आशा तो उन्होंने भी न की होगी। प्रारम्भ में जब आध्यात्मिक परिपत्रों के प्रत्युत्तर में लोगों ने उन्हें प्रशंसा–पत्र लिखे, तो स्वामी जी के संन्यासी व्यक्तित्व ने उन पत्रों को फाड़ कर टुकड़े–टुकड़े कर गंगा जी में बहा दिया, किन्तु लिखने का कार्यक्रम चलता रहा, चाहे कितनी ही भारी आपत्तियों से संघर्ष करना पड़ा। कठोर भाग्य ने कई बार उनके उत्साह की परीक्षा ली।

वह भी समय था जब यह तरुण स्वामी जी रद्दी कागजों के छोटे–छोटे टुकड़ों को ढूँढ़ कर संग्रह करते। फिर उनको छोटी पुस्तकों का रूप देते। लिफाफे यदि कहीं पड़े हुए, मिल जाते, तो अन्दर के खाली भाग पर अपने अनुभवों व विचारों को लिखते। यदि कागज की समस्या हल होती, तो स्याही की समस्या उत्पन्न हो जाती। यदि कागज और स्याही दोनों उपलब्ध होते, तो

प्रकाश की समस्या प्रस्तुत हो जाती। अतः सूर्यास्त होते ही लिखने का कार्य बन्द करना पड़ता और विचारों में खोये हुए ही अन्धकार में समग्र रात्रि काटनी पड़ती।

कभी तेल भी होता, तो दियासलाई समाप्त हो चुकी होती। तेल तथा दियासलाई की प्राप्ति भी भाग्य पर निर्भर करती। इतना होने पर भी वह सदा सन्तुष्ट रहते। इस अनूठे व्यक्तित्व ने बड़े विलक्षण ढंग से विरोध का सामना किया तथा दूरी की बाधाओं का निराकरण कर पश्चिमी जगत् के उत्साही जिज्ञासुओं के जीवन में क्रान्ति कर दी।

इससे भी अधिक विलक्षण बात यह है कि स्वामी जी ने यह सारा कार्य अकेले ही किया। दृढ़ धारणा एवं साधना-शक्ति और भगवान् पर पूर्ण निर्भरता द्वारा उन्होंने मानवता की सेवा की। यही उनका परिचय -पत्र है । बाद में जो साधक उनके पास आये भी, वे तरुण अनुभवहीन थे जिनको स्वयं प्रति-क्षण निर्देशन की आवश्यकता थी। फिर भला वे स्वामी जी की सहायता क्या करते?

स्वामी जी परिहासपूर्वक बताया करते कि अपने प्रथम परिपत्र को प्रकाशित देख कर उन्हे कितनी प्रसन्नता हुई थी। उनके पास अच्छे कागज का अभाव था। एक भक्त आत्मा चाँद नारायण हरकोली इस युवा तपस्वी के त्याग-वैराग्य की भावना से प्रभावित हो कर उनके निकट- सम्पर्क में आये। एक बार उन्होंने स्वामी जी को दूध पीने के लिए पाँच रुपये का नोट दिया। इस विषय को याद करते हुए स्वामी जी ने पुस्तकों तथा परिपत्रों की ओर संकेत करते हुए कहा - "आप मेरे आस-पास की वस्तुएँ देखते है न! हाँ, यही चाँद नारायण राय का दूध है।"

फिर विस्तार से बताया- "जब उन्होंने मुझे पाँच रुपये का नोट दिया, तो मैंने उसे भगवान् की ओर से प्रसाद समझ कर स्वीकार कर लिया। मैं अपने विचारों को साधकों के लिए प्रकाशित करवाना चाहता था। उसके लिए मैं अच्छे कागज की खोज में था। अब बिना माँगे ही रुपये मेरे हाथों में थे। मेरी कई लेखबद्ध टिप्पणियाँ ऐसे ही अलभ्य लाभ की प्रतीक्षा में थीं। तत्काल ही मैंने पाँच रुपये का नोट प्रथम परिपत्र को छपवाने में खर्च कर दिया। उस परिपत्र का विषय था- 'ब्रह्म-विद्या' । उन्होंने उन प्रकाशित परिपत्रों को अपने निकट-सम्पर्क में आने वालों में बाँट दिया।

पाठकों ने उस विषय-सामग्री को इतना पसन्द किया कि उन्होंने स्वामी जी से और सामग्री दे कर उसे पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित करवाने के लिए आग्रह किया। प्रकाशन-व्यय के लिए भक्तजन स्वयं तैयार थे। इसके पश्चात् मुद्रित हुई दूसरी पुस्तक जिसका नाम था 'आत्म-पुरुष का तत्त्वज्ञान' । उसके पश्चात् तीसरी पुस्तक और तदुपरान्त चौथी पुस्तक मुद्रित हुई। भगवदिच्छा ऐसी ही थी कि एक व्यक्ति, चाँद नारायण की ओर से दिया गया दूध सहस्रों व्यक्तियों के लिए जीवन प्रदायक अमृत बना।

भक्ति-भाव से अर्पण किये गये उस पाँच रुपये के नोट ने जाग्रति लाने वाले सन्देश के प्रसार का रूप लिया। यह ऐसी दिव्य पुकार थी जिसके प्रत्युत्तर में प्रतिध्वनि केवल हिमालय प्रदेश से ही नहीं, अपितु सुदूर क्षितिज के पार पश्चिम से भी प्रतिध्वनित हुई जहाँ भारतीय सूर्य स्वर्णिम आभा में अस्त होता है।

अष्टादश अध्याय

सर्वगुण-सम्पन्न स्वामी शिवानन्द

आज कलियुग के घोर अन्धकार में भी सम्राटों के सम्राट् की अतुलनीय सौंदर्यमुक्त दुर्लभ मुकुट-मणियाँ प्राप्य हैं; क्योंकि सन्त और ऋषि परम दिव्यता के अलंकार ही तो हैं। अपनी भव्य जीवनियों से वे ईश्वर की शोभा को द्विगुणित करते हैं। उनके दर्शन अब भी हो सकते हैं। उत्सुक व्यक्तियों की भीड़ उनकी झलक लेने को लालायित है। वे सब दर्शन तो कर लेते हैं; किन्तु उनमें कितने हैं जो वास्तव में दर्शन करते हैं।

कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो समयाभाव के कारण स्वामी जी के दर्शन मनोयोगपूर्वक नहीं कर पाते। उनके लिए मैं स्वामी जी के आज के जीवन के पूर्णत्व तथा पूर्ण जीवन के कुछ चित्र चित्रित करने का प्रयास करूँगा। मैं ऐसे तथ्य रखूँगा जिससे पता चले कि किस साँचे से यह महान् प्रतिभा तैयार हुई है।

स्वामी जी के मानव-रूप का एक रेखा-चित्र देखिए। आश्रमवासियों व अभ्यागतों के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हुए वे एक महान् एवं शान्तमूर्ति के रूप में अभिव्यक्त हो उठते हैं। वे सरल एवं महान् व्यक्ति हैं और सभी कार्य निष्काम व नितान्त अनासक्त भाव से करते हैं। जब उनके सान्निध्य में रहने का पर्याप्त अवसर मिलता है, तब उनके स्वर्ण-तुल्य विशुद्ध व्यक्तित्व में बहुमूल्य रत्न-रूपी विशिष्टताएँ प्रकाश में आती हैं।

इस महान् व्यक्ति की सर्वोत्तम विशिष्टता है-आचार और विचार में आश्चर्य- जनक निष्कपटता। उनका मन सांसारिक एवं कुटिलता से एकदम रहित है। वे शिशुवत् सरल हैं और उनकी क्रियाओं में प्रति-पग पर सरलता प्रतिबिम्बित होती है। मन की दार्शनिक गहराइयों के होते हुए भी यह सहज स्वतः प्रस्फुटित अकृत्रिमता शीघ्र ही उनकी थोड़ी देर की उपस्थिति से ही प्रकट हो जाती है, जो एक समय में एक गम्भीर सन्त और शिशु के अनूठे मेल को प्रदर्शित करती है।

जिन व्यक्तियों का स्वामी जी से सम्पर्क रहता है, उनके हृदय स्वामी जी की स्वभावगत सरलता के कारण प्रभावित हो जाते हैं।

मैंने देखा कि स्वामी जी अपने तक कुछ भी नहीं रख सकते, भले ही वह बाहरी सम्पदा हो या कोई विचार या जानकारी ही क्यों न हो। वे अतीव निष्कपट व उन्मुक्त-हृदय हैं जिनको असावधानी से देखने पर सर्वमान्य विनीत कुशलता का अभाव समझने की भूल हो सकती है।

अगाध आत्म-विश्वास होते हुए भी उनमें श्रेष्ठमन्यता की भावना लेशमात्र भी नहीं है। वे सबको आत्मवत् समझते हैं और सबके साथ उन्मुक्त एवं समता का व्यवहार करते हैं। कुछेक क्षणों की बातचीत के पश्चात् ही व्यक्ति उनको पूर्णतया अपना समझने लग जाता है। वे सबसे, चाहे कोई बच्चा ही क्यों न हो, परामर्श लेने को तैयार रहते हैं, क्योंकि वे किसी को भी कम महत्त्वपूर्ण तथा बुद्धिहीन नहीं समझते।

दूसरी प्रमुख विशेषता, जिसकी उसमें प्रधानता है, वह है-शीतल ज्योत्स्ना के समान परम शान्ति जो उनके रोम-रोम में व्याप्त है। उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है और उसी में स्थित हैं। किसी भी स्थिति में वह उत्तेजना या भावना के वशीभूत नहीं होते। प्रत्येक स्थिति में वह शान्ति की साकार मूर्ति हैं। उनकी उपस्थिति में वदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को अव्यवस्थित व अनियमित ढंग से करता है, तो उसका संशोधन मौन असहमति एवं गम्भीरता दर्शा कर करते हैं। आवश्यकता पड़े, तो वे उस स्थान को भी छोड़ देते हैं।

वे कभी भी क्रोधावेश के वशीभूत नहीं होते। रोष में आ कर उच्च स्वर से चिल्लाते नहीं। अपना खेद तक नहीं प्रकट करते। यदि कठोर शब्द कहने की आवश्यकता भी पड़े, तो अधिक-से-अधिक झिड़की तो दे देंगे; किन्तु तुरन्त वे विनोद भी करते हैं जैसे औषधि के तुरन्त पश्चात् चुटकी-भर चीनी दे दी जाती है।

मैंने उनको कभी किसी की प्रार्थना अस्वीकार करते नहीं देखा। सत्य तो यह है कि व्यक्ति द्वारा आवश्यकता प्रकट करने से पूर्व ही वे उसको भाँप जाते हैं। यदि एक बार आवश्यकता प्रकट की जाती है, तो जब तक वह पूर्ण नहीं होती, तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। पूर्ति भी उसी समय, उसी जगह होनी चाहिए। उपकार करने में देरी उन्हें सहन नहीं।

कई ऐसे अवसर भी आये जब भक्तों ने उन्हें संकीर्तन के लिए निमन्त्रित किया। उस समय वे ज्वर से इतने अस्वस्थ थे कि उस स्थिति में अन्य व्यक्ति शय्या पर ही पड़ा रहता; किन्तु स्वामी जी ज्वर की उपेक्षा करके शीघ्र ही संकीर्तन करने के लिए चले गये। जब कभी यात्रा की थकावट और भोजन में अनियमितता के कारण अतिसार हो जाता,तब भी संकीर्तन के लिए अपनी अस्वीकृति न दे पाते। वे साथ वाले कक्ष में शौच के लिए बर्तन (शौच-पात्र) रखवा लेते और संकीर्तन हाल में मंच पर पहुँच कर प्रेरणादायी कीर्तन करते।

अस्वस्थता की स्थिति में कीर्तन करना भक्तों को अच्छा न लगता। दूसरों को लाभान्वित करने एवं प्रसन्न देखने की तीव्र इच्छा उनकी समस्त क्रियाओं में प्राण भरती थी । आप इसे भले ही विचारहीनता का नाम दें; किन्तु स्वामी जी स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर त्याग को ही अनिवार्य मानते। उनकी समस्त क्रियाएँ उनके पर-हितार्थ जीने के दृढ़ सिद्धान्त को सूचित करती हैं।

सभी वस्तुओं और व्यक्तियों में भलाई ही देखने की दुर्लभ प्रवृत्ति का उनमें अति-आश्चर्यजनक मात्रा में विकास हो चुका है। उनमें दूसरों में त्रुटियों और दोषों को देखने की प्रवृत्ति लेशमात्र भी नहीं है।

कई बार ऐसा हुआ कि कई ऐसे व्यक्ति प्रायः उनके पास आते रहते और कार्य करते जिनमें विभिन्न प्रकार की कई कमजोरियाँ होतीं और वह वस्तुतः कई रूपों में अशोधनीय थे। यदि उसमें एक गुण भी लेशमात्र दिखायी दे जाता, तो उस पर अपना बाद हस्त रखते और उसकी समस्त कुटिलताओं की ओर से आँखें मूँद लेते।

सहिष्णुता और क्षमाशीलता को समझने के लिए गंगा-तट पर गम्भीरता से विचरने वाले उस महान् सन्त के पास किंचित् काल ठहरने से अधिक और अच्छी कोई बात नहीं हो सकती। बहुत

गम्भीर अपराध को न देख कर वह किसी के भी गुण को दशगुना बढ़ा कर देखते थे। थोड़ी-सी प्रतिभा, अच्छाई और सेवा ही स्वामी जी से सराहना प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। वे सोत्साह उस गुण का वर्णन सबसे करेंगे, मानो बह बहुत ही आश्चर्यजनक, सराहनीय एवं पूर्णत्व के शिखर पर पहुँच चुका हो।

कई बार मैं अपने प्रति की गयी प्रशंसा तथा संस्तवन सुन कर हैरान रह जाता; क्योंकि मुझे पता था कि मैं उसके योग्य नहीं हूँ। साथ ही मैं उनकी सच्ची महत्ता पर चकित रह जाता।

जो उनके बहुत ही निकट-सम्पर्क में आये, उन्होंने देखा कि स्वामी जी एक ऐसे अलौकिक गुण से सम्पन्न हैं जो बहुत खोजने पर भी नहीं मिल पाता। अपने प्रति किये गये गम्भीर अपराधों को भी वे शीघ्र भूल जाते हैं। तथापि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से की गयी उनकी सेवा को हृदय में सदैव सँजोये रखते हैं। 'भूलो और क्षमा करो' सिद्धान्त उपदेश के लिए सरल है; किन्तु विरला ही कोई ऐसी महान् आत्मा पायी जाती है जो इस गुण को सहज आचरण में लायी हो। यह गुण मैंने इस सन्त में पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ पाया है।

ऐसे लोग भी थे जिन्होंने उनके सत्कार्य को हर सम्भव उपाय से बिगाड़ने का प्रयास किया, खुले रूप से अपशब्द कहे और उनकी निन्दा की। स्वामी जी उनके दुष्कृत्यों के क्षणों में भी उनके प्रति मृदुल व शिष्टता का व्यवहार करते थे।

हम सुनते हैं कि स्वर्गाश्रम के साधना-काल में उन्होंने इस 'भूलो और क्षमा करो' के गुण का अर्जन करने को अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया था। उनके सन्त साथी उनको हानि पहुँचाना चाहते थे। आप उनकी सेवा असामान्य रूप से करते थे।

स्वामी जी ने एक दुरात्मा आततायी हत्यारे को, जो प्रकट में साधुवेश में रहता था, वर्ष-भर आदर और विशेष प्रेम का व्यवहार करने के लिए चुन रखा था। जब स्वामी जी की उस क्षेत्र में लोकप्रियता के प्रति ईर्ष्यावश कई उपद्रव हुए, तब भी वे अपने प्रभाव के बावजूद किसी भी प्रतिकार की भावना के बिना उन पीड़ादायक क्लेशों को सहते रहे। उन दुरात्माओं में से जब भी कोई अस्वस्थ हो जाता था, तो स्वामी जी स्वेच्छा से उसके स्थान पर पहुँच कर उसकी सुश्रूषा एवं उपचार करते थे जिसे देख उन दुरात्माओं को विश्वास न होता और वे चकित रह जाते।

(२)

आध्यात्मिक उत्थान के लिए उनके असाधारण उत्साह को आच्छादित कर जो दो प्रमुख विशिष्टताएँ क्रमबद्ध रूप से सामने आयीं, वे हैं पुस्तक-लेखन का कार्य और युवा जिज्ञासुओं को प्रशिक्षित करना। लेखन-कला के प्रति उनका असाधारण उत्साह अवर्णनीय है। जब किसी उपयोगी विषय में उनके मस्तिष्क में विचार कौंधता, तो तुरन्त ही वे उसे लेखबद्ध कर लेते। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उर्वरा मस्तिष्क में एकाएक उद्‌भूत होने वाली विचारधारा को लेखबद्ध करने के लिए स्नान-क्रिया को अधूरा छोड़ कर गंगा-तट से स्व-कक्ष में आ जाते।

बहुत बार ऐसा होता कि कोई प्रेरणादायक विचार अर्ध-सुप्तावस्था में उन्हें आ जाता, तो शीघ्र ही पूर्णरूपेण जाग कर दीपक जला कर बैठ जाते और रात्रि के शान्त वातावरण में लिखना

आरम्भ कर देते। अपनी कृतियाँ और पुस्तकें उन्हें सन्तानवत् प्रिय हैं। उन पर उन्हें वैसा ही समुचित गौरव है जैसा ममतामयी माँ को सन्तान पर होता है। नयी पुस्तक के मुद्रण के समय उनके विषय, प्रूफ, आकार आदि के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्हें अत्यधिक आनन्दानुभूति होती है। एक नयी पुस्तक से तात्पर्य है दिव्यता के आन्दोलन के शस्त्रागार में संग्रहीत एक नया शस्त्र।

उनका जो अति-प्रिय विषय है, जो उनके जीवन का प्राण है, जिससे उनका विशिष्ट व्यक्तित्व निर्मित होता है, वह है जिज्ञासुओं को प्रशिक्षित करना। साधना- काल में उनके स्वास्थ्य एवं हित का ध्यान रखते हुए, प्रत्येक सर्व-सुलभ सुविधाएँ, प्रदान करते हुए उन्हें बहुमुखी कुशल बनाने का इस सन्त का सतत प्रयास रहा है।

युवा साधकों के हृदय में यदि वह तनिक भी आध्यात्मिक लालसा पाते, तो उन्हें अपना पितृवत् वात्सल्य उँडेलते तथा हिमालय के रमणीय दृश्य, पावनी गंगा माता का सान्निध्य, सुखदायी कक्ष, मनोरम मन्दिर, भजन-कक्ष, शुद्ध आहार, स्वास्थ्य- रक्षा-सम्बन्धी प्रत्येक आवश्यकता आदि सभी सुविधाओं से सम्पन्न करते। बिना किसी भेद-भाव के वे सबके हित की सभी सुविधाएँ प्रदान करने में कोई कमी न रहने देते।

किसी भी भेद-भाव के बिना साधकों के प्रति पूर्ण समता तथा प्रेम का व्यवहार करना उनके स्वभाव एवं आचरण का प्रमुख अंग है। भले ही साधक मन्द बुद्धि वाला व अशिक्षित या तीव्र बुद्धिमान्, संस्कारवान् हो, प्रवीण विद्यार्थी हो या ऐसा कार्यकर्ता जिसमें बहुत त्रुटियाँ भरी हों, चाहे पुराना आश्रमवासी या नवागन्तुक कोई भी हो- स्वामी जी के लिए सभी प्रकार के साधक समान रूप में मूल्यवान् हैं।

आश्रमवासी साधकों के प्रति उनका व्यवहार आश्चर्यचकित कर देने वाला दैवी प्रकाशन है। निःस्वार्थता और निष्कामता की तो उनमें पराकाष्ठा है। वे साधकों का प्रशिक्षण अवैयक्तिक भाव से करते हैं। उदाहरणतः एक विशेष कार्यकर्ता यदि लौट कर घर जाने का निश्चय कर लेता है, तो चाहे कार्य की कितनी भी क्षति क्यों न हो, स्वामी जी कभी अप्रसन्न नहीं होते। कार्य में सम्भावित हानि की चिन्ता किये बिना वे न केवल उसे प्रसन्नता से विदा करते हैं; अपितु यह भी आश्वासन देते हैं कि वह जब भी चाहे लौट कर आश्रम में आ सकता है। भेंट-रूप में पुस्तकें देने के अतिरिक्त उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते तथा विविध ढंग से हार्दिक स्नेह से सिंचित करते, भले ही वह महत्त्वपूर्ण कार्य की पूर्ति के पूर्व ही क्यों न जा रहा हो।

स्वामी जी न केवल किसी भी व्यक्ति की विशेष प्रतिभा को भाँप लेते अपितु उसे उसके व्यक्तित्व के पूर्णतया उद्‌घाटन में सहायता देते हैं। सच्चे अर्थों में वह उसको शिक्षित बनाते हैं। ऐसा वह व्यक्ति के विकास के लिए अत्यधिक उपयुक्त कार्य दे कर करते हैं। साधकों से कार्य लेते हुए वह सेवा से अधिक उसकी प्रगति का ध्यान रखते और राजाओं की भाँति उसकी सेवाओं की प्रतिपूर्ति कार्य की मात्रा से अधिक करते। सहज स्वभाव से ही उनकी भावनाएँ संकीर्ण न हो कर विस्तृत व उदार हैं।

यह भावना उनमें इतनी अधिक सुदृढ़ है कि वह कार्यकर्ता को अमित प्रतिदान दे कर ही रहेंगे। वे कार्यकर्ताओं तथा साधकों के प्रति सीमातीत आभार प्रदर्शन करते हैं। वे साधकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति पुस्तकों, वस्त्रों और स्वादिष्ट फलों की भेंट द्वारा करते। बजट

और योजना की सीमा का अतिक्रमण करते हुए वे अपने ही ढंग के विचारों और विधियों से अपने उच्चादर्श का प्रचार करते हैं। दूसरों को लाभान्वित करने, सुसम्पन्न करने तथा दान देने के भाव के वशीभूत हो कर उनकी सभी क्रियाओं में दैवी अतिशयता का प्रकटीकरण होता है। एक सामान्य गणना करने वाला व्यक्ति इस भाव का मूल्यांकन नहीं कर सकता।

स्वामी जी की दृष्टि में साधक के हित से बढ़ कर अन्य कोई भी वस्तु प्रिय वा बहुमूल्य नहीं है। साधक की अस्वस्थता में वह उसके उपचार की व्यवस्था शीघ्र तथा पूर्णतया आश्चर्यकर ढंग से करते हैं। शहरी अस्पताल में भी उतनी व्यवस्था नहीं मिल पाती, जितनी क्षण-भर में वे स्वयं कमरे में ही रोगी के लिए कर देते। रोगी के उपचार में कोई भी त्रुटि नहीं रहने देते। रोगी के लिए नयी-से-नयी औषधि, चाहे उसका मूल्य १०० रुपये ही क्यों न हो और उसे ३०० मील की दूरी से भी क्यों न मँगाना पड़े, उसका प्रबन्ध स्वामी जी अवश्य ही कर देते।

यदि कोई वस्तु दश-गुणा मूल्य देने पर और कठिनता से भी प्राप्त होती है, तब भी उसे मँगा कर देंगे। यदि फल की आवश्यकता पड़े-उस फल की ऋतु हो या न हो, उसका बहुत अधिक मूल्य ही क्यों न हो-वह एक-दो नहीं, दर्जनों में रोगी की शय्या के पास की मेज पर पहुँचाये जायेंगे। यदि किसी थके-माँदे कार्यकर्ता के लिए ग्लूकोज की आवश्यकता पड़ने पर मँगाना पड़े, तो उसके लिए एक व्यक्ति शहर जा कर जंगली और पहाड़ी मार्ग पार करता हुआ सन्ध्या तक अवश्य ही लौट आता है। स्वामी जी का सेवा-सुश्रूषा का यही ढंग है।

एक साधक के बद्रीनाथ-यात्रा के कष्टों से पीड़ित हो स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम किया, तो तब तक स्वामी जी को चैन नहीं आया, जब तक उसे उपचारार्थ अमृतसर भेज नहीं दिया और उनकी सन्तुष्टि तभी हुई जब वह स्वस्थ हो कर आश्रम लौटा।

प्रत्येक विषय, चाहे वह सामान्य ही क्यों न हो, उसकी ओर सूक्ष्मता से ध्यान देने गुण स्वामी जी में देखा जा सकता है; किन्तु वर्णन नहीं किया जा सकता। एक वयोबुद्ध जीर्णकाय संन्यासी, जो संसार के कष्टों से पीड़ित था, शान्ति की खोज मैं आश्रम आया। स्वामी जी की उसके प्रति व्यक्त की गयी चिन्ता मर्मस्पर्शी थी। स्वामी ने यह विशेष ध्यान रखा कि उसे श्रम-साध्य कार्य न दिया जाये।

मैंने देखा कि भजन-कक्ष में आयोजित रात्रि-सत्संग में उसकी पीठ को सहारा देने के लिए पीठिका रखी जाती। उसे स्तम्भ के निकट बैठने को स्थान दिया जाता। यदि भूल से उस स्थान पर कोई बैठ जाता, तो निरीक्षक स्वामी जी देख लेते और हँसी में यह कहते हुए-'यह ओम स्वामी जी के लिए आरक्षित स्थान है'- उसका स्थान उसे दिलवा देते।

महाविद्यालय से आया एक कुलीन युवा नव-साधक अस्वस्थ हो गया और नित्य के कीर्तन में भाग नहीं ले सका। रात्रि-सत्संग में उसकी अनुपस्थिति स्वामी जी ने अंकित कर ली। कीर्तन-समाप्ति पर वे अपनी कुटीर से (वे प्रायः ऐसा नहीं करते थे) औषधालय में आये। एक औषधि तैयार करवा कर स्वयं निकटस्थ रामाश्रम- पुस्तकालय में अस्वस्थ साधक की खोज में गये। उस समय रात्रि के ११ बज चुके थे।

यदि मैंने इसे स्वयं न देखा होता तो हमें विश्वास न होता; क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में स्वामी जी रात्रि-सत्संग के उपरान्त कुटीर से बाहर नहीं निकलते थे। एक हाथ में लम्बी लाठी और दूसरे हाथ में एक गिलास लिये ऊपर चढ़ रहे हैं। उनके पीछे एक सेवक हाथ में लैम्प लिये आ रहा है।

इसी प्रकार वह कार्यकर्ता की शारीरिक कमजोरी की दशा का ध्यान अवश्य रखते और तदनुसार आवश्यकता की पूर्ति करते। यदि कोई भक्त उन्हें अमरूद भेंट करता, तो वह जिस व्यक्ति को कोष्ठ-बद्धता का रोग होता, उसे तत्क्षण ही दे देते। विभिन्न प्रवृत्तियों में अति-व्यस्तता के मध्य भी ऐसी सूक्ष्म बातों की ओर ध्यान देना वे नहीं भूलते थे।

जब कोई विशेष कार्य हो रहा हो, वे कार्यकर्ताओं को अतिरिक्त पौष्टिक आहार प्रदान करने का विचार करते। यह भी आज्ञा देते कि बादाम, अखरोट आदि कार्यकर्ताओं को पर्याप्त मात्रा में बाँटे जायें। उसी दिन पूछते कि बादाम आ गये हैं या नहीं? दूसरी, तीसरी, चौथी बार याद दिलाते जब तक कि छिलके उतारे हुए साफ बादाम उनके सामने मेज पर न आ जाते।

तब एक युवा साधक को सब कार्यकर्ताओं में बाँटने के लिए कहते। मैं पूर्ण विश्वास से कह सकता हूँ कि वे अगले दिन पूछने से न चूकते कि बादाम सबको मिले या नहीं? केवल पूछताछ से क्या बात समाप्त हो जाती? नहीं! इतनी सरलता से नहीं। पुनः स्वामी जी सभी साधकों से बादाम-प्राप्ति के विषय में पूछते - स्वीकारात्मक उत्तर मिलने पर भी वे उनके कमरों में जा कर जब तक स्वयं न देख लेते कि वह ग्रहण किये गये कि नहीं, तब तक उनको शान्ति न मिलती। यह देख कर हम आश्चर्यचकित होते हैं। कि कितने माता-पिता, भाई-बन्धु ऐसे हैं जो इस प्रकार का व्यवहार करते होंगे।

नवागन्तुक जिज्ञासु को ग्रीष्म ऋतु व वर्षा-काल के अनुकूल वे नवी मच्छरदानी देते और यदि शीत ऋतु होती, तो उसके मना करने पर भी कम्बल देते और रुईदार बण्डी सिलवा देते। शीत ऋतु में अधिक कार्य के समय कार्यकर्ताओं को शीत- रात्रि में लैम्प के प्रकाश में कार्य करना पड़ता, तब उनको गरम दूध या चाय देते तथा अन्य गरमी पहुँचाने वाले भोज्य पदार्थ प्रदान करते।

शीतकाल की एक रात्रि में नेपाल के एक कुलीन परिवार के भक्त अतिथि ने रात्रि-सत्संग के उपरान्त नीचे जा कर देखा कि रसोईघर में आग जल रही है, पानी उबल रहा है तथा एक साधक एक प्याला दूध गरम कर रहा है। यह देख कर उस अतिथि ने स्वामी जी से हँस कर कहा- "ऊपर अखण्ड कीर्तन चलता है, नीचे अखण्ड रसोई चलती है। आप प्रत्येक बात का पूर्ण ध्यान रखते हैं।"

स्वामी जी ने गम्भीरता से उत्तर दिया - "आपने समुचित बात कही है। वास्तव में मैं अखण्ड कीर्तन व अखण्ड रसोई दोनों में विश्वास करता हूँ। जब तक शरीर-रक्षा के लिए अखण्ड रसोई न हो, अखण्ड कीर्तन नहीं चल सकता। कार्यकर्ता विश्राम के बिना कार्य में रत हों, तो उनकी हर आवश्यकता की पूर्ति करना मेरा धर्म है।

"मैं अखण्ड चाय, अखण्ड दूध, अखण्ड फल-पूरियों से ईमानदार एवं परिश्रमी कार्यकर्ताओं का पोषणा करता हूँ। परिणामतः 'दिव्य जीवन संघ' पुस्तकों, लघु पुस्तकों, परिपत्रों आदि से

चतुर्दिक्, आध्यात्मिकता का प्रचार कर रहा है। ऐसे दिव्य कार्यकर्ता ही मेरी महान् निधि हैं। मेरे लिए एक साधक दश हजार सम्राटों से अधिक मूल्यवान् है।

"अपने नश्वर ऐश्वर्य से राजा-महाराजा तथा तानाशाह मानवता का क्या हित करते हैं? क्या वह मानव को आवागमन के चक्कर से मुक्त कर सकते हैं? ये साधक विश्व-हित के लिए परम, महान् एवं सत्य वरदान स्वरूप हैं। यदि मैं एक साधक को लक्ष्य-प्राप्ति के निकट पहुँचा सका, तो यह विश्व की महान् सेवा होगी। इसका अर्थ यह है कि वह प्रेरणा-स्रोत बन कर असंख्य जनों को जाग्रत करने व उन्नत बनाने की सेवा करेगा। इस प्रकार दिव्य कार्य का प्रचार व प्रसार होगा।

वे साधकों का बहुमूल्य मूल्यांकन करते हैं और उनके हित का ध्यान रखते हैं तथा निष्काम प्रेम की वर्षा करते हैं। यह सब स्वामी जी के अन्तरंग व्यक्तित्व के सुन्दरतम पक्ष हैं। आश्चर्य नहीं यदि सैकड़ों उत्सुक साधक उनकी सेवा में पहुँचते हैं। इस प्रकार इस दिव्य कार्य में सक्रिय स्वयंसेवकों का अभाव कभी नहीं खटकता।

स्वामी जी यह सब कैसे करते हैं? क्या वह अपने सिद्धान्त या विचारों को उन पर आरोपित करते हैं? क्या अपने अनुयायियों में वृद्धि करके उन्होंने एक पथ, सम्प्रदाय या विशिष्ट परिधि निर्मित करने का प्रयत्न किया है? विलक्षण बात तो यह है कि वे प्रिय साधकों को अपनी मान्यताओं से कदापि विचलित नहीं होने देते। उन्हें स्व-धर्म का परिपालन करने को कहते हैं और कोई मन्त्र या विशेष साधना अपनाने को बाध्य नहीं करते। किसी को न तो अपनी निष्ठा परिवर्तन करने को कहते हैं और न ही उसे अपनी निसर्ग-प्रदत्त पूर्व-मान्यताओं को त्यागने को कहते हैं।

उदाहरणतः पूज्य उत्तम (सौम्य स्वभाव के कारण वे इस नाम को वास्तव में सार्थक करते थे) नाम का एक बौद्ध भिक्षु आश्रम में योग-प्रशिक्षण के लिए निवास करता था, तो रात्रि-सत्संग में स्वामी जी उसे बौद्ध-मत की प्रार्थना तथा पाली भाषा के भजन गाने के लिए कहते।

दो पारसी भक्त थे जिनमें से एक शान्त व पावन वी. लुंगराना और दूसरा स्नेही और सरल हृदय वाला डेरियस के. था, उनके सम्बन्ध में देखा गया कि जब स्वामी जी उन्हें जोरास्ट्रियन तथा जैन्द अवेस्ता में से किसी अंश का गान करने को कहते, तो वे स्वामी जी के निवेदन के विपरीत '**ॐ नमः शिवाय**' का ही गान करते। इसी प्रकार दो और साधक, जो मन्त्र-दीक्षा लेने स्वामी जी के समीप आये थे, ऐसा ही करते।

एक लिवरपूल का अँगरेज साधक था, दूसरा महाराष्ट्र का दत्तात्रेय का उपासक था। अँगरेज व्यक्ति को '**ॐ जीसस**' जपने और लिखने को कहते। महाराष्ट्रियन जो शिव के पंचाक्षर मन्त्र की (जो स्वामी जी का अपना मन्त्र है) दीक्षा लेना चाहता था, किन्तु स्वामी जी ने उसे 'दत्तात्रेयाय नमः' जपने को कहा और इसमें परिवर्तन की आज्ञा नहीं दी। उन्होंने उसे दत्तात्रेय की ही दीक्षा दी। वे अपने साधको के साथ व्यवहार में कोई गोपनीयता नहीं रखते तथा चेला-मण्डली को बढ़ाने के लिए और कोई विशेष पद्धति नहीं अपनाते।

यह है आज की महान् विभूति का चित्र-एक भद्र, निष्कपट आत्मा, महानता और सादगी की समन्वय मूर्ति, सदैव शान्त विग्रह, किसी का दोष न देख सकने वाले, किसी के द्वारा किया गया अहित याद न रखने वाले, कभी किसी भी स्थिति में क्रूद होने वाले, मौन शक्ति के आकार

तथा प्रेम और मृदुता की पृष्ठभूमि में एक आत्म-विश्वास, विचार-प्रसार में दृढ़ निश्चय और उद्देश्य-पूर्ति में उत्कट उत्साह।

यह रुचिकर रहेगा कि संक्षेप में उनके साधना-काल के आचरण का ज्ञान प्राप्त किया जाये कि किस तरह उन्होंने संयम को अपनाया, किस-किस परीक्षा में पड़े और उन्होंने किन-किन वस्तुओं का त्याग किया ?

(३)

जैसा कि खानों से प्राप्त मणियों एवं स्वर्ण-आभूषणों की पृष्ठभूमि में इतिहास रहता है, वैसे ही बहुत से पुराने कागजों और परिपत्रों के ढेर में स्वामी जी की दो डायरियाँ उनके साधक से सन्त-पर्यन्त जीवन-निर्माण के आन्तरिक विकास पर प्रकाश डालती हैं। वे मौन पृष्ठ मूक भाषा में बड़े-बड़े ग्रन्थों की सी बातें अभिव्यक्त करते हैं। ये पृष्ठ अपनी रोचक कथा स्वयं अभिव्यक्त करते हैं। मैं आपके सम्मुख उन्हें वैसे ही प्रस्तुत करता हूँ।

स्वामी जी की एक छोटी-सी डायरी (जो उनके एक निकटतम शिष्य ने खोज निकाली) में उँगलियाँ फेरते हुए मेरी आँखें एक आयताकार पृष्ठ पर रुक गयीं, जिसमें स्व-शिक्षा की ये संक्षिप्त पंक्तियाँ अंकित थर्थी :

१. अक्रोध की स्थिति में रहो।
२. दुष्टों की सेवा करो।
३. निम्नवर्ग की सेवा करो।
४. मुसलमान के हाथ से भोजन ग्रहण करो।
५. विष्ठा को स्वयं हटाओ।
६. साधुओं के वस्त्र धोने में प्रसन्नता का अनुभव करो।
७. साधुओं के लिए पानी भर कर लाओ।

प्रारम्भ से ही नम्रता और सादगी उनकी साधना का प्रधान अंग बन गयी थी। उन्होने इस नम्रता की दैवी सम्पत्ति को सेवा-भावना द्वारा विकसित किया। उनकी जीवनी पर दृष्टि डालने से ही उनकी सफलता का यह रहस्य मालूम हो सकता है कि उनका जीवन किस प्रकार नम्रता और सादगी से विभूषित रहा। एक और पृष्ठ यह अपूर्व कथा प्रस्तुत करता है :

नमस्कार-साधना

प्रत्येक व्यक्ति को पहले स्वयं आप नमस्कार करो।

तीसरे पृष्ठ पर दो संक्षिप्त सुवाक्य मोटे-मोटे किन्तु स्पष्ट शब्दों में अंकित हैं:

१. अक्रोध की स्थिति में रहो।
२. निर्वैर की स्थिति में रहो।

इसके दूसरी ओर देखिए :

१. प्रतिशोध की भावना न रखो।
२. बुराइयों का प्रतिकार न करो।
३. बुराई के बदले भलाई करो।
४. अपमान और आयात सहो ।

एक और व्यक्तिगत दैनन्दिनी में यह समानान्तर साधन आत्मानुशासन के बिन्दुओं को प्रस्तुत करता है :

५८. कभी भी उद्दण्ड, कठोर और क्रूर मत बनो।
५९. शिष्टाचार, विनम्रता, सौजन्यता, सभ्याचार, भद्रता, सज्जनता, कोमलता आदि सद्‌गुणों को विकसित करो।
६६. संसार में घृणास्पद कुछ भी नहीं है। पृणा अज्ञानता है। प्रेम और विचार से किसी वस्तु या जीव के प्रति सारी घृणा को दूर करो।

दूसरे दो स्वच्छ पृष्ठों को उनकी सुपरिचित हस्त-लिपि से अंकित पाया :

१. किसी के द्वारा किया हुआ अहित शिशुवत् शीघ्र ही भूल जाओ।
२. हृदय में इसे कभी स्थान न दो, अन्यथा वह घृणा को प्रदीप्त करेगा।

विकसित करो
क- (१) मैत्री।
(२) करुणा।
(३) दवा।
(४) प्रेम।

ख- (१) क्षमा।

सबका ध्यान रखते हुए, सबसे परम प्रेम करते हुए 'भूल जाने और क्षमा करने के सहज स्वभाव के होते हुए भी आप पूर्ण निश्चिन्तता तथा पूर्ण अनासक्ति से कार्य करते हैं। वे कई बार ऐसा भी कहते हैं- "यदि ये सब वस्तुएँ, सब पुस्तकें, सब भवन और कार्य बन्द हो जायें तो भी कोई चिन्ता नहीं होगी। यदि आवश्यकता पड़े तो लोगों के मूल्य न दे पाने की स्थिति में इन्हें निःशुल्क ही वितरित कर देंगे। यही हमारा उद्देश्य और धर्म है। हम साधु तो किसी भी दिन क्षेत्र से भिक्षा ले लेंगे। नहीं तो चार गृहों के समक्ष अंजलि फैला कर भिक्षा माँग लेंगे। एक साधु के लिए इतना ही पर्याप्त है।"

दैनन्दिनियों के पृष्ठों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उन्होंने साधुता की सच्ची भावना को कठोरता से अपना लिया था। उसका एक पृष्ठ तो यह बताता है कि एक ही गृह से बराबर भिक्षा लेने से कहीं आसक्ति की भावना न जाग पड़े, इसलिए उन्होंने तुरन्त ही यह नियम बना लिया कि दो या तीन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से बारी-बारी से दो-दो रोटियाँ लेनी आरम्भ कर दीं। आगे चल कर उन्होंने क्षेत्रों से भोजन लेना भी बन्द कर दिया और जहाँ-कहीं से स्वतन्त्र-रूप से भिक्षा लेनी आरम्भ कर दी।

एक अनुच्छेद से एक महत्त्वपूर्ण बात का पता चलता है- "साधु बन जाने पर नया जन्म होता है। यदि बड़े क्षेत्राधिकारी आपको अपशब्द कहें, तो भी सहन करो। पूर्वाश्रम के जीवन व जन्म का विचार भी न आने दो।"

दूसरे अनुच्छेद से यह पता चलता है- "जहाँ तक सम्भव हो सके, बिना जूते के चलो। साधु को आजीवन कठोर जीवन-यापन करना आवश्यक है।"

पुनः- "एक मास या एक पक्ष के लिए स्वर्गाश्रम को भी बिना किसी को सूचित किये छोड़ दो। दो वस्त्र तथा एक कम्बल साथ में ले लो। गंगा की नहर के किनारे-किनारे हरिद्वार से मेरठ तक विचरते रहो। मधुकरी पर निर्भर रहो। ग्रामवासियों से बात न करो। इन दिनों मौन व्रत का पालन करो।"

आमतौर पर यह देखा गया है कि जब कोई गृह और सम्बन्धियों का त्याग करता है, तो वह समझता है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों के मोह और आसक्ति से मुक्त हो गया, पर बात ऐसी नहीं है। उससे केवल वस्तुओं का त्याग किया है; किन्तु आसक्ति साथ ही ले आया है। यह आसक्ति उसके भीतर बराबर रहती है, अतः त्याग के पश्चात् साधना-काल में मन पर उभर आती है और भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। स्वामी जी ने अनथक परिश्रम द्वारा मन के कोने-कोने से अपने समस्त क्रियाओं तथा विचारों का निरीक्षण करते हुए भिन्न-भिन्न उपायों से इसका पूर्णतया मूलोच्छेदन कर दिया।

मन का सच्चा विकास विरल ही देखने को मिलता है। शीघ्रता तथा तत्परता से दान देने की भावना किसी में सहज ही नहीं आती। आश्चर्यचकित कर देने वाली उदारता और हृदय की विशालता जो स्वामी जी में पायी जाती है, उसका पूर्वाभ्यास परिश्रमपूर्वक स्वर्गाश्रम में ही पूर्ण कर लिया गया था। बहुत दिनों तक यात्रियों द्वारा समर्पित धन, फल, अन्य खाद्यान्न पदार्थों आदि का स्वयं उपभोग न करके सब-कुछ अपने पड़ोसी महात्माओं में बाँट देते। स्वामी जी इस अभ्यास में इतने दृढ़ थे कि हम सुनते हैं कि पड़ोसी साधु भेंट देने वाले सभी यात्रियों को स्वामी जी की ओर अवश्यमेव भेज देते; क्योंकि वे जानते थे कि अन्ततः ये सभी वस्तुएँ उन्हें ही मिलेंगी।

उन दिनों जब उन्हें प्रतिमाह एक निश्चित राशि अपने व्यय के लिए मिलती, तो वह जान-बूझ कर सम्पूर्ण राशि का दान कर देने का अभ्यास करते और स्वयं कई मास केवल क्षेत्र-भिक्षा पर ही निर्भर रहते।

आज स्वामी जी में जो आत्म-विश्वास, परम महत्ता और अखण्ड शान्ति की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं, इसकी पृष्ठभूमि में उनके उच्च कोटि के ध्यान के अभ्यास की शक्ति है। यत्र-तत्र डायरी के कुछ अनुच्छेद उनके ध्यान के महान् अभ्यास को दर्शाते हैं।

"अधिक-से-अधिक समय (८ घण्टे) मात्र ध्यान में बिताना चाहिए। हो सके तो १२ वा १६ घण्टे प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए।"

"ध्यान के अभ्यास-काल में स्वाध्याव और औषधि आदि का सेवन भी छोड़ देना चाहिए।"

"शीत-ऋतु का सदुपयोग करना चाहिए। ध्यान के अभ्यास के लिए वह उपयुक्त ऋतु है।"

निःसन्देह उनके आन्तरिक साधन और तप के कारण ही उनकी वाणी और दृष्टि में रहस्यमयी शक्तियों का भास तुरन्त हो जाता है। इन रोचक डायरियों में स्थान-स्थान पर निम्नलिखित तपश्चर्या की बात पायी जाती है कि नमक छोड़ो, केवल ऐरी निर्वाह करो, जूते और छाते का प्रयोग न करो, कुछ दिनों तक उबले आलुओं पर तो आदि। जिह्वा-आस्वाद को पूर्णतया वश में करने के लिए उनकी उग्र तपस्या के सम्बन्ध में एक स्थान पर निम्न बातें लिखी देख कर मैं स्तब्ध रह गया:

१. नमक छोड़ो।
२. चीनी न खाओ।
३. मसाला न खाओ।
४. सब्जी छोड़ो।
५. मिर्च छोड़ो।
६. इमली छोड़ो।

इन सबको पढ़ कर मैं तो दुविधा में पड़ गया कि इन सबसे प्रेरणा और साहस प्राप्त करूँ या साधुओं से भेंट करने की आशा ही सदा के लिए छोड़ दूँ। मेरा तो दिल ही बैठने लगा। चेहरा पीला पड़ गया। आगे देखिए :

"जब तक आप इन सब बातों का अभ्यास नहीं करेंगे, आप सच्चे साधु नहीं बन सकते।"

मैंने भय से, आदर से, आश्चर्य से उन्हें मूक प्रणाम किया। पिघलने, गलने, ढलने, छेदने, तराशने और रेतने की कठोर निर्दयतापूर्ण स्थितियों से इस मणि को गुजरना पड़ा।

ऐसे हैं स्वामी जी!

एकोनविंश अध्याय

यही है मेरी देन

कला, विज्ञान, नैतिकता, धर्म आदि समस्त मानवीय क्रियाकलाप-सम्बन्धी क्षेत्रों में जिन महान् आत्माओं ने असाधारण प्रगति की-जो जन-साधारण के सामर्थ्य बाहर थी-उन्होंने अपनी

विशिष्ट छाप समय-पट्ट पर अंकित की। उन्होंने अपनी जीवनियों व उपदेशों द्वारा विशेष सन्देश तथा विशिष्ट आदर्श प्रदान किया और उच्च कोटि की कृति वसीयत के रूप में तत्कालीन मानव-जाति एवं भावी जनता के हितार्थ प्रस्तुत की।

ईसामसीह ने पर्वत पर से जन-समूह को अपना अक्षय अमर सन्देश दिया। सूली पर से दिया गया उनका निम्नांकित सन्देश मानव के हृदय-पटल पर सदैव अंकित रहेगा-"हे पिता! इन्हें क्षमा करना, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।" इस प्रकार उन्होंने श्रेष्ठतम दिव्यता और उच्चतम सन्तत्व का, नहीं, नहीं, अपितु श्रेष्ठतम दिव्यता का सारतत्त्व इस संक्षिप्त सारगर्भित वाक्य में अभिव्यंजित किया।

सुकरात ने अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन द्वारा सदाचार एवं अडिग नैतिकता का आदर्श आगे आने वाली पीढ़ी को प्रदान किया। वह इसी के लिए जिया और इसी के लिए मर मिटा। उसने अपने भव्य मरण द्वारा संसार को यह दिखला दिया कि नैतिक साहस एवं शूरता क्या होती है और अन्तिम समय तक किस प्रकार व्यक्ति अपने विचारों पर सुस्थिर रह सकता है।

मोजार्ट और बीथोवन के परिश्रम ने संगीत के क्षेत्र में विभिन्न स्वरों के समत्व और भिन्नत्व में, संगीत-नाटकों और आशु वक्तव्यों में दिव्य मधुरता को प्रवाहित कर सभी लोगों को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। इसी प्रकार जेनेर तथा राइट पेस्चुर एवं पियरे क्यूरी ने टीका-सम्बन्धी ज्ञान और रेडियम के आविष्कार से विज्ञान को सुसम्पन्न किया। 'रेन' का महान् जीवन सेण्ट पाल के भव्य वैभव का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

महान् शाक्य मुनि बुद्ध ने मातृभूमि को श्रेष्ठ अष्टांग-मार्ग प्रदान किया, जब कि अशोक ने एक आदर्श शासक का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रेमोन्मत्त गौड़ चैतन्य ने नाम-संकीर्तन और प्रेम की भेंट दी। श्री रामकृष्ण परमहंस ने कामिनी-कांचन के त्याग पर बल दिया तथा समस्त धर्मों की एकात्मकता को प्रदर्शित किया।

स्वामी रामतीर्थ की आनन्दोन्मत्त दिव्यता से दी झलक अभी कल की ही बात प्रतीत होती है। उनका अन्तिम जीवन शिशु की उन्मन ज्योतनामयी खिलखिलाहट तुल्य था तथा जिन्होंने आध्यात्मिक सिद्धान्त से वेदान्त को 'सन्तुलित असावधानी' का नाम दिया है। उन्होंने असीम आनन्द तथा असीम आत्म-निर्भरता को उपार्जित करने का सशक्त समर्थन किया।

हिमालय एवं गंगा-तट वासी श्रेष्ठ व आत्म-परित्यागी सन्त ने इसी प्रकार अपना सम्पूर्ण जीवन पूर्णरूपेण मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया। मैंने पूर्ण प्रयास किया है कि अपने सामने प्रकट उनके उच्चादर्शों एवं विशिष्टताओं को आपके सम्मुख विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करूँ।

इन दो दशकों में जन-हितार्थ की गयी निष्काम सेवा द्वारा स्वामी जी की प्रवृत्ति की कुछ विशिष्टताएँ विशेष रूप से उभरी, जो वर्तमान पीढ़ी को विशिष्ट अलभ्य उपहार-स्वरूप प्राप्त हुई हैं। अब तक अज्ञात साधना और आत्मानुशासन की विधियाँ, विलक्षण विचार व आध्यात्मिक जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण आदि स्वामी जी की देन हैं। समय एवं परिस्थितियों की माँग के अनुसार विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने कुछ विचारों की व्याख्या प्रस्तुत कर उसके महत्त्व पर बल दिया है।

जीवन को गतिमान करने के लिए स्वामी जी ने जिन व्यावहारिक पहलुओं पर बल दिया है, उनमें से मुख्य ये हैं- आध्यात्मिक दैनन्दिनी का प्रयोग करना, संसार के क्रिया-कलापों के मध्य प्राणदायिनी साधना के सत्ताईस नियमों का सावधानी से पालन, दिन के प्रत्येक क्षण की सदुपयोगिता से लाभान्वित होने की विलक्षण प्रक्रिया।

द्वितीय-जिस लिखित जप की अब तक उपेक्षा होती रही, उसे उन्होंने पुनर्जीवित किया। इस अभ्यास का सफलतापूर्वक इतना प्रचार-प्रसार हुआ कि अखिल भारत से स्वामी जी को विभिन्न शिष्यों द्वारा भेजे गये लिखित नाम-जप के बण्डल प्रतिदिन डाक द्वारा प्राप्त होते हैं।

तृतीय-स्वामी जी साधकों से मुद्रित प्रतिज्ञा-पत्र भरवाते हैं, जिससे वे नियमों के अनुपालन का संकल्प लें। इसका आशय यह है कि चलचित्र, धूम्रपान, उपन्यास का व्यसन आदि जैसी आजकल की प्रचलित बुराइयों को त्याग कर चरित्रवान् बनो।

चतुर्थ-व्यक्ति अपने समक्ष सदैव आदर्श-वाक्य रखे। उन्हें गृह की दीवारों पर मोटे अक्षरों में अंकित करे या कागजों पर लिख कर जेब में रखे, जिससे दिन में कई बार पढ़ कर सावधान रहा जा सके। 'दिव्य जीवन संघ' के प्रमुखालय में ये आदर्श-वाक्य
मोटे अक्षरों में संगमरमर पर अंकित हैं। हिन्दी, संस्कृत और अँगरेजी भाषा में लिखित आदर्श-वाक्यों को दर्शक पर्वत पर अवस्थित भजन महाकक्ष में प्रविष्ट होने पर पढ़ सकता है।

एक सामान्य व्यक्ति की क्रियाओं का आध्यात्मीकरण करने के लिए उन्होंने साधना की एक अन्य व्यावहारिक प्रविधि बतलायी है- वह है निश्चित दिनचर्या का दृढता से पालन करना। विद्यार्थियों, गृहस्थियों, अवकाश प्राप्त व्यक्तियों और साधकों के स्थित्यनुसार दिनचर्या को चार-पाँच भागों में विभाजित किया गया है।

वर्तमान पीढ़ी के हृदयों में उन्होंने कौन से विचारों को सफलतापूर्वक संस्थित करने का प्रयत्न किया है? वैसे तो अनेक विचार हैं, किन्तु कुछेक पर उन्होंने अत्यधिक बल दिया है। उनकी समस्त शिक्षाओं में से जो विशिष्ट एवं सर्वोपरि शिक्षा है और जिस पर इन्होंने विशेष बल दिया है, वह है निष्काम सेवायोग।

स्वामी जी आग्रहपूर्वक कहते हैं कि इस भूलोक में समस्त प्राणी-वर्ग की निष्काम सेवा ही शुद्धिकरण की महान् शक्ति है। उच्च जीवन और विराट् आत्मानुभूति का यह एक महान् अपरिहार्य अंग है। नैतिक स्थिरता और आचारिक उन्नति की दृढ़ नींव के अभाव में आनन्द और पूर्णता-प्राप्त्यर्थ किये गये समस्त साहसिक प्रयत्न निष्फल हैं। आचारिक स्थिरता और नैतिक उन्नति के लिए किसी-न-किसी रूप में सच्ची एवं हार्दिक सेवा अपेक्षित है।

व्यक्ति में सन्निहित कच्ची धातु-रूपी अहं को पिघलाने के लिए यह एक सुन्दर प्रक्रिया है। जीवन में आनन्द, शान्ति और समृद्धि-रूपी परिशुद्ध स्वर्ण के प्राप्त्यर्थ यह एक परमावश्यक प्रक्रिया है। प्रारम्भ में ही शक्ति और ध्यान के लिए स्वयं को उपयुक्त एवं योग्य समझ लेना घोड़े के आगे गाड़ी लगा देने जैसा है।

उदारता और परोपकार को अधिक महत्त्व देते हुए वह कभी थकते नहीं। पूजा-भाव से किया गया एकमात्र यह कार्य ही लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होता है। उनके विचार से यह साधन और

साध्य दोनों ही है। यहाँ इससे व्यक्ति अनेक बार इस परिणाम पर पहुँचता है कि स्वामी जी का प्रमुख उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार-प्राप्त्यर्थ निष्काम सेवा को निश्चयात्मक पथ बताना है। निकट-सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का यह अभिमत है कि इस युग की महान् पूजा के रूप में निष्काम सेवा के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठापित करना ही स्वामी जी के जीवन का प्रमुख लक्ष्य है।

चाहे कोई किसी भी दृष्टिकोण से देखे, इस विशिष्टता को स्वामी जी के दैनिक जीवन का सहज अंग ही पायेगा। जन-साधारण, अभ्यागत, नवागन्तुक, अतिथि विद्यार्थी आदि सभी की सेवा में तल्लीन हो जाने में ही वे परम आनन्द की अनुभूति करते हैं। उनका परम प्रिय विषय निष्काम सेवा है जिससे वे जीते हैं, जिसके विषय में वे चर्चा करते हैं तथा जिसके विषय में वे लिखते हैं।

सेवा की पिपासा ही आज के जीवन की विशिष्टता है जो सर्वत्र विद्यमान है। सब देशवासियों के हृदयों में समाज-सेवा की भावना सर्वोपरि है। विज्ञान द्वारा दूरी के बिलकुल मिट जाने से व्यक्ति स्वयं को विश्व का नागरिक मानता है। स्वामी जी के विचारानुसार स्वयं को विश्व से पृथक् मानना मूर्खता है। यह भावना मृतप्राय है।

शक्ति के मद से अन्धे कुछ व्यक्तियों में घृणा, हिंसा और प्रतिरोध की भावना भले ही अल्पकाल के लिए विद्यमान हो; किन्तु अधिकांशतः विश्व-बन्धुत्व की भावना के सूत्र ने विश्व को अनुस्यूत कर रखा है। आज की भावना दूसरों के साब बाँट कर खाना, सेवा करना और पर-सुखार्थ त्याग करना है। पाठक चाहे कहीं भी दृष्टिपात करें, वे देखेंगे कि विचारकों, दार्शनिकों और सन्तों ने सेवा को ही आदर्श मान कर उसकी महिमा का गान किया है।

यह भी एक सामान्य अनुभव है कि अधिकांश लोगों में सेवा करने की भावना तो है; किन्तु वे भली प्रकार यह नहीं जानते कि उसे किस क्षेत्र में, कहाँ से और कैसे प्रारम्भ करें? यह है भी भ्रामक। इस कठिनाई के निवारणार्थ गृहपति-तुल्य स्वामी जी की यह सेवा स्मरणीय रहेगी। इस नव-युग में प्रविष्ट होते ही उन्होंने सेवा-क्षेत्र में यत्नपूर्वक विशद व्याख्या द्वारा ऐसी प्रत्यक्ष सेवा की जिसका ऋण नहीं चुकाया जा सकता। कर्मयोग पर विस्तृत पुस्तक लिख कर उन्होंने बाधाओं के निवारणार्थ तथा सेवा को कार्यान्वित करने के विविध उपाय वर्णित किये हैं।

सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए, चाहे उसमें कोई निम्नतर श्रेणी का ही क्यों न हो, स्वामी जी ने सबकी स्थिति एवं क्षमतानुसार दूसरों के लिए उपयोगी होने के विविध उपाय बताये हैं। अपनी सेवा की भावना को कार्यान्वित करने तथा परार्थ लाभदायक सिद्ध होने के लिए उपायों की कमी अब नहीं खटकेगी।

व्यक्ति को अब तक तो कर्मयोग के आशय का स्पष्ट ज्ञान ही नहीं था, जब कि भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग आदि की व्याख्या व अभ्यास-प्रक्रिया स्पष्ट थी। अब तक लोग मात्र इतना ही जानते थे कि अनासक्त भाव से कर्म करना ही कर्मयोग है। कोई भी यह नहीं जानता था कि कर्म कैसे करना है, क्या करना है और फल का रूप क्या होगा? जो-कुछ था, वह स्पष्ट एवं सन्तोषदायक नहीं था।

स्वामी जी की इस पुस्तक (कर्मयोग) ने मानव-समाज को एक अमूल्य निधि के प्रदान की है, क्योंकि इसने कर्म-मार्ग विषयक अस्पष्टता को दूर किया है। निष्काम सेवा हे विविध रूपों पर

उसने पूर्ण प्रकाश डाला है और कर्मयोग व्यावहारिक रूप में कैसे अभिव्यक्त होता है, जीवन के हर क्षण में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति निष्काम सेवा कैसे कर सकते हैं-इस विषय पर उन्होंने मानव-समाज को अमूल्य उपहार दिया है।

इसके पश्चात् उपेक्षित ब्रह्मचर्य एवं नैतिक पवित्रता को नवीन रूप से स्पष्टतया दर्शाना उनकी दूसरी महत्ता है। आधुनिक राष्ट्र तथा नवयुवकों को इस महत्त्वपूर्ण विचार का पुनः- पुनः ज्ञान कराने के लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न किया है। यह इस देश की माँग नहीं है, यह आधुनिक विश्व-भर की माँग है। नवयुवकों के नैतिक पतन को रोकने तथा आदर्श के नये लोक का द्वार खोलने के लिए मानसिक, वाचिक, कायिक-त्रिविध पवित्रता पर बल दे कर स्वामी जी ने अमूल्य सेवा की है।

उनकी कोई भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष और स्त्री के प्रत्येक जीवन-स्तर के लिए ब्रह्मचर्य जैसे महत्त्वपूर्ण विषय की चर्चा न की गयी हो। ब्रह्मचर्य से तात्पर्य केवल शारीरिक संयम मात्र से नहीं है, बल्कि त्रिविध प्रकार की-कायिक, वाचिक तथा मानसिक- पवित्रता से है। इसके लिए हम उनके ऋणी है।

ब्रह्मचर्य केवल अविवाहित तथा साधुओं के लिए ही नहीं, अपितु विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए भी है। अपने विशद अर्थ में वह उद्देश्य में स्वस्थ और संयम तथा पवित्रता की ओर उन्मुख होना है। यह जीवन की किसी विशेष अवस्था तक सीमित नहीं, बल्कि आयु-भर से सम्बन्धित पथ-दर्शक सिद्धान्त है।

हम स्वामी जी के कृतज्ञ हैं जिनकी कृपा से यह जान पाये कि ब्रहाचर्य व्यक्ति एवं राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ दृढ़तम नींव और सब प्रकार की उन्नति और उपलब्धियों का अपरिहार्य अंग है। सदाचार गृहस्थी, विवाहित स्त्री और विद्यार्थी सबके लिए ज्ञान से बढ़ कर है। अतः इन्द्रिय-दमन और आत्म-संयम चरित्र-विकास की मौलिक अपेक्षाएँ हैं। इसलिए नैतिक पवित्रता और ब्रह्मचर्य के विषय में यह नवीन दृष्टिकोण एक ऐसी आश्चर्यजनक निधि के रूप में सामने आया है, जिसे सबको प्राप्त करना चाहिए। इसका अभिप्राय साधक-जीवन में अनिच्छापूर्वक स्वयं को संयम के वशवर्ती करना नहीं है।

जिस आत्म-संयम और पवित्रता के आदर्श का उन्होंने समर्थन किया है, उसके आश्चर्यजनक, चमत्कारक एवं जाज्वल्यमान दृष्टान्त वे स्वयं है। स्वामी जी ने अपनी स्पष्टवादिता से, इस विषय से सम्बन्धित बेतुकी धारणाओं का सफलतापूर्वक निवारण कर दिया है। अब विचारवान् पुरुष और स्त्री इसे प्रकृति के नियमों का उल्लंघन, जीवन का व्यतिक्रम तथा साधुओं का अप्रचलित व असम्भाव्य आदर्श जैसी वस्तु नहीं मानते।

तीसरा वरदान जिसे प्रत्येक व्यक्ति को दृढ़तापूर्वक पालन करना है, वह है जप का नियमित अभ्यास। अब तक हमारे आध्यात्मिक साहित्य में केवल जप की महिमा बताने वाली कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। जप-साधना को आत्म-साक्षात्कार का एक स्वतन्त्र और स्वतःपूर्ण परम साधन प्रतिपादन के लिए भारत देश तथा समग्र विश्व स्वामी जी का अत्यधिक आभारी है।

उन्होंने जपयोग को साहसपूर्वक पूर्ण योग बतलाया है, न कि तान्त्रिक साधना का अंग मात्र। इस शिक्षा का वास्तविक महत्त्व एवं लोगों का मूल्यांकन भले ही हम अभी न कर पायें,

किन्तु लोगों में इसके क्रान्तिकारी प्रभाव का प्रमाण समय निश्चय ही दर्शायेगा। परिणामतः सहस्रों व्यक्ति माला ग्रहण करके नियमित रूप से जप करने लग गये हैं। जो व्यक्ति धर्म को व्यक्तिगत क्षमता से परे तथा इन अभ्यासों की आवश्यकताओं को मानवेतर समझते थे, उन्होंने अब स्वामी जी द्वारा अनुमोदित एव प्रतिपादित जप-साधना के प्रभावशाली ढंग को अपना लिया है जिससे उन्हें नव-जीवन की प्राप्ति हुई है।

जपयोग के लिए न तो असाधारण शारीरिक बल की और न ही असाधारण मानसिक शक्ति की आवश्यकता है। यह उच्चतम अनुभूति प्रदान करता है। यही कारण है कि अब जपाभ्यास करने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। जप-साधना की नयी तरंग तीव्रता से गतिमान हो रही है। प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में इसके अमिट प्रभाव लक्षित होंगे।

स्वामी जी ने विशुद्ध हठयोग के विषय को ले कर नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि के प्रति हमारे रहस्यमय व संशयात्मक दृष्टिकोण का निवारण किया है तथा हठयोग के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं की व्याख्याओं के स्पष्टीकरण द्वारा हमें उसकी उपयोगिता से परिचित कराया कि यह एक अति-सरल, बौद्धिक और पूर्णरूपेण व्यावहारिक पद्धति है, जिसके द्वारा हम उच्च स्तर के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं।

जहाँ पहले जन-साधारण आसन और प्राणायाम को गुप्त और हानिकारक समझते थे, वहीं अब स्वामी जी के सप्रयत्नों के फल-स्वरूप अनेक व्यक्तियों ने उसे अपनी दैनिक दिनचर्या में स्थान दे रखा है। स्वामी जी का हम अत्यधिक आभार- प्रदर्शन करते हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा अत्युपयोगी हठयोग के गोपनीयता तथा रहस्यमयता के आवरण को हटा दिया है। राष्ट्र के स्वास्थ्य-प्रदायक एवं जीवनदायिनी क्षमता के कारण इसकी व्यावहारिक एवं तात्कालिक उपयोगिता का समर्थन किया है।

स्वामी जी ने औषधि-विज्ञान और शरीर विज्ञान में कोई शोध-कार्य नहीं किया है, बल्कि स्वाध्याय और योगाभ्यास के आधार पर ही इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों से अवगत झा कर परितुष्टि प्राप्त की है। परिणामतः आसनों और प्राणायाम के क्षेत्र में राष्ट्र ने व्यापक रूप से रुचि ली।

यहाँ मैं एक बात की ओर ध्यानाकृष्ट करता हूँ कि जो अधिकांश पाठकों के लिए लाभदायक होगी। स्वामी जी पर यह आक्षेप किया गया है कि हठयोग के प्रचार-प्रसार में यह योगाभ्यास दुधारी तलवार तुल्य है। कारण यह बताया गया है कि पुस्तक में वर्णित इस योग की बाह्य सरलता से कई बार उत्साही पाठक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। शीघ्रता से अपने-आप अभ्यास करने के कारण वे अप्रत्याशित कठिनाइयों में फँस जाते हैं। यह भी तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि हठयोग के प्रचार-प्रसार से जितने लाभ सम्भव हैं, उतनी ही हानियाँ भी सम्भव हैं।

इन तथ्यों को नकारने का प्रयत्न न करते हुए मैं थोड़े से शब्दों में यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि किस प्रकार इन कठिनाइयों का दोष प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्वक इसके प्रचारकों और पद्धति पर थोपा जाता है। पद्धति के दृष्टिकोण से यह एक पूर्ण योग है। यदि हम इसके अभ्यास में निर्दिष्ट सभी नियमों का अक्षरशः परिपालन करें, तो यह हानिकारक कदापि नहीं। निर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन करने से हानि होती है।

स्वामी जी ने हठयोग की परिपूर्ण उपयोगिता के कारण इसको उपयुक्त और समुचित स्थान प्रदान करने का पूर्ण प्रयास किया है, जिसमें दोषारोपण के लिए बिलकुल स्थान नहीं है। अभ्यासी जिन कठिनाइयों में फँस गये, उनकी सम्भावना पहले ही थी। आप देखेंगे कि हठयोग या इससे सम्बन्धित विषयों पर स्वामी जी ने जो पुस्तकें लिखी हैं, उनमें उन्होंने सहज बुद्धि के प्रयोग और सावधानी पर बल दिया है।

हठयोग का अभ्यास करने के इच्छुक साधकों को जिन महत्त्वपूर्ण विशेषताओं से सम्पन्न होना चाहिए, स्वामी जी उनका विस्तृत पथ-निर्देश करने में कभी नहीं चूकते। वे कुछ अपरिहार्य प्रतिबन्धों का वर्णन करते हैं, जिनकी पूर्ति अभ्यास करने से पूर्व की जानी चाहिए। पर यथार्थ में देखने में क्या आता है? योग में प्रवीण व्यक्तियों का परिचय पढ़ने से अभ्यासी मोहित हो उसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए अधीर हो जाते हैं; किन्तु अभ्यास करने के पूर्व निर्दिष्ट नियमों का पालन नहीं करना चाहते। वे पवित्रता और पूर्व-तैयारी की धीमी प्रक्रिया की उपेक्षा करते हैं, परिणामतः दुःखी होते हैं। कि दोष दूसरों के ऊपर मढ़ना चाहते हैं।

स्वामी जी अभ्यास की अवस्था को सुरक्षित बनाये रखने में सहायक सभी विशेष निर्देशों को आवश्यक बताते हैं। जहाँ उनकी उपेक्षा होगी, वहाँ कठिनाई स्वाभाविक ही आयेगी। यौगिक अनुशासन-सम्बन्धी इन सभी अनुदेशों का अक्षरशः परिपालन करना चाहिए जो आवश्यक हैं, जैसे- युक्त आहार, अति का परिहार, पवित्रता और आत्म-संयम। कितने लोग हैं जो इनका पालन करते हैं?

औषधि की बोतल या क्रीम की शीशी पर अंकित निर्देशों और यातायात- सम्बन्धी नियमों का पालन आज का व्यक्ति पूर्णतया करेगा, किन्तु जब हठयोग के अभ्यास के पूर्व-निर्दिष्ट नियमों के पालन करने की बात सामने आती है, तो उसके लिए वह धैर्य खो बैठता है। हठयोग के अभ्यास का फल तो चाहता है; किन्तु अनिवार्य नियमों की अवहेलना करता है। निःसन्देह परिणाम इच्छानुकूल नहीं होगा। यदि साधक स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन करें, तो महती सफलता अवश्यमेव प्राप्त होगी। अच्छा या बुरा परिणाम तो अभ्यासी के द्वारा निर्धारित नियमों का सावधानी से परिपालन अथवा उल्लंघन करने पर निर्भर है।

हठयोग के पुनर्जीवित होने का प्रमाण भारत के कोने-कोने से आने वाला पत्राचार है। स्वामी जी की हठयोग-सम्बन्धी पुस्तकों के ध्यानपूर्वक स्वाध्याय से सैकड़ों व्यक्तियों ने आसनों, क्रियाओं, मुद्रा, बन्ध व प्राणायाम में अत्यधिक निपुणता प्राप्ति का प्रमाण जितना इस पत्राचार से ठीक-ठीक ज्ञात होता है, उतना किसी अन्य साधन से नहीं होता। ऋषिकेश में स्थित शिवानन्दाश्रम में बहुत से पाठकों ने आसनों, क्रियाओं व प्राणायाम का प्रदर्शन करके स्वामी जी को यह कहते हुए चकित कर दिया कि यह सब ज्ञान और निपुणता उनकी पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त हुई है।

स्वामी जी के बहुमूल्य विचार आज की पीढ़ी के लिए एक मूल्यवान् निधि

प्रथमतः उन्होंने इस संशय का निवारण किया कि आध्यात्मिक साधना विशेष वर्ग और जीवन की विशेष समयावधि के लिए है तथा सामान्य जीवन की दिनचर्या से पृथक् है।

दूसरी ओर उन्होंने यह बतलाया कि साधना जीवन की एक पद्धति है। साधनामय जीवन-यापन करना ही स्वयमेव जीवन है। प्रत्येक क्रिया-मानसिक एवं शारीरिक, आन्तरिक एवं बाह्य, ऐच्छिक एवं अनैच्छिक साधनानुसार सम्पन्न होनी चाहिए। इस भाव का ही यत्नपूर्वक रोपण एवं पोषण होना चाहिए। साधना को वैयक्तिक दैनिक दिनचर्या से अलग नहीं किया जा सकता।

स्वामी जी ने अपने अनेक पाठकों और पत्राचार करने वालों के मन पर यह भली प्रकार अंकित कर दिया कि साधना ही मानव-जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। इस उद्देश्य के प्राप्त्यर्थ ही मानव-जीवन और शरीर प्राप्त हुए हैं। जीवन के अन्य रूप प्रासंगिक और गौण हैं। हम इस तथ्य को समझने में जागरूक हो गये हैं कि साधना, सत्य के साक्षात्कार हेतु जीवन का लक्ष्य-बिन्दु है। इसमें ही हमारे जीवन की सार्थकता है। उनको धर्म तथा आध्यात्मिक जीवन की, इस बौद्धिक युग तथा राष्ट्र की भावना के अनुरूप तथा वर्तमान सदी की विशेष आवश्यकता के अनुकूल व्याख्या करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

समयोचित त्रिविध संयम-अहिंसा, सत्य और पवित्रता का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करने की परमावश्यकता है। आज के समाज और देश का सभ्य वर्ग जो प्रत्यक्षतः तीन बुराइयों से आक्रान्त है, उनका प्रतिरोध केवल यह आक्रमणकारी त्रिविध प्रतिपक्ष-भावना ही कर सकती है।

१९१४ या इससे पूर्व के अन्ताराष्ट्रीय व अन्तरप्रजातीय सम्बन्धों में क्रूरता, घृणा और हिंसा प्रत्यक्ष परिव्याप्त है। व्यापारिक व अर्थ-परायण समुदायों में झूठ व कपट सर्वत्र परिलक्षित होता है। आधुनिक समाज में लाभ-हानि और परिग्रह का ही राज्य है। व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में असंयम और अनैतिकता का बोलबाला है। आज की तीव्र माँग यह है कि इन तीनों आसुरी शक्तियों पर सुनियोजित आक्रमण हो। इसी के सशक्त प्रतिरोध में स्वामी जी ने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य के त्रिविध संयमों का पालन अपने वचनों, पुस्तकों और दिव्य जीवन संघ की क्रियाओं द्वारा सम्पादित करवाने का प्रयास किया है।

उनकी कृतियों की एक और प्रमुख विशिष्टता यह है कि उन्होंने आध्यातिलक जीवन से व्यावहारिक पक्ष को प्रमुखतः विश्वात्मक आधार पर प्रस्तुत किया है, जिससे कि यह अभी और सर्वत्र विस्तृत रूप से क्रियान्वित हो सके। समस्त साम्प्रदायिक भावनाओं और रूढ़ियों को निकाल कर तथा अप्रांसगिक , अनावश्यक एवं अव्यवस्थित तत्त्वों का निवारण करके तथ्य के सारतत्त्व को वे हमारे अथवा विश्व के समक्ष आत्म-साक्षात्कार के लिए-आत्मानुशासन की पद्धति प्रस्तुत करते हैं। संसार में रहते हुए संसार द्वारा ही दिव्य जीवन-यापन करने का यह प्रधान एवं प्रमुख सिद्धान्त है।

व्यक्ति सदैव इस चेतनता को जाग्रत रखे कि सबमें वही शाश्वत सत्ता परिव्याप्त है। उन्होंने संसार के सम्मुख यह विचार प्रस्तुत किया कि समर्पण-भावना से कर्तव्य कर्मों को सम्पन्न करिए। आध्यात्मिकता के लिए उन्होंने अनिवार्य असाम्प्रदायिक सारतत्त्व को ही ग्रहण किया।

अन्ततः जो महान् ग्रहणीय एवं सशक्त वरदान हमें इस मानव-जीवन में प्राप्त हुआ है, वह है धर्म का सारतत्त्व-'कर्म करो' का अविस्मरणीय विचार। धर्म का तात्पर्य यही है। जिनमें आपको श्रद्धा है, जिनका आप आदर करते हैं, जिन्हें स्वीकारते हैं, चर्चा करते हैं, विचार-विमर्श करते हैं, अध्ययन करते हैं, शोध करते हैं-उनमें न तो किसी एक को और न ही सबको मानना धर्म है। कोई एक-दो साधारण कार्य जो वास्तव में आप करते हैं, जिनका आप अभ्यास करते हैं,

तदनुसार जीवन-यापन करते हैं यथार्थ में वही धर्म एवं आध्यात्मिकता है। ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर दश मिनट हरि-नाम-स्मरण करना गीता एवं धर्मशास्त्रों के ज्ञान की अपेक्षा वास्तविक धर्म है। इस महत्त्व एवं उत्साहपूर्ण आदर्शानुसार व्यावहारिक जीवन जीना एवं कर्म करना ही एकमात्र आध्यात्मिक जीवन है-इसे उन्होंने मानव के हृदय-पटल पर अंकित कर दिया है।

यदि आपको अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाना है, तो प्रथमतः यह देखिए कि वह अन्य व्यक्ति के जीवन में किस रूप में अभिव्यंजित होता है, फिर आप भी वैसा ही करिए। उन्होंने सक्रिय एवं सकारात्मक अभ्यास को महत्त्व देते हुए उसे इसका आवश्यक अंग माना है। सभी मान्यताओं और समग्र विश्वासों में तुष्टि तथा धार्मिक क्षेत्र में बौद्धिक मनोरंजन को इससे पृथक् माना है।

'जीवन-यापन कैसे करें' के विषय में बताने के उपरान्त धर्म के विषय में सब-कुछ बताने की आवश्यकता नहीं रहती। यह व्यक्ति पर छोड़ दिया जाता है कि वह पूछे- "अब मुझे धर्म के विषय में क्या करना है?" स्वामी जी के इस क्षेत्र में पदार्पण करने पर उत्तर यही मिलता है- "करने से प्रारम्भ करो, जैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ते जाओगे, तो जान जाओगे। समय आने पर सब-कुछ आपके सामने प्रत्यक्ष हो जायेगा।" सशक्त सकारात्मक ढंग से उन्होंने यही सार प्रस्तुत किया है कि 'कर्म करो।'

प्रातः चार बजे उठो। आधे घण्टे के लिए पद्मासन पर बैठो। अपने इष्ट-मन्त्र की १०८ माला जपो । कुछेक आसन करो। एक घण्टा मौन धारण करो। जिह्वा पर संयम रखो। मिर्च और इमली का त्याग करो। परिग्रह कम करो। प्रतिदिन शास्त्राध्ययन करो। नियमित रूप से दान करो। ब्रह्मचर्य का पालन करो। मृदु बोलो। कटुता का त्याग करो। प्रतिदिन कम-से-कम एक पृष्ठ इष्ट-मन्त्र लिखो। जागते और सोते समय भगवान् का नाम स्मरण करो। यही है धर्म का स्वरूप, जो स्वामी जी ने विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया।

कुछ कर्म करो। अभ्यास करो। वास्तविक जीवन-यापन करो। केवल विश्वास ही न करो, बल्कि वैसा बनो और वैसा ही जीवन-यापन करो।

विंशति अध्याय

पथ-निर्देश

व्यस्त जीवन के अवकाश के क्षणों में इस पुस्तक को खोलिए और इस अध्याय पर दृष्टि डालिए तथा जीवन के परम लक्ष्य-सम्बन्धी समस्त प्रश्नोत्तरों में स्वामी जी के विचार सार-रूप में ग्रहण कीजिए। विभिन्न अवसरों पर अभिव्यक्त उनकी उक्तियों का संकलन सुबोध शीर्षकों में प्रस्तुत है, जो अनौपचारिक बातचीत व कुछ उत्सुक जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तरों में अभिव्यंजित हुई। एक ही दृष्टिपात से आप इसके सारतत्त्व से अवगत हो जायेंगे।

वास्तविक जीवन : जीवन की पृष्ठभूमि में एक भव्य उच्चादर्श है जो खाने-पीने तथा सोने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पूर्ण स्वतन्त्रता, पूर्ण निर्भयता, पूर्ण आनन्दमय आत्ममय नित्य जीवन ही वास्तविक जीवन है। यह अमरत्व और परम शान्ति की स्थिति है। सभी प्रकार के विनाश, मृत्यु, अशान्ति व कामनातीत स्थिति ही नित्य तुष्टि की स्थिति है।

जगत् : पृथ्वी विशाल सृष्टि के एक बिन्दु मात्र से भी छोटी है। समस्त सृजन अपने अनगिनत सूर्य, चन्द्र तथा तारा-मण्डल सहित परम सत्ता की अनन्तता के एक क्षण तुल्य है।

सर्वातीत परम सत्य नित्य, अखण्ड, सत्, चित्, आनन्द है।

यह सम्पर्ण दृश्य जगत् अणुओं का पिण्ड मात्र है। यह महान् महासागर केवल दो गैसों की संयुक्त संरचना है।

लक्ष्य : इस पार्थिव जीवन का लक्ष्य सत्, चित्, आनन्द की परमानन्द स्थिति की अनुभूति करना है। जीवन का उद्देश्य मन की निम्न वृत्तियों को विजित करना, परिसीमाओं से ऊपर उठना और खोये हुए दिव्यत्व को पुनः प्राप्त करना है।

विघ्न-बाधाएँ : क्षणिक ऐन्द्रिक सुखों के आवर्त में मानव ने अपने लक्ष्य का विस्मरण कर दिया है। वह नहीं जानता कि वह वस्तुतः क्या कर रहा है? वह समझता है कि वह सब-कुछ

जानता है; किन्तु वह अज्ञान के गर्त में डूबा हुआ है। इस भ्रम का कारण अविद्या या माया है। यह रहस्यमयी शक्ति आपके वास्तविक रूप को आच्छादित कर लेती है तथा आनन्द व अमरत्व की प्राप्ति में बाधक बनती है। अतिशय अह-भावना, मानसिक चंचलता और ऐन्द्रिक सुखों की सतत लालसा के रूप में माया मानव को भ्रमित करती है। निज देह के, कांचन और कामिनी की आसक्ति के मद में मानव पूर्णतया अन्धा हो गया है।

लौकिक जीवन : इस जगत् का जीवन अव्यवस्थित, अपूर्ण तथा अशान्ति से परिपूर्ण है। सांसारिक विषय-सुख-भोगों की कामना ही इस दुःख का कारण है। इस विषय-सुख-भोग की कामना का कारण शान्ति को बाहर से प्राप्त करने की अज्ञानता है। समस्त कामनाएँ, आसक्तियाँ, निराशाएँ और यातनाएँ सदा के लिए विनष्ट हो जायेंगी, जब यह अनुभूति हो जायेगी कि शान्ति आपके हृदय में स्थित है। आपके भीतर ही आनन्द का सागर है। बाहर अहं एवं वासना की आग धधक रही है। सब प्राणी इसमें झुलस रहे हैं। उनके पास आत्म-निरीक्षण, मानसिक शुद्धि व ध्यान करने के लिए समय ही नहीं है।

एकमात्र उपाय : मानव शरीर ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिससे हम भव-सागर को पार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। त्रिलोक में मानव-जन्म ही महत्त्व एवं बहुमूल्य वरदान है। असावधानी और ऐन्द्रिक सुख में जीवन को व्यर्थ ही मत गँवाओ, अपितु प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करो। यदि आपने इस दुर्लभ अवसर को खो दिया, तो यह पुनः प्राप्त नहीं होगा। समय गतिशील है और मन व इन्द्रियाँ प्रत्येक पग पर आपको प्रलोभित कर धोखा दे रही हैं। विघ्न-बाधाएँ व विरोधी शक्तियाँ सर्वत्र हैं, तो भी मुक्ति के लिए यही समुपयुक्त स्थान एवं समुचित समय है। 'समुद्र की तरंगों के शान्त होने पर ही मैं स्नान करूँगा' - ऐसा सोचना मूर्खता है। साधना को स्थगित मत करो।

आवश्यकताएँ : अरे मानव! भली-भाँति समझ लो कि आपको इसी क्षण से प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देना होगा। जीवन अनिश्चित है, जब कि मृत्यु निश्चित है। यह भी समझ लो कि अनित्य लौकिक सम्बन्ध और नश्वर विषय-सुख असत्य हैं। सत्यता या वास्तविकता केवल मात्र ईश्वर ही है। सत्य और असत्य को विवेक से जानो । सत्यानुसन्धान के लिए उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न करो और मिथ्या प्रलोभनों से अपने को मुक्त करो। परीक्षाओं और कष्टों की घड़ी में स्थिर रहना सीखो। अपनी इन्द्रियों और आवेगों को नियन्त्रण में रखो। सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट और प्रसन्न रहो। आत्म-विश्वास एवं ईश्वर में निष्ठा बनाये रखो। सम्यक् ज्ञानानुसार आचरण करो।

खोज के स्थल : ज्ञान और आनन्द केवल संन्यासियों औरआरण्यकों की ही सम्पत्ति नहीं है। हृदय भगवान् का स्वर्ण-मन्दिर है। ईश्वर आपके और प्रत्येक प्राणी के हृदय में अवस्थित है। यह जगत् ईश्वर का परिव्यक्त स्वरूप है। अपने हृदय एवं मन को शुद्ध करिए, तभी आप अपने भीतर, बाहर एवं सर्वत्र उसी का दर्शन करेंगे।

मार्ग-दर्शक संकेत : सांसारिक दुःखों और अपूर्णताओं का सतत स्मरण करो। भगवत्साक्षात्कार-प्राप्त सन्तों का स्मरण करो और उनसे प्रेरणा प्राप्त करो। एक निश्चित उद्देश्य सम्मुख रखो; उत्तम विचारों की पृष्ठभूमि में जीवन का निर्धारित समुचित कार्यक्रम बनाओ। श्रद्धा और विश्वास से कार्य करो। आत्म-संयम और युक्त जीवन के अभाव में सद्गुण प्रस्फुटित नहीं होगा। अतः चरित्र का विकास करो। समस्त ज्ञान और धन-सम्पदा की अपेक्षा चरित्र अधिक

मूल्यवान् और शक्तिमान् है। शुद्धता, सत्यता, सच्चरित्रता और दृढ़ धारणा से आप तुरन्त जीवनादर्श की अनुभूति करेंगे।

मार्ग-चतुष्टय : भिन्न-भिन्न प्रवृत्यनुसार चार प्रशस्त मार्ग निर्देशित हैं। बौद्धिक प्राणियों के लिए ज्ञान-मार्ग, भावना-युक्त प्राणियों के लिए भक्ति-मार्ग, सक्रिय व्यक्तियों के लिए कर्म-मार्ग तथा रहस्यमयी प्रकृति वालों के लिए राजयोग है।

अनुसन्धान करिए-निज स्वरूप का, छल, भय तथा अहं के मूल कारण का, अवस्था-त्रय (जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति) का। अनित्यता को पूर्णरूपेण नकारिए, तभी आपमें ज्ञान-सूर्य का उदय होगा और आप माया के बन्धन से मुक्त होंगे।

ईश्वर के प्रति अगाध आसक्ति का उपार्जन करने से, उनसे दृढ़, प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने से तथा पूर्ण आत्म-समर्पण एवं पूर्ण प्रपत्ति से आप दिव्य दृष्टि और ईश्वर-चैतन्यता की प्राप्ति करेंगे।

मानवता, माता-पिता, पूज्यजन, गुरुजन, साधुओं, संन्यासियों, महात्माओं, रोगियों और निर्धनों के प्रति की गयी निष्काम सेवा ही ईश्वर की आराधना है। फल की इच्छा से रहित सेवा मन को शुद्ध करती है तथा इसे दिव्य प्रकाश व आनन्द-प्राप्ति के लिए तैयार करती है।

यम और नियम का अभ्यास, आसन में स्थिरता, प्राणायाम, बाह्य विषयों से मन की उपरति तथा प्रत्याहार से मन की एकाग्रता आती है। परिणामतः मन ध्यान व समाधि में संस्थित हो जाता है।

कर्मयोग साधना : बुराई का प्रतिकार भलाई से करो। जो आपका अहित करते हों, उनकी सेवा करो। दूसरे की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकताओं से अधिक महत्व दो। जो-कुछ आपके पास है, उसे दूसरों में बाँटो, निर्धनों को दान दो। अशिक्षितों को शिक्षित करो। रोगियों की परिचर्या करो। यथाशक्ति दूसरों के कष्टों का निवारण करो। सेवा के लिए अपनी सुख-सुविधाओं का परित्याग करो। 'मन में राम, हाथ में काम' के माध्यम से अपने दैनिक कार्यों को ईश्वर-पूजा में रूपान्तरित करो।

किन्तु नाम व यश की आकांक्षा से सचेत रहो। अहंकार धीरे-धीरे पनपेगा। सेवाभिमान अति-हानिकारक है। प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण एवं आत्म-विश्लेषण द्वारा इसका निवारण करो। अपनी सभी प्रेरणाओं का विश्लेषण करो। सच्ची विनयशीलता का उपार्जन करो।

भक्तियोग : भक्तों और साधुओं की सत्संगति, ब्राह्ममुहूर्त में उठना, भगवान् के मधुर नामों का संकीर्तन करना, जप, प्रार्थना व अपने इष्टदेव का पूजन करना, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, दान देना, सामयिक व्रत करना, रात्रि जागरण करना आदि भगवत्प्रेम के विकास एवं प्रगति के लिए अपेक्षित साधनाएँ हैं। भगवन्नाम का गायन भक्ति-भाव से करो। समस्त प्राणियों में भगवद्-दर्शन करो। अपने मन, हृदय तथा आत्मा को भगवान् के चरण-कमलों में समर्पित करो। प्रह्लाद की भाँति उत्सुकता से प्रार्थना करो। मीरा, राधा एवं रामकृष्ण परमहंस की भाँति

भगवद्-दर्शन हेतु सच्चे हृदय से रुदन करो। भावपूर्ण हृदय से जपो - "मैं आपका हूँ, सब आपका है; हे प्रभो! आपकी इच्छा पूर्ण हो!"

आलस्य, कोरी भावुकता, थोथी भावनाएँ, अहन्ता, कपट, स्वार्थपरता आदि भक्ति-मार्ग के विकास में विश्वासघाती शत्रु हैं। सतत सजग रहो। निश्चित दिनचर्या बनाओ और दृढ़ता से प्रत्येक चर्या का पालन करो। इस प्रकार आलस्य को विजित करो। सत्य पर दृढ़ रहो। नैतिक साहस का उपार्जन करो। अतीत के भक्तों के साहसपूर्ण कार्यों से प्रेरणा प्राप्त करो। सबको साष्टांग प्रणाम निवेदन करने के द्वारा अहंकार और पाखण्ड पर विजय पाओ। उसकी करुणा-प्राप्ति के लिए सदा प्रार्थी रहो।

ज्ञानयोग : ज्ञानी गुरु की शरण लो। उससे श्रुतियों का श्रवण करो। श्रवण किये गये उपदेशों का पुनः -पुनः मनन करो। वेदान्त के सत्यों पर अनवरत निदिध्यासन करो। स्पष्ट, गम्भीर ज्ञान तथा दृढ़ संकल्प-शक्ति विकसित करो। इस दृश्य जगत् को स्वप्नवत् समझो। त्रिलोकी की सम्पत्ति को तुच्छ समझो। शरीर की नश्वरता और विषय-वासनाओं की क्षणभंगुरता पर विचार करो। युगों के असत्य देहाध्यास को विनष्ट करो। खोजो- 'मैं कौन हूँ?' सत्य और असत्य को विवेक द्वारा जानो। मुक्ति और सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए उत्कट आकांक्षा उत्पन्न करो।

देहासक्ति तथा 'मैं' और 'मेरे' की भावना मन को अज्ञानबद्ध रखती है। अहंकार सदैव मनमानी करता है। पूर्व-जन्मों की वासनाएँ, संकल्प, भय, मानसिक चंचलता भ्रमात्मक विचार एवं मोह आत्मिक खोज और ध्यान की बाधाएँ हैं।

ब्रह्म-भाव की सकारात्मक भावना को दृढ़ता से विकसित करो। आप नित्य शुद्ध, निराकार, असीम आत्मा हैं इस भाव की अनुभूति करो। जो भी पदार्थ देखो, उसके नाम-रूप को नकारते हुए उसके भीतर संस्थित अन्तरात्मा के दर्शन करो। वाह्य विकारों से अप्रभावित रह कर साक्षी-भाव में संस्थित रहो। इन्द्रियानुभव को नकारो। 'ॐ' का निरन्तर उच्चारण करो तथा इस भाँति मन को स्थिर तथा शरीर और जगत् की भावना को विनष्ट करो।

राजयोग : इन्द्रिय-दमन तथा चरित्र की शुद्धता के पश्चात् ही राजयोग की कठोर साधना सम्भव है। यह एक गुप्त रहस्यमय विज्ञान है। सत्यवादी बनो। किसी को हानि नहीं पहुँचाओ। संयमी रहो। शुद्धता, सन्तोष, तपश्चर्या, स्वाध्याय तथा आराधना-सम्बन्धी शास्त्रोक्त प्रनियमों का अनुपालन करो। आसनों के अभ्यास द्वारा स्वस्थ एवं पुष्ट शरीर बनाओ तथा प्राणायाम द्वारा अन्दर के कोषों को शुद्ध करो। जब मन शुद्ध हो जाये, तब उसे इन्द्रिय-जन्य अनुभवों से विमुख करो। इसे ही प्रत्याहार से अभिहित किया जाता है।

प्रत्याहार मन की बहिर्मुखता पर प्रभावकारी अंकुश का काम करता है, मन की उत्तेजनाओं को शान्त करता है तथा मन को एकाग्र करता है। एकाग्रता ही धारणा का रूप धारण करती है। धारणा अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित हो कर ध्यान में रूपान्तरित होती है। परिणामतः ध्यान समाधि में परिणत हो जाता है और समाधि आवागमन के चक्र से जीव को मुक्त करती है।

अशुद्ध प्रेरणा, ब्रह्मचर्य का अभाव, अधिक भोजन, आलस्य, अधिक सोना, मिथ्या भय, कल्पना में विचरण करना और निम्न स्तर की अलौकिक शक्तियाँ, जैसे-दूर की बातों को सुनने एवं

घटनाओं को देखने की शक्ति आदि इस मार्ग की बाधाएँ एवं गड्ढे हैं। जिह्वा का विवेकपूर्ण नियन्त्रण, त्राटक और प्राणायाम समाधि के सहायक उपकरण हैं। साहस को सजगता से संयुक्त कर प्रत्येक स्थिति में अपनी सामान्य बुद्धि का प्रयोग करो। परमानन्द और अमरत्व के उच्चादर्शों की अनुभूति के लिए तीव्र वासनाओं व इच्छाओं के त्याग से सिद्धियों को दूर भगाओ।

सामान्य पृष्ठभूमि : मानव के सफल प्रयासों की मौलिक पूर्वपिक्षाएँ, सर्वत्र समान हैं। वे हैं-नैतिकता तथा सामान्य मानसिक और शारीरिक स्वस्थता। नैतिकता के अभाव में प्रगति सम्भव नहीं। सब-कुछ होते हुए भी यदि इस जगत् में व्यक्ति आरोग्यता-सम्पन्न न हो, तो वह न स्वयं के लिए और न जगत् के लिए ही लाभदायक होगा। स्वास्थ्य के अभाव में कोई भी प्रयत्न अथवा प्रयास सम्भव नहीं है। इसी प्रकार संसार का स्वामित्व प्राप्त होने पर तथा असीम शक्ति एवं बुद्धि से सम्पन्न होने पर भी नैतिकता के अभाव में उसका जीवन व्यर्थ है। अन्ततः उसका घोर पतन होगा। अतः स्वास्थ्य और प्राकृतिक नियमों का पालन करो। संयमित तथा नियमित सरल जीवन यापन करो।

दैनिक व्यायाम, प्राणायाम, आसन, अल्पाहार और शुद्ध विचारों से शरीर को हलका और शुद्ध रखो। सद्‌गुणों के व्यावहारिक अभ्यास द्वारा चरित्रवान् बनो। भले कार्य करो और समस्त कुटिलता और कायरता को विनष्ट करो। ईर्ष्या व घृणा का उन्मूलन करो। सत्य पर दृढ़ रहो, समग्र स्त्री-जाति में दिव्यता के दर्शन करो। सफलताओं और उपलब्धियों में जीवन प्रथम नींव संस्थित है। त्वरित प्रगति और आत्म-साक्षात्कार के लिए आप आश्वस्त हो जायेंगे।

महिमा : कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो, एक ईमानदार व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जो एक व्यक्ति कर चुका है, वह दूसरा भी कर सकता है। जब आप जीविकोपार्जनार्थ पचीस रुपये मासिक वेतन प्राप्त करने के लिए आठ घण्टे कार्यालय में बैठ कर खून-पसीना बहा सकते हैं, तब कैवल्य और अमरत्व की आनन्दमयी स्थिति प्राप्त करने के लिए क्या थोड़ा भी प्रयास उपयोगी न होगा? यह परमानन्द की स्थिति अवर्णनीय है। आपको अखण्ड आनन्द, परम स्वतन्त्रता और नित्य शान्ति की प्राप्ति होगी। आप महाराजाधिराज हो। वह परम स्थिति निर्भय, निर्विकार और अमर है।

आह्वान : ओ अमर पुत्रो! अपूर्णता, अज्ञानता और असन्तोष का जीवन खूब बिता चुके हो। पूर्ण और सब प्रकार से विकसित जीवन व्यतीत करो। एक ज्योतिर्मय आत्मा बनो। इसी क्षण, जहाँ भी तुम हो, पृथ्वी को स्वर्ग बनाओ। अविद्या-रूपी निद्रा से जागो और दिव्य जीवन व्यतीत करने के लिए तत्पर हो जाओ। प्रयत्नशील बनो। आलस्य और कायरता को विनष्ट करो। सिंह के समान बनो। प्रत्येक कार्य में आपको सफलता प्राप्त होगी। आप भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भव्य उन्नति करोगे। आप अविलम्ब लक्ष्य की प्राप्ति करोगे। मैं आपको आश्वासन देता हूँ।

प्रगति हेतु सामग्री (जानो और साहसी बनो) :

१. बाह्य शत्रुओं से भयभीत मत होइए। अहंकार, मद, काम, क्रोध, लोभ, मोह और स्वार्थ आपके वास्तविक शत्रु हैं।
२. जितनी शक्ति आप दूसरों के उत्थान में लगायेंगे, उतनी ही अधिक दिव्य शक्ति आपके भीतर प्रवाहित होगी।

३. प्रारम्भ में संयम, आत्म-परित्याग व धारणा के अभ्यास बहुत अधिक अरुचिकर व शुष्क प्रतीत होंगे। यदि आप इनमें शान्तिपूर्वक संलग्न रहें, तो आपको इनके द्वारा बल, शान्ति, नया ओज और आनन्द की प्राप्ति होगी।

४. यदि आप सच्चे और ईमानदार हैं, यदि आप सदैव सामान्य बुद्धि को प्रयुक्त करते हैं तथा धैर्यवान् और निरन्तर प्रयत्नशील हैं, तो आप लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्र ही कर लेंगे।

५. सफलता आपको अवश्य मिलेगी; क्योंकि आपने इसीलिए जीवन धारण किया है। आप अपने उत्तराधिकार का विस्मरण कर चुके हैं। अभी अपने जन्मसिद्ध अधिकार की माँग करें।

पाठको! यही सन्देश है! यही जागृति का उद्‌घोष है! यह आप पर निर्भर करता है कि अब आप माँगें, खोजें और खटखटाएँ। जो चाहिए वह यहीं है। केवल प्राप्ति की इच्छा की अपेक्षा है। आओ! कुछ समय के लिए बातें बन्द कर दें। भगवान् आपको कार्य करने की प्रेरणा दें!

एकविंश अध्याय

आलोक-पुंज

"लोग दीपक जला कर पैमाने के नीचे नहीं रखते; परन्तु दीवट पर रखते हैं, तब उस घर के सब लोगों को प्रकाश पहुँचता है।" -यीशु का सन्देश

काल युगों से उन महान् आत्माओं का एक मनोहर विश्व-कोष संरक्षित करता आया है, जो अपने चरण-चिह्न सुन्दरता से यथाक्रम उसके हृदय पर अंकित करते गये। अनन्त काल पूर्व से ही घटित घटनाओं के प्रामाणिक विवरण को सुरक्षित रखने का श्रीगणेश हो गया था, जिसका पता इतिहास और विज्ञान भी न लगा सके।

समय की सतत यह आकांक्षा रही कि वह दिव्य लोक से निःसृत मोती के बिन्दुओं का संग्रह और अपनी मनोरम कल्पना-शक्ति से उनको चित्र-रूप में चित्रित करता रहे। विश्व की चित्रशाला इन विलक्षण चित्रों से सुशोभित है। इनकी शोभा कभी धूमिल नहीं होती; बल्कि जागरूक नेत्रों के लिए सदैव आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है। उस चित्रशाला में राज्य-प्रभुता-सम्बन्धी, इहलोक-सम्बन्धी, नयी विधियों तथा आविष्कारों-सम्बन्धी ऐसे भी चित्र अंकित हो जाते हैं जिन्होंने क्षणिक सफलता प्राप्त की हो; किन्तु साहसी और विजेताओं की श्रेणी में वह उनको स्थान कैसे दे सकती है? स्वभावतः वह उन्हें पृथक् करेगी।

हज़रत मूसा ने घोषित किया है- "विनम्रता से बढ़ कर कोई मुकुट नहीं है, प्रसिद्धि से बढ़ कर कोई कीर्ति स्तम्भ नहीं है तथा कर्तव्य-पालन से बढ़ कर कोई लाभ नहीं है। सज्जन व्यक्ति अन्यों को सन्मार्ग का पथिक बनाता है, पड़ोसी से प्रेम करता है, गुप्तदान करता है तथा सत्कार्य सद्भाव व भगवद्भाव से करता है।"

उसके हृदय में प्रभु निवास करते हैं। वह वन्दनीय है। वह आराधनीय है। वह हमारे मन और हृदय में समाया रहे, चाहे हम जाग्रतावस्था में हों, प्रमाद में ऊँघ रहे हों या गहरी निद्रा में हों। वह निर्भयता से समग्र विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है तथा महानुभावता, उदारता, कृपालुता तथा सौजन्यता द्वारा धैर्य का प्रतिरूपक निर्माण करता है। दृढ़ संकल्प, प्रावैगिक शक्ति, अडिग चरित्र तथा शुद्ध मौलिकता से सम्पन्न वह तितिक्षा का स्तम्भ है। आत्म-प्रशंसा करना, नश्वर जीवन की नश्वर विलासिताओं से प्रलोभित होना, किसी अन्य की सहायता से पराकाष्ठा पर पहुँच कर अगले ही क्षण नीचे धकेल दिया जाना-ये उसके आत्म-सम्मानी होने के कारण नहीं हैं।

अन्त हृदय की यह ज्योति बुद्धि, ज्ञान, परिज्ञान और आत्म-निरीक्षण से ज्योतित है। यह मस्तिष्क और हृदय की सन्तुलित स्थिति है। उसका हृदय में पूर्णरूपेण जीवन्त रूप से दर्शन करो। वह मृत नहीं है। सूर्यास्त हो जाने से सूर्य का अन्त नहीं हो जाता। थोड़े समय विश्राम करने के लिए वह अपने पंचभौतिक देह का त्याग भी कर सकता है। वह था, वह है और वह रहेगा।

समय ने सुदूरपूर्व हमारी मातृभूमि में अतिशय रुचि ली। उसने इस पर अवतरित होने वाले प्रभु-प्रेषित सन्देशवाहकों को शान्तिपूर्वक, धैर्य से, आश्चर्य से चित्रित किया। सच्चाई की आशापूर्णता, वातावरण के मधुर प्रभा-मण्डल तथा धरातल की उर्वरता को समय ने अनुभव किया।

भारत दूर तक फैला विशाल वट वृक्ष है। योग-दर्शन रूपी सुविस्तीर्ण शाखाओं तथा आगन्तुक मूलों वाले इस वृक्ष की जड़ें धर्म में गहराई तक प्रवेश कर गयी है। जीवन-लक्ष्य, जीवनोद्देश्य तथा जीवनादर्श का उपदेश संसार में प्रचारित करने के लिए भारत माता एक के पश्चात् दूसरा तत्त्ववेता अवतीर्ण करने में थकती नहीं। आज उसने हमारे समक्ष किसको प्रस्तुत किया है? वे स्वामी शिवानन्द हैं।

मानव नहीं चाहता कि उसकी सन्तति क्षीण ज्योति विकीर्ण करने वाली तारिका, सिक्थवर्ति तथा वर्तिका-दीप हो। जब सामान्य लोगों की यह बात है तो उनके विषय में क्या कहना है जो स्वयं प्रोज्ज्वल ज्योति हों!

ऐसे ही एक परिवार ने गर्भ में ही परिपक्व अग्नि-पुंज को प्रज्वलित किया। ८ सितम्बर १८८७ को सुदूर दक्षिण भारत में एक शिशु ने जन्म लिया, जिसका रहस्य सम्भवतः माता-पिता ने भी नहीं जाना था। बहुत सम्भावना इस बात की है और निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि प्रभु ने उस शिशु की आत्मज्ञान से सम्पन्न कर दिया था।

इनके जन्म-स्थान को गायक पक्षियों का घोंसला कहा जाता है। इस ग्राम पर अप्पय दीक्षितार की अमिट छाप लगी है, जो सदैव स्मरणीय रहेगी। इसे एक छोटी नदी ने परिवृत्त कर रखा है। इसके चतुर्दिक् चरागाहों तथा हरे-भरे खेतों की दृश्यावलियाँ हैं तथा यत्र-तत्र गगन-चुम्बी गाढ़ा नीला पश्चिमी घाट है, जो सम्भवतः माधुर्य भाव को मूर्तिमान् करता है। इसके निवासी ज्ञात-अज्ञात रूप से भगवद्-स्मरण में तल्लीन हो जाते थे।

ज्ञान और बुद्धिमत्ता से प्रदीप्त तथा पूर्ण उल्लास, शक्ति, उत्साह और अन्तःप्रेरणा से युक्त स्वामी जी अपने सभी खिलाड़ी साथियों और सहपाठियों को पराजित कर देते है। उनका शरीर विलक्षण रूप से सम्पुष्ट एवं सुडौल था। विद्यालय तथा महाविद्यालय मैं वे अनेक पुरस्कारों के विजेता थे।

सम्भवतः उन्होंने यह विचार किया कि मनोविज्ञान के ज्ञान से भी पूर्व आरोग्य-विज्ञान का ज्ञान होना परमावश्यक है। तभी सन् १९१० में उन्होंने चिकित्सक का व्यवसाय अपनाया तथा सिंगापुर प्रस्थान किया। व्यक्ति और पदार्थ में समता लाने का कार्य समीकरण कला के न्यायाधीशों को उत्तराधिकार के रूप में सौंपा गया; किन्तु अविवेक और अज्ञानता के कारण उनमें से अधिकांश इसका उपयुक्त प्रयोग करने में असफल रहे। अपनी बारी में चिकित्सकों ने इस कला को सीखा और देह की असन्तुलित अवस्था को सन्तुलित बनाने में इसका विवेकपूर्ण प्रयोग किया।

स्वामी जी ने इस कला को चिकित्सा क्षेत्र में नहीं बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अपनाया। स्वामी जी ने न केवल सहस्रों रोगियों को व्याधियों से मुक्त किया अपितु उन आत्माओं को, जो वर्तमान यातनाओं तथा कष्टों से संघर्षरत व पीड़ित और मुक्ति के लिए प्रयत्नशील थीं-उनको भी मुक्त किया।

भारत माता कब तक उनके वियोग की पीड़ा सहन कर सकती थी? परन्तु क्या वह परिचय-पत्रों तथा पत्र-शीर्षों की शोभा बढ़ाने वाली तथा अँगरेजी वर्णमाला के छब्बीस वर्णों के उलट-फेर मात्र से रचित प्रतिष्ठित उपाधियों से विभूषित इस व्यक्ति को स्वीकार करने को तैयार थी? कदापि नहीं! कदापि नहीं! क्या वह इनकी अनुपयोगिता और अक्रियता को नहीं जानती थी? क्या वह उस उद्देश्य का विस्मरण कर चुकी थी, जिसके लिए उसने उन्हें जन्म दिया था?

उनका हृदय त्याग से दीप्त हो उठा था। उनका निवास स्थान उनके लिए अग्नि की भट्टी तुल्य भड़क उठा। आध्यात्मिक ज्वालाओं ने उनकी चल और अचल सम्पत्ति को निगल लिया। पदवी, सम्पत्ति, मित्रों तथा साथियों का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनके अन्तर में आध्यात्मिक आवेग ने प्रहार किया और उनके हाथ में जलती ज्वाला थमा दी।

दृढ़ निश्चय और संकल्प से इस मशाल को ले कर विचार और आचार की बुराइयों जिनसे मानवता आक्रान्त है -का उन्मूलन अपने शब्द और नाद से करने के लिए अपूर्व बुद्धि और नवीन उल्लास से परिपूर्ण व्यक्ति अब भारत में १९२३ में लौटे। ४ जनवरी १९२४ को एक ज्योतिर्मय

महात्मा ने उनको परमहंस-परम्परा में दीक्षित किया। तब से वे 'शिवानन्द सरस्वती' के नाम से समलंकृत हुए।

संसार-रूपी पिंजरे से मुक्त हो कर उन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान की पद-यात्रा की, वहाँ के निवासियों को अमूल्य शिक्षाएँ प्रदान की, तैयार जिज्ञासुओं की भावनाओं को उद्दीप्त किया तथा जो उद्दीप्त थे, उनकी भावनाओं को पूर्णतया प्रज्वलित किया।

परिव्राजक-जीवन की सन्तुष्टि के उपरान्त उन्होंने हिमालय की तलहटी में पहुँच कर एकान्त-वास किया। घोर तपस्या, संन्यासियों तथा यात्रियों की निष्काम सेवा, स्वाध्याय में अदम्य रुचि, उच्च गम्भीरता, कार्यों में नियमितता, समग्र मानव-जाति का आलिंगन करने वाली महती भावना एवं सहानुभूतिमय दृष्टिकोण से सम्पन्न हो कर तथा जाति-भेद-भाव से ऊपर उठ कर वे पूर्ण योगी बन गये। अवशिष्ट ऐन्द्रिक उत्तेजनाएँ तथा हृदय के कोने में प्रच्छन्न अति सूक्ष्म वासनाएँ ऐसी भागी जैसे भट्ठी से बिच्छ भागता है।

उनके हृदय में आनन्ददायी गम्भीर शान्ति का साम्राज्य है, जिसकी मधुर सुरभि तथा आध्यात्मिक स्पन्दन वे विश्व-भर में भेजते रहते हैं, जिनका रसास्वादन संसार के किसी भी कोने में वास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति करता है। वे ज्ञान की विभिन्न पद्धतियों से पूर्णतया परिचित हैं। वे विलक्षण स्मरण-शक्ति से सम्पन्न हैं। उनका प्रवचन सबको मन्त्र-मुग्ध कर देता है।

वे कर्तव्य-सम्पादन में निपुण हैं। उनकी सब पर समदृष्टि है और अपने मधुर स्वभाव से सबके साथ सम-व्यवहार करते हैं। वे अतिशय सरल हैं। वे सहज प्राप्य है, सबको आत्म-सम मानते हैं। क्या उनकी कृपा प्राप्ति का यह अवसर खो देना होगा? अतिमानव-रचित स्पष्ट सुबोध शैली में ज्ञान-प्रदायिनी पुस्तकों के रूप में स्वर्गिक उपहारों को प्रत्यक्ष पा कर भी हाथ से जाने देंगे? क्या हमें दैवी उपहार-जो खड़ी चट्टान-सम पतनकारी सांसारिक बन्धनों से मुक्त करवाने में सहायक है-को अस्वीकृत करना होगा।

कुछ क्षणों के लिए अपनी आँखें मूदिए। सम्पूर्ण पापों सहित अपने मन को शिवानन्द की ओर प्रेरित कीजिए। इस वेदी पर अपनी समस्त बुराइयाँ अर्पण कर दीजिए। समस्त शारीरिक अवयवों को शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! का पाठ पढ़ाइए। कुछ समय के लिए आनन्द में लीन हो जाइए।

ओ मानव! मन को अन्तर्मुखी करो। आपने संसार का अभी पूर्णरूपेण त्याग नहीं किया है। 'जन्म-दिवस' पर दिये गये उनके सन्देश को श्रवण कीजिए। ध्यानपूर्वक उनका अनुसरण कीजिए। ईश्वर आप पर शान्ति, प्रचुरता और समृद्धि की वर्षा करें!

परिशिष्ट

"आप कब तक अपनी वासनाओं के वशवर्ती बने रहना चाहते हैं? शानि आपके अन्त करण में ही अवस्थित है। वहीं वैराग्य तथा अभ्यास के द्वारा उसकी खोज करें। उठें, जागें तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक निरन्तर आगे बढ़ते ही जायें।"

-स्वामी शिवानन्द

ऊँचे आकाश में विचरण करने वाला गरुड़ पक्षी सरिताओं को पार करने के विषय में चिन्तित नहीं होता। उसी प्रकार जीवन की गरिमा भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं, जिसमें हमारा भौतिक जीवन व्यथित तथा मन उद्वेलित रहता है, से प्रभावित नहीं होती। अनुशासित जीवन, आत्म-संस्कार व निष्काम सेवा के अभाव में हम पथच्युत हो जाते हैं। हम निरर्थक विषयों के सम्बन्ध में निरुद्देश्य चिन्तन करते रहते हैं।

हमारे विचार अनियन्त्रित रहते हैं तथा काल्पनिक आशाओं व निरर्थक स्वप्नों के लोक में स्वच्छन्दता से विचरण करते रहते हैं। हम यह समझते ही नहीं कि स्वार्थ से हम कभी भी सिद्धि-प्राप्ति की आशा नहीं कर सकते। हम यह जानते ही नहीं कि केवल निष्काम्य सेवा से ही महानता की प्राप्ति की जा सकती है। हम तुच्छ कार्यों को अन्धाधुन्ध करने लग जाते हैं और यह आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन करते हैं कि समग्र संसार का दायित्व हमारे कन्धों पर है। तब हम सुखमय जीवन-यापन की आशा कैसे कर सकते हैं और आनन्द में कैसे संस्थित हो सकते हैं?

हमारी नियति बिना रुदन के, बिना सम्मान के व बिना संगीत के ही समाप्त हो जाने की नहीं है। अनेक कठिनाइयों और यातनाओं के पश्चात् हमें ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति होने वाली है। हमें सत्य का प्रत्यक्ष सामना करना होगा। हमारी नियति आन्तरिक शत्रुओं की छड़ी की हेय अधीनता स्वीकार करने की न हो कर उन सब पर सफलतापूर्वक विजय-प्राप्ति की होगी। प्रत्येक सामान्य व्यक्ति, प्रत्येक विद्वान् तथा सन्त को इसे अविरोध रूप से मानना ही होगा।

क्या यह केवल सिद्धान्त एवं स्वयंसिद्ध कल्पना है? हमें अनन्त अतीत पर दृष्टिपात करना होगा। असंख्य महान् आत्माएँ प्रकट हुईं; भले ही वे किसी भी विचार-पद्धति से सम्बन्धित रही हों। सत्य ही कुछेक ने तत्काल ही प्रसिद्धि पायी, बहुतो को प्रसिद्धि देर से प्राप्त हुई। पर ऐसा घटित कभी नहीं हुआ कि किसी को प्रारम्भ गवा दिया गया हो।

प्रत्येक व्यक्ति में कोई-न-कोई एक स्वाभाविक विशिष्टता है; किन्तु वह उसकी गाई में पहुंचने की ओर ध्यान ही नहीं देता, न ही उसकी खोज करता है, न ही उपाहता, न ही परिशुद्ध और न प्रकट ही करता है और न ही उसका प्रतिरूपेण लाभ उठा सकता है।

कुछ ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जो निराश हो कर कह उठते हैं- "हम जन्म न लेते तो अच्छा होता।" ऐसा क्यों? उनकी इस निराशा का मूल कारण क्या है? आपके जीवन-चक्र के दाँत तो दोषपूर्ण हैं जो समुचित ढंग से कार्य नहीं कर रहे हैं। जीवन-चक्र क्या है और उसके दाँते क्या हैं? स्वस्थ पुरुषत्व समग्र जगत् का निर्भयता से सामना करने वाला साहस, आत्म-निर्भरता, सच्चाई, उदारता और दया की एक परिधि है। विश्वास पुरी है। सम्यक् ज्ञान ग्राभ है जो जीवन-चक्र के दाँतों का नियमन करता है। आत्म-संयम ही चालक पट्टा है। ज्ञान और विजय विद्युत् हैं। जीवन का आनन्द लो और पूर्णता में स्थित हो जाओ।

जीवन के विविध झकोरों से हतोत्साहित न होइए। मानव सरिता-तुल्य है। उनसे शिक्षा ग्रहण करो। जो आज छिछला है, वह कल अगाधता का रूप ग्रहण कर लेता है। जो इस समय बुलबुले हैं, कुछ क्षणोपरान्त वे शान्त हो जायेंगे। सूर्योदय की छोटी लहरें सूर्यास्त तक प्रबल लहरों का रूप धारण कर लेंगी।

सार्वभौमिक विधान तथा न्याय में अडिग विश्वास रखिए। अनन्तता में विश्वास विकसित कीजिए। जीवन में सफलता-प्राप्ति का यही उपक्रम है। यातनाएँ केवल अनुभव और आत्म-शुद्धि के लिए शिक्षाएँ हैं। सूर्योदय समग्र दिन के स्वरूप का पूर्व-सूचक है। विश्वास और श्रद्धा जीवन के स्वरूप को सूचित करते हैं। बुराई के सामने कभी मत झुको और अपने वातावरण को कभी दोषी मत ठहराओ।

सफलता-असफलता का कारण आपका मन है। सहिष्णुता और आत्म- समर्पण ही आपके सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। भागवतीय विधान व्यवस्थित है, अव्यवस्थित नहीं। बुरे कार्य की अपेक्षा भले कार्य अधिक विकसित होते हैं। सुख और दुःख उनके मापदण्ड हैं।

मनुष्य अज्ञानतावश बुराई का शिकार हो जाता है और जीवन के किसी-न-किसी अवसर को पा कर भाग्य को कोसता है। जीवन की विषमताएँ सफलता-प्रदायक है। अपने हृदय में श्रद्धा को गहराई से रित कीजिए, जिस और मस्तिष्क में समत्व रहे। यदि आप खीचे, चिन्तित रहे, निराशायी वस्तुओं पर आँसू बहायें तो धार्मिक प्रवृत्ति व दार्शनिकता होने पर भी आपने पढ़ा का अभाव है।

अपने मन-मन्दिर में श्रद्धा का दीप प्रदीप्त कीजिए, उसकी दीश किरामी के प्रका में, जीवन की अज्ञानता के अन्धकार में, धीर-धीरे चलिए। यह सत्य है कि देयमार प्रकाश के विपरीत यह प्रकाश मन्द है, किन्तु एक पग भी आपको गतिमान कर लथिन दिशा की ओर अग्रसर करेगा, जिसको पुनः खोजना नहीं पड़ेगा।

कष्टों को दबाने के लिए श्रद्धा की भाँति सच्चाई भी एक उत्तम पथ-प्रदर्शिका है। कन्फ्यूशियस का कथन है-"हमारे जीवन में सच्चाई का स्थान मुकुट के समान है। इसके अभाव में सत्कार्य भी निरर्थक हो जायेंगे। बाह्य रूप से भद्र दिखायी देने वाले भी मात्र दोंगी हो जायेंगे तथा हमारे नेत्रों को चौंधियाँ देने वाला ज्योतिर्मय प्रकाश काम की सामान्य-सी फूँक से शमित होने वाली मन्द प्रभा बन जायेगा।" मनसा, वाचा, कर्मणा सच्चे बनिए।

अपने पुरुषत्व को बनाइए। यहाँ पुरुषत्व से तात्पर्य पाशविक वृत्तियों से नहीं है। बलवान्, स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर बनिए। अपनी शक्ति का अपव्यय मत कीजिए। शक्ति सीमित है। एक दिशा में अपव्यय होने से पुनः उसकी क्षति-पूर्ति नहीं होती, जब तक कि उसका सृजन सदैव न होता रहे। बीता समय हाथ नहीं आता। शक्ति आपके आदर्शों और गुणों का विद्युत्-गृह है। पूर्ण विकसित, पूर्ण अनुशासित, पूर्ण परिपक्क पुरुषत्व-एक शान्त, नम्र, आडम्बर-रहित अपने अस्तित्व को जानने वाली भद्रता, दैवी नम्रता, आत्म-चेतनता और आत्म-निर्भरता की कसौटी है।

अनेक व्यक्ति प्रभु की खोज तथा ज्ञान की पिपासा में संलग्न है, परन्तु उनमें से कुछ ऐसे लोग हैं जो यह समझते हैं कि उनको कोई उपयुक्त मार्ग-दर्शक नहीं मिल सका। उनको दुःख है कि 'जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उनका कोई भी मार्ग-दर्शक नहीं है।' उनको क्षण-भर यह सोचना चाहिए कि कभी भी कोई ऐसा युग आया है जो परमात्मा के सन्देशवाहकों व जागरूक आत्माओं से विभूषित न रहा हो ? नहीं, ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

पुरातन काल से एक धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है जो कभी अवरुद्ध नहीं होती। आप अभीप्सा के अभाव में गुरु-प्राप्ति से वंचित हैं। क्या आप इन्द्रियों की क्षुद्र वासनाओं की तुष्टि के लिए स्थान-स्थान पर मारे-मारे फिरने में लज्जित नहीं होते? हिमालय की तलहटी में एकत्रित हो जाओ, जो गंगा माता को परिवृत्त किये हुए है, जिसकी पवित्रता अवर्णनीय है।

आनन्ददायक आनन्द-कुटीर में सिद्ध महात्मा निवास करते हैं। अपनी दृष्टि उस प्रकाश-पुंज पर स्थिर रखो, जहाँ से ज्ञान-ज्योति की किरणें विकीर्ण हो रही हैं। यहाँ पर आपको विश्व-नागरिक, धर्मदूत और गुरु की प्राप्ति होगी। वह नभ-मण्डल से उच्च स्वर में उद्घोषणा करते हैं- "मेरे जीवन का उद्देश्य आपकी सेवा करना तथा आपको प्रसन्न रखना है। अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने में और जीवन-लक्ष्य-कैवल्य एवं परम गति की प्राप्ति में मैं आपका पूर्णरूपेण सहयोगी बनूँगा।"

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति!!!

इस पुस्तक के विषय में :

इस छोटी-सी पुस्तक में सामान्य जन के समक्ष स्वामी जी के अतीत तथा वर्तमान रोचक जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके व्यक्तित्व का एक निष्पक्ष अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उनके जीवन-विषयक इससे पूर्वतन प्रकाशित दो-तीन ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न, प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य उद्देश्य उनकी सामान्य गतिविधियों में अधःस्थ दर्शन तथा समाविष्ट व्यावहारिक शिक्षाओं को प्रकाश में लाना है। अतः यह पुस्तक उनकी जीवनचर्या का मात्र वर्णन न हो कर प्राक्तन पुस्तकों का विकसित तथा परिनिष्पन्न रूप है।

कुछ विश्लेषणात्मक भावधारा में लिखी जाने के कारण, इसमें अनेक उपयोगी तथा पथ-प्रदर्शक संकेत प्रस्तुत किये गये हैं जो निश्चय ही प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए अतीव व्यावहारिक मूल्य के होंगे। यही इस पुस्तक की विशिष्ट अर्हता है।

यह पुस्तक आदर्श मानव के अनेकविध प्रतिमान के रूप में स्वामी जी के अब तक अज्ञात कुछ सुन्दर विशिष्ट गुणों को प्रकाश में लाती है।